ॐ अर्हंनमः

जैन-जगती

कुँ० दौलतसिंह लोढ़ा 'अरविन्द'

धामनिया (मेवाड़)

Presented

With best compliments to

Veer Sewamandir

By Saras[illegible]

Messers Sahaje Devi Chand

Tikam Chand Shanti Lal

In sweet memory of Seth Natha Malje

Porwal. Bagra (Marwar)

21st March 1944 }

श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज

गुरुदेव !

गुरु ! आप कोई शक्ति हो, बिन शक्ति बन सकती नहीं-
थी 'जैन-जगती' आज मुझसे, जो दया रहती नहीं।
गुरुदेव ! आशीर्वाद इसको अब दया कर दीजिये;
इसके अयन के शूल सब औ कर दया चुन लीजिये ॥

'अरविन्द'

पुस्तक मिलने के पतेः—

१—कुँ० दौलतसिंह लोढ़ा 'अरविन्द'

बागरा (मारवाड़)

२—

लेखक

पूजनीया माता

श्रीमती

हगामबाई की

पुराय-स्मृति में

विषय-सूची

अतीत खण्ड

वर्तमान खण्ड

भविष्यत खण्ड

प्राक्-कथन

विषय-क्रम

दो शब्द

कला की ओर से काव्य की परख मुझ में नहीं। फिर भी श्री दौलतसिंहजी 'अरविंद' का आदेश शेष रहा कि मैं उनकी पुस्तक पर 'दो शब्द' दूँ। सुयोग की बात मेरे लिये यह है कि प्रस्तुत काव्य केवल या शुद्ध काव्य नहीं है। वह एक वर्ग-विशेष के प्रति सम्बोधन है। जैन परम्परा में से प्राण एवं प्रेरणा पाने वाले समाज के हित के निमित्त वह रचा गया है। इससे उसकी उपयोगिता सीमित होती है। पर तात्कालिक भी हो जाती है। परिणाम की दृष्टि से यह अच्छा ही है।

पुस्तक में तीन खण्ड हैं। पहिले में जैनों के अतीत की महिमामय अवतारणा है। दूसरे में वर्तमान दुर्दशा है। अन्त में भविष्य की ओर से उद्बोधन है। तीनों में चोट है और स्वर उष्म है।

निस्संदेह वर्तमान के अभाव की क्षति-पूर्ति में लेखक ने अतीत को कुछ अतिरिक्त महिमा से मंडित देखा है। पर कवि सुधारक के लिये यह स्वाभाविक है। ऐतिहासिक यथार्थ पर उसे न जाँचना होगा। उसके अक्षर और विगत पर न अटक कर उसके प्रभाव को ग्रहण करना यथेष्ट है। जैनों में अपनी परम्परा का गौरव तो चाहिये। वह आत्मगौरव वर्तमान के प्रति हमें तत्पर और भविष्य के प्रति प्रबुद्ध बनावे। अन्यथा इतिहास के नाम पर दावा बन कर वह दर्प और ढोंग हो जायगा जो थोथी वस्तु है। वह तो कषाय है, साम्प्रदायिकता है, और मेरा अनुमान है कि लेखक के निकट भी वह इष्ट नहीं है

पुस्तक की मूल भावना है कि जैनों में बढ़ता हुआ भेदभाव नष्ट हो। बेशक पृथग्भाव ह्रास का और सम या समन्वय भाव विकास का द्योतक है। अनेकान्त यदि कुछ है तो एकता का प्रतिपादन है। एकांत वृत्ति अनैक्य बढ़ाती है। यदि जैनों में फूट है तो यह झूठ है कि वे अनेकान्तवादी हैं। अनेकान्त जिसकी नीति हो वह वर्ग कट फँट नहीं सकता। अनेकान्त अहिंसा का बौद्धिक पर्याय है। द्वैतवृत्ति दिगंबर और श्वेताम्बर के रूप में जैन अखण्डता के दो भाग करके ही नहीं रुक सकती। वह तो समाज-शरीर के खण्ड-खण्ड करेगी। वह हिंसा की, एकान्त की, वृत्ति ही तो है। सब इतिहास में सदा विनाश की यही प्रक्रिया रही है। अपने बीच का अभेद जब भूल जाय और भेद खाने लग जाय तब समझ जाना चाहिए कि मृत्यु का निमंत्रण मिल गया है।

मैं नहीं जानता कि जैन आपस में मिलेंगे। यह जानता हूँ कि नहीं मिलेंगे तो मरेंगे। यह पुस्तक उनमें मेल चाहती है। अतः पढ़ी जायगी तो उन्हें सजीव समाज के रूप में, मरने से बचने में मदद देगी। जरूरी यह कि जैसे अपने वर्ग के भीतर वैसे इतर वर्ग के प्रति मेल की ही प्रेरणा उससे प्राप्त की जाय।

मैं लेखक के परिश्रम और सद्भावना के लिये उनका अभिनंदन करता हूँ।

दरियागंज दिल्ली
११–७–४२

जैनेन्द्रकुमार

जैन-जगती और लेखक

मैं न कवि हूँ, न काव्यकला का पारखी, इसलिये जैन-जगती को कविता की मानी हुई कसौटियों पर कस कर उसका मूल्यांकन करना मेरे अधिकार से बाहर की बात है। पर अगर हृदय की रागात्मक वृत्तियों का कविता के साथ कोई सम्बन्ध है तो मैं कहूँगा कि 'जैन-जगती' में मुझे लेखक की हार्दिकता का काफी परिचय मिला है।

पुस्तक के नाम, शैली, छंद और विषय-प्रतिपादन से यह तो स्पष्ट ही है कि भारत के राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरणजी गुप्त की सुन्दर कृति 'भारत-भारती' से लेखक को पर्याप्त प्रेरणा मिली है। लेखक ने जैन-समाज के अतीत, वर्तमान और भविष्यत का जो चित्र अंकित किया है, उसमें कुछ ही स्थल हैं, जहाँ मैं लेखक की मनोभावना का समर्थन नहीं कर सकता। पर ऐसे स्थल बहुत ही कम हैं। लेखक जिसके प्रति और जो कुछ कहना चाहता है, उसमें वह काफी सफल हुआ है, ऐसा कहा जा सकता है। अगाध निद्रा में सुप्त पड़े हुए जैन-समाज को जागृत करने का, उसको नव चैतन्योदय का नव संदेश देने का, और जीवन के नये आदर्शों की प्रेरणा देने का लेखक का ध्येय उच्च है, इसमें मत-वैभिन्य की जरा भी गुंजाइश नहीं है। जिस तपिश से लेखक का हृदय जल रहा है, उसी को अनुभव करने के लिये 'जैन-जगती' में उसने सारे जैन-युवकों को आह्वान दिया है। उसका यह आह्वान सच्चा है, सजीव है और अभिनन्दनीय है। यह आग पूरी तरह सुलगी नहीं है, लेखक का ध्येय उसको प्रज्वलित करने का है जिससे समाज की प्रगति के मार्ग में रोड़े

बनी हुई रूढ़ियाँ और अज्ञान भस्मसात् हो जाय और नव प्रकाश रश्मियों से जीवन जाज्वल्यमान हो उठे।

लेखक ने जैनियों के केवल धार्मिक पतन पर ही नहीं, सामाजिक, व्यापारिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और शिक्षा तथा स्वास्थ्य विषयक पतन पर भी दृष्टिपात किया है। इस बारे में मुझे इतना तो कहना है कि जैन-समाज के पतन के कारणों का उल्लेख करते समय लेखक उन मूल बातों पर नहीं गया है, जिनसे जैन-समाज का ही नहीं, सारे भारतीय समाज का पतन हुआ है। भविष्यत खण्ड में सुधार के उपाय बताते समय भी लेखक की विचार-धारा विशाल नहीं बन पाई है। तथापि कई स्थलों पर भावों का उद्रेक बहुत सुन्दर हुआ है। ऐसे स्थल हृदय को छूते हैं और पाठकगण लेखक द्वारा अंकित चित्र में अपने को खो भी देते हैं।

आशा है लेखक 'जैन-जगती' द्वारा जैन-समाज में मनोवांच्छित जागृति और जीवन का प्रवाह बहा सकेगा जिससे लेखक का ध्येय और समाज का कल्याण दोनों कृतकृत्य होंगे।

४ कामर्सियल बिल्डिंग
कलकत्ता
३०—७—४२

भँवरलाल सिंघवी

जैन-जगती

'जैन-जगती' वास्तव में जैन-जगत् का त्रिकाल-दर्शी दर्पण है। सुकवि ने प्रसिद्ध 'भारत-भारती' की शैली पर जैन-समाज को ठीक कसौटी पर कसा है। कई उक्तियाँ रूढ़ि चुस्त साधुओं और श्रावकों को चौंकाने वाली हैं। कहीं-कहीं शब्दों के अत्यंत कम प्रचलित पर्यायवाची रूप आने से साधारण श्रेणी के पाठकों को सहसा रुकना पड़ेगा, किन्तु जो लोग तनिक धीरज से काम लेकर आगे बढ़ेंगे; वे इस पुस्तक में रसामृत के अलौकिक आनंद का आस्वादन करेंगे।

'अरविंद' कवि की यह प्रथम कृति समाज की एक अनिवार्य्य आवश्यकता की पूर्ति करती है। इसके अतिरिक्त मुझे कवि के अन्य सार्वजनिक विषयों के बड़े-छोटे कई पद्य-ग्रंथों को (अप्रकाशित रूप में) पढ़ने और सुनने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ है। इस अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि यदि जनता ने कवि की कृतियों को अपनाया तो 'अरविंद' के रूप में एक लोक-सेवी कवि का उसे विशेष लाभ प्राप्त होगा।

'जैन-जगती' जागृति करने के लिये संजीवनी-वटी है। फैले हुये आडम्बर एवं पाखंड को नेश्तनाबूद करने के लिये बम्ब का गोला है। समाज के सब पहलुओं को निर्भीकता पूर्वक छूआ गया है। पुस्तक पढ़ने और संग्रह करने योग्य है।

ज्ञान-भंडार जोधपुर }
श्रा० कृ० १३-६६ }

श्रीनाथ मोदी 'हिन्दी-प्रचारक'

निवेदन

'जैन-जगती' न काव्य है और न कवि की कृति सो पाठक इसे उस दृष्टि से देखें। यह है समाज के एक सेवक का समाज को संबोधन और समाज के भूत, भविष्यत और वर्तमान का दर्शन। मैं अपने को धन्य समझूँगा अगर यह अपनायी जायगी और इससे कुछ लाभ उठाया जायगा।

आचार्य श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरिजी व उनके सुशिष्य काव्य-प्रेमी मुनिराज श्री विद्याविजयजी का मैं अपार ऋणी हूँ, जिनकी एकमात्र कृपा से मैं यह कर सका हूँ।

अगर महाकवि पं० अयोध्यासिंहजी 'हरिऔध' की अनुकंपा न होती तो 'जगती' में जो कुछ भी सरसता आ सकी है न आ पाती। मैं 'हरिऔधजी' का अति ऋणी हूँ।

'जगती' कुछ विलम्ब से निकली है। इसका हेतु यह है कि इसके साथ-साथ 'रसलता' व 'छत्र-प्रताप ये दो काव्य लिखे गये, जिससे समय अधिक लग गया। इस विलंब के लिये मैं क्षमा का अधिकारी हूँ।

सहृदय पाठकों से मुझे प्रोत्साहन व जीवन मिलेगा ऐसी आशा है।

बागरा (मारवाड़)
चै० शु० १२–६६

विनीत
कुं० दौलतसिंह लोढ़ा 'अरविंद'

❀ ॐ अर्हन्नमः ❀

जैन-जगती

अतीत खण्ड

मङ्गलाचरण

हे शारदे ! उर-वीण पर तू कमल-पाणि पसार दे;
सब हो रहे हैं तार बेस्वर—प्राण इनमें डार दे।
मैं बदन-सरवर-मुख-कमल पर सुमन-आसन डार दूँ;
तू मन-मनोरथ सार दे तन, मन, वचन, उपहार दूँ ॥ १ ॥

लेखनी

पारस-विनिर्मित लेखनी ! मुक्ता-मसी मैं घोल दूँ;
कल हंस मानस चित्र दे—हृद् सार अपना खोल दूँ ।
यह यान हो, पिक-तान हो, वीणा मनोरम पाणि हो;
अरविंद-उर तनहार हो, 'अरविंद' पर वर पाणि हो ॥ २ ॥

उपक्रमणिका

किसका रहा वैभव बताओ एकसा सब काल में;
जो था कभी उन्नत वही बिगड़ा-हुआ है हाल में।
इस दुर्दिवस में वह कथा हे लेखनी ! लिखनी तुझे;
पाषाण-उर हम हो गये, उर पद्म करना है तुझे ॥ ३ ॥

जाना नहीं था यह किसी ने यह दशा हो जायगी !
रंभा सरीखी आर्य-भूमी श्वान-घर बन जायगी !
जिस पर चले थे देव फूले हंस की-सी चाल से;
उस पर चलेंगे अब मनुज हम दनुज की-सी चाल से ! ॥ ४ ॥

हो क्या गया इस भाँति तुझको हे दुखे ! हे मात रे !
हा ! चन्द्र-सा आनन कहाँ वह ! क्षीणतम यह गात रे !
अभिराम सुषमा होगई जो लुप्त पतझड़-काल में—
उद्यान में देखी गई फूली हुई मधुकाल में !!! ॥ ५ ॥

पर हाय ! तेरे रूप का तो दूसरा ही हाल है;
मधुकाल अगणित जा चुके, बदला न कुछ भी बाल है !
पगली तथा तू क्षीण-वदना ! काल-अभिमुख-गामिनी,
क्या अन्त तेरा आलगा है ? अस्थि-पिंजर-वाहिनी !!! ॥ ६ ॥

चिन्ता नहीं है, आज जो तू पद-दलित यों होगई;
हा ! देव-धरती ! आज तेरी क्या दशा यह होगई !
टूटे हुये भी हार फिर से सूत्र में पोये गये !
अनमोल मुक्ता सूत्र तेरे क्या सदा को खो गये ? ॥ ७ ॥

चिंता न है कुछ इस पतन से, यद्यधिक हो जाय तो;
हम हों समुन्नत, भाव यह हर व्यक्ति में जग जाय तो।
तमलोक का सीमान्त ही प्रारंभ शुच्यालोक का;
हम हैं पुरुष, पुरुषार्थ ही उन्मूल करता शोक का ॥ ८ ॥

नभ में चढ़े का अभिपतन अनिवार्य्य क्या होता नहीं ?
जो ले चुका है जन्म, क्या मरना उसे पड़ता नहीं ?
यह विश्व वर्तनशील है—हम जानते सिद्धान्त हैं।
बनकर अनेकों भ्रष्ट होते—मिल रहे दृष्टान्त हैं ॥ ९ ॥

संसार का जीवन-विधाता सूर्य है—जग जानता;
डूबा हुआ अवलोक रवि को शोक क्या वह मानता ?
डूबा हुआ है आज जो वह कल निकल भी आयगा;
मुर्झे हुए मन-पद्म को फिर से हरा कर जायगा ॥ १० ॥

हा ! कौन पुल में भाग्य-दिनकर अस्त तेरा हो गया !
जो आज तक तेरे गगन में फिर नहीं लेखा गया।
क्यों आर्य ! अब तक सो रहे हो कामिनी-रस-रास में ?
पाश्चात्य जनपद ने हरा वैभव हमारा हाँस में ॥ ११ ॥

कहना न होगा की सभी के प्राण-त्राता आर्य हैं;
विद्या—प्रदाता—ज्ञानदाता—अन्नदाता आर्य हैं।
उन्नत हुए ये देश जितने आज जग में दीखते;
होती न यदि इनकी दया, ये किधर जाते दीखते ? ॥ १२ ॥

विज्ञान के वैचित्र्य से जो हो रहा अभितोष है;
यह तो हमारे ज्ञान का बस एक लघुतम कोष है।
नक्षत्र, ग्रह, तारे तथा इस व्योम पर अधिकार था;
अपवर्ग तक भी जब हमारे राज्य का विस्तार था ॥ १३ ॥

हे आर्य ! जागो आज तुम, दुर्दैव तुम पर आ गया;
तुम मोह-तंद्रा में पड़े, अवसर उसे है मिल गया।
चालीस कोटि वीर हो, दुर्दैव से जमकर लड़ो;
हो बात केवल एक ही—बस मारदो या मर पड़ो ॥ १४ ॥

पूर्वज तुम्हारे कौन थे, क्या बैठ कर सोचा कभी ?
यह प्रश्न जीवन-मंत्र है, मिल कर सभी सोचो अभी।
भूले हुये हैं आज हम निज देश के अभिमान को;
विज्ञान को, श्रुतिज्ञान को, सद्ज्ञान को, सम्मान को ॥ १५ ॥

अपवर्ग भारत था कभी ! अब हा ! नरक से है बुरा;
अशरण-शरण जो था कभी ! हा ! आज चरणों में गिरा।
प्रस्ताव यदि जन-ऐक्यता का एक मत से पास हो;
यह एक दम स्वाधीन हो, निष्णात हो, मधुमास हो ॥ १६ ॥

आर्य-भूमी

हिमशैल-माला कोट-सी, जिसके चतुर्दिक छा रही;
जिसके त्रिदिक जल-राशि उर्मिल पर्य्यवेक्षण कर रही।
गिरिराज[1] राजेश्वर कहो, क्या विश्व में कम ख्यात है ?
जिसके सुयश के गान घर घर हो रहे दिन-रात हैं ॥ १७ ॥

इन गिरिवरों से निकल लाखों निम्नगायें बह रहीं;
जो देव भारत को हमारे देव-उपवन कर रहीं।
फिर रत्न-गर्भा भारतो के क्यों न नर नर-रत्न हों ?
स्वर्गीय जीवन के यहाँ उपकरण जब उपलब्ध हों ॥ १८ ॥

विद्या-कला-कौशल सभी का यह प्रथम गुरुराज है;
इसके सहारे विश्व के होते रहे जग-काज हैं।
जो स्वर्ग भी गुण गा रहा हो कौनसा आश्चर्य है?
बस आर्य-भूमी—आर्य-भूमी—आर्य-भूमी आर्य है ॥ १९ ॥

आर्यावर्त-माहात्म्य

जब अन्य जनपद के निवासी थे दिगंबर घूमते;
घनघोर जंगल में विचरते, फूल, पल्लव चूमते।
भार्या, सुता में भी न वे जब भेद थे कुछ जानते;
उस काल, दक्षिण❀ काल में मनु-धर्म हम थे मानते ॥ २० ॥

ऋषभादि[२] जिनवर,विमल[३] कुलकर,राम[४] रावण[५] हो चुके;
भूमी-विलोड़न[६], लंक-दाहन[७], देव-रण[८] थे हो चुके।
श्रुति-शास्त्र[९]-रचना हो चुकी थी, यम, नियम थे बन चुके;
ये तब जगे जब धर्मके त्रय[१०]मत हमारे लड़ चुके ॥ २१ ॥

उत्कीर्ण होकर मत-मतान्तर विश्वभर में छा गये;
जो सो रहे थे जग गये, अब देव दानव बन गये।
कानन अगम सब कट गये, हर ठौर उपवन हो गये;
आखेट कर जो पेट भरते थे कृषक वे हो गये ॥ २२ ॥

ये कर्म हैं उस काल के सब जबकि हम गिरने लगे;
हम आप गिरते जा रहे थे, सोचने पर क्यों लगे।
जिस वेग से आगे बढ़े थे शतगुणे गिर कर पड़े;
विद्या-कला-कौशल सभी के चक्र उल्टे चल पड़े ॥ २३ ॥

❀ पूर्वार्द्ध।

मिट जाय चाहे मेदिनी—हम, कर्म मिट सकते नहीं;
अस्तित्व इनका तब मिटेगा जब अमर होंगे नहीं।
कंकाल काले रूप में भी भूप तुमको कर दिया;
बस लोह को पारस छुआ कर हेम हमने कर दिया ॥ २४ ॥

था भोग-भूमी[11] देश, चाहे कर्म-भूमी[12] नाम था;
अपवर्ग से बढ़कर यहाँ उपलब्ध सुख अभिराम था।
हम कर चुके थे स्वर्ग विस्मृत, स्वर्ग इसको मानते;
इसको पिता, माता इसे; निज गेह इसको जानते ॥ २५ ॥

हर ठौर जम्बूद्वीप[13] में थे कल्प-तरुवर[14] लग रहे;
पुरुषार्थ बिन प्रारब्ध-फल स्वादिष्ट मधुरम फल रहे।
सब थे चराचर प्रेम भीगे, प्रेममय सर्वस्व था;
थे अग्नि, जल, पव प्रेममय; यह प्रेममय सब विश्व था ॥ २६ ॥

अमृत भरे कंचन-कलश से हाय ! विष क्यों बह रहा !
चेतन हमारे प्राण में जड़-भाव किदृश आ रहा !
क्या भाग्य-दिनकर छिप गया ! क्या सृष्टि का विश्राम है !
केली-सदन यमराज का अब देश भारत-धाम है !!! ॥ २७ ॥

थी जैन-जगती जो कभी मन-मोहिनी, भू-सुन्दरी—
हा ! अब बचाने प्राण-धन वह शोधती गिरि-कन्दरा।
कैसी बनी थी मेदिनी ! अरु मेद-चर थे क्या कहूँ !
इसको कहूँ यदि मानसर—कल हंस हम थे, क्या कहूँ !! ॥ २८ ॥

हम रत्न से कंकड़ हुये; हम राव थे, अब रंक हैं;
होकर अहिंसा-स्रोत की झख मर रही अघ-पंक हैं।
कितना बढ़ा है ? बढ़ रहा फिर घोर पापाचार है;
श्रीमंत का अब दीन पर होता निरंतर वार है ॥ २६ ॥

भूमी हमारी काल-दर में गप्प यों हो जायगी;
फिर यत्न कितने भी करो, फिर तो न मिलने पायगी।
पुरुषार्थ में ही अर्थ है हे बंधुओं ! यदि स्वाँस हो;
दाँहे खड़े अखिलेश हैं, यदि ईश में विश्वास हो ॥ ३० ॥

दिनकर हमारा खो गया, अब रात्रि का विश्राम है !
करवाल लेकर काल अब फिरता यहाँ उद्दाम है !
हे नाथ ! आँखों देखते हो, मौन कैसे हो रहे ?
क्या पापियों को पाप का तुम भोगने फल दे रहे ? ॥ ३१ ॥

हमारे पूर्वज

मैं उन असीमाधार की सीमा कहूँ कैसे ? कहो;
क्या नीरधर जलराज को भी कर सके खाली ? कहो।
मैं रश्मि हूँ, वे रश्मिमाली; वे उदधि, घटवान मैं;
संगीत वे, सारंग-पाणी; क्या करूँ गुणगान मैं ! ॥ ३२ ॥

हैं गान उनके गूँजते अब भी गगन, जलधार में,
पवमान, कानन, अनल में अरु फूट कर तल पार में।
पिक, केकि, कौंका, सारिका सब गान उनके गा रहे;
पर हाय ! मेरे तार विगलित स्वर बिगाड़े रो रहे ॥ ३३ ॥

अपमान होगा हाय ! उनका जो मनुज सीधा कहूँ;
तब सुर कहूँ, सुरनाथ या फिर और कुछ ऊपर कहूँ।
जब इन्द्र, ज्योतिष, देव, व्यंतर कर रहे सेवा अहो !
वे तरण-तारण, पतित-पावन, सिद्ध, योगी थे अहो ॥ ३४ ॥

धर्मार्क-सरसिज-प्राण थे, वे धर्मपंकज-भृंग थे;
वे धर्म-सरवर-मीन थे, सोपान-मेरु-शृंग थे।
वे सर्ववर्त्ती भाव थे, वे मोक्षवर्त्ती जीव थे;
चारित्र की दृढ़ नीव थे, वे ज्ञान-दर्शन-सीव थे ॥ ३५ ॥

वे शान्ति-संयम पूर्ण थे, दाक्षिण्य में रण-शूर थे;
वे धीर थे, गंभीर थे, सद्धर्म-मद में चूर थे।
निर्लेप थे, निष्पाप थे, कामारि थे, शिवराज थे;
वे कर्म-पशुदल काटने में वर निडर पशुराज थे ॥ ३६ ॥

थीं शारदा झाड़ू लगाती, चरण चपला चूमती;
जिनके घरों में सिद्धियाँ थीं सेविका-सी घूमतीं।
था कौन-सा वह ऐश ऐसा—प्राप्त उनको हो नहीं;
पर ऐश के पीछे उन्हें आतुर कभी देखे नहीं ॥ ३७ ॥

वे चक्रवर्त्ती भूप थे, षड्-खण्ड लोकाधीप थे;
भू, वह्नि, जल, नभ, वायु पर उनके जगामग दीप थे।
था कौन ऐसा कर्म जिसको वे नहीं थे कर सके;
था कौन ऐसा सुर, मनुज जिसको न वश वे कर सके ?॥ ३८ ॥

करते नहीं थे कर्म ऐसा की किसी को कष्ट हो;
सब एक सर के मीन थे फिर क्यों किसी से रुष्ट हो।
आचार में, व्यवहार में, सन्मार्ग में सब एक थे;
मृगराज, गौ, मृग, गज, अजा जल घाट पीते एक थे ॥ ३९ ॥

साहित्य उनने जो लिखा वह क्या लिखेगी शारदा;
आसीन थी उन पूर्वजों के मुख-कमल पर शारदा।
उन ज्ञानगरिमागार के जो गान गायक गा रहे;
मृतलोक से सुर लोक में वे हैं बुलाये जा रहे ॥ ४० ॥

कृतकाल में कलिकाल का वे स्वप्न खलु थे देखते;
सर्वज्ञ थे, सब काल दर्शी, क्यों न ऐसा पेखते।
वे प्रलय तक के हाल सब हैं लिख गये, लिखवा गये;
कौशल-कला-विज्ञान के भंडार पूरे भर गये ॥ ४१ ॥

हम देखते हैं ठीक वैसा जिस तरह श्रुति कह रहे;
हैं आज घटना-चक्र उनके शब्द अनुसर घट रहे।
विश्वास उनके कथन में फिर भी हमें होता नहीं;
हा! क्या करे ? यह काल जब करने हमें देता नहीं ॥ ४२ ॥

है कौन ऐसा मनुज वर जो साम्य उनका कर सके ?
बल, ज्ञान, तप, व्यवहार में जो होड़ उनकी कर सके।
क्या जगमगाती दीप-बाती साम्य रविका कर सकी ?
हो क्या गया यदि कीट पर अधिकार स्थिर भी कर सकी ॥ ४३ ॥

इन तीर्थ-धर्मावास की दृढ़ नींव वे हैं दे गये;
आगम, निगम, श्रुति, यम, नियम विस्तारपूर्वक रच गये।
साहित्य जितना है रचा, उपलब्ध उतना हो नहीं;
अवशिष्ट हित भी हम कहीं शायद अधूरे हो नहीं ! ॥ ४४ ॥

उन पूर्वजों की शील-सीमा कौन कविपति गा सका ?
गुणगान-सागर-कूल का भी दर्श भर नहिं पा सका।
वे थे विरति, रतिवान हम; निर्धूम वे, हम धूम हैं;
वे योग थे, हम रोग हैं; वे थे सुमन, हम सूम हैं ॥ ४५ ॥

था चक्रवर्त्ती राज्य जिनका, राज्य वित्तागार था;
अमरेश, व्यंतर, देव से जिनका अधिक परिवार था।
ऐसे मनुज वर आज तक हम में करोड़ों हो गये;
जो दान, संयम, शील के शुचि बीज जग में बो गये ॥ ४६ ॥

आदर्श जैन

जो आदि जिनवर, आदि विभुवर, आदि नरवरराज थे;
जो आदि योगी, आदि भोगी, सुर-असुर-अधिराज थे।
जो आदि नायक, विधि-विधायक प्रथम जग में हो गये;
श्रुति शास्त्र कहते नाभिसुत[१७] को वर्ष अगणित होगये ॥ ४७ ॥

क्या आयु, संयम, शील में इनका कहीं उपमान है ?
किसको मिला आध्यात्म में इनके बराबर मान है ?
हैं कौन विभुवर अजित[१८], अर[१९]-से विश्व-जेता हो गये ?
क्या शान्ति[२०], संभव[२१] नाथ-से जग के विजेता हो गये ? ॥४८॥

द्वादश[22] हमारे चक्र-पाणी धर्म-ध्वज लहरा गये;
नवदेव[23], नवप्रतिवासुसुर[24] कौशल अनन्वय कर गये।
उस मोक्ष-चेता भूप का बस भरतचक्री[25] नाम था;
जिस पर पड़ा इस देश का भारत अनन्वय नाम था ॥ ४९ ॥

अरिहंत जिनवर षष्ट अष्टादश[26] हमारे होगये;
तप, तेज, बल, शुचि शील की वे सीम अन्तिम होगये।
किन्नर, सुरासुर, मनुज के वे लोक-लोका-धीप थे;
निरपेक्ष थे, निर्लेप थे, परमात्म चक्राधीप थे ॥ ५० ॥

सब राज-कुल-सम्पन्न थे, सब सार्वभौमिक भूप थे;
नरराज थे, नर-रूप में अखिलेश के सब रूप थे।
साम्राज्य इनका सुखद था, दुख, शोक, चिन्ता थी नहीं,
मिथ्या-अहिंसामय कहीं भी स्थान मिलता था नहीं ॥ ५१ ॥

इनके अनूपम त्याग की नर कौन समता कर सका ?
साम्राज्य, सुख, परिवार यों नर कौन तृणवत तज सका ?
उपसर्ग सहकर भी कभी दुर्भाव थे भाते नहीं;
इनके उरों में बन्धु-रिपु के भेद जगते थे नहीं ॥ ५२ ॥

वे शान्ति में विग्रह कभी उत्पन्न करते थे नहीं;
क्रिमि, कीट का भी अर्थ हित अपकार करते थे नहीं।
धन-माल, वैभव, राज से उनको न कुछ भी लोभ था;
आत्मार्थ तजते विश्व को उनको न होता क्षोभ था ॥ ५३ ॥

स्वच्छन्द थे, स्वाधीन थे, निर्मोह थे, निष्काम थे;
गतराग थे, गतद्वेष थे, शुचि शील-संयम-धाम थे।
भगवान के भगवान थे, वे नाथ के भी नाथ थे;
तारण-तरण थे, सिद्ध थे, सर्वज्ञ थे, सुर-नाथ थे ॥ ५४ ॥

सुत-चीर कर भी था जिन्होंने धर्म का पालन किया[२७];
रह कर बुभुक्षित आपने मुनिराज को भोजन दिया[२८]।
था श्येन को आमिष दिया यों काट कर निज देह से[२९];
आख्यान ऐसे नरवरों के गूँजते सुर-गेह से ॥ ५५ ॥

आजन्म जीवन में कभी भी झूठ था बोला नहीं;
चण्डाल के घर बिक गये, पर सत्य-व्रत तोड़ा नहीं[३०]।
धर्मार्थ तजते प्राण जिनको निमिष था लगता नहीं;
ऐसे मनुज कोई बतावे मिल सकें जो यदि कहीं ॥ ५६ ॥

नरसिंह थे, नरश्रेष्ठ थे, नरदीप थे, नरनाथ थे;
भूनाथ थे, सुरनाथ थे, रघु-कुल-मणी रघुनाथ थे[३१]।
वन-वास वत्सर चार दश का राज्य तज किसने किया ?
आज्ञा पिता की मान यों किसने शिविर वन में दिया ॥ ५७ ॥

बलराम[३२], लक्ष्मण[३३], भरत[३४], अर्जुन[३५], भीम[३६] भ्राता होगये;
न्यायी युधिष्ठिर[३७] राम[३८] से भी ज्येष्ठ भ्राता हो गये।
है कौन ऐसा देश जो उपमान इनका दे सके ?
रथ धर्म के सद्‌तेज से क्या बात जो भू छू सके ॥ ५८ ॥

दे दान कंचन का प्रथम जल-पान करना चाहिए;
आये हुए का द्वार पर सत्कार होना चाहिए।
नृप कर्ण,[39] राजर्षी बली[40] ये वीर दानी हो गये;
ये प्राण रहते याचकों की तृप्ति मन की कर गये ॥ ५९ ॥

गोपाल, यदुपति, नंदनंदन, गोप-वल्लभ, कृष्ण वा,
राधारमण, मोहन, मधुसुदन, द्वारकापति विष्णु वा,
गिरिधर, मुरारी, चक्र-पाणी एक के सब नाम हैं;
मुरली पति वासुदेव[41] के बस कर्म भी अभिराम हैं ॥ ६० ॥

लव-कुश[42] तथा अभिमन्यु[43] जैसे वीर बालक थे यहाँ;
रण-शौर्य्य जिनका देख कर सुर रह गये स्तंभित जहाँ।
सुकुमार नेमिनाथ[44] का बल, आत्मबल भूलें नहीं;
अन्यत्र ऐसे वीर बालक आज तक जन्मे नहीं ॥ ६१ ॥

गणितज्ञ कितने हैं यहाँ? हों सामने आकर खड़े;
गिनिये दयाकर वीर[45] में कितने कड़े संकट पड़े?
आदर्श ऐसे एक क्या लाखों तुम्हें मिल जायँगे;
जग शान्तिपूर्वक ढूँढ लो; वे तो अनन्वय पायँगे ॥ ६२ ॥

पर हाय! फूटे भाग हैं, इतिहास पूरा है नहीं;
जिन पार्श्व[46] प्रभु के पूर्व की तो झलक पड़ती है कहीं।
हा! एक सरिता की कहो ये शाख दो कैसे हुई?
ये जैन वैदिक निम्नगायें किस तरह क्यों कर हुईं? ॥ ६३ ॥

अंगार सिर पर धर दिये, था मोह प्राणों का नहीं[४७];
थे प्राण तक भी दे दिये, यव-भेद पर खोला नहीं[४८]।
जलधार में फेंके गये[४९], हा! हा! त्वचाकर्षण हुआ[५०];
उपसर्ग ऐसे ही सहे वह कौन जग में है हुआ! ॥ ६४ ॥

हम क्या सुदर्शन[५१] श्रेष्ठि-सुतकी शील-सीमा कह सके!
उस शूल के मधु पुष्प क्या होये बिना थे रह सके!
वे पुंश्चली-प्रासाद में चौमास भर भी रह गये[५२];
हैं कौन ऐसे जो कि यों पड़ कर अनल में बच गये! ॥ ६५ ॥

हम क्या कहें? जग कह रहा, थे देव भी हम-से नहीं;
इस शील दुर्गम वर्त्म में सुर खा गये ठोकर कहीं।
परमेष्ठि-मंगल-मंत्र[५३] को नर कौन नहिं है जानता?
अरिहंत, अर्हत्, वीतभव जग पूर्वजों को मानता ॥ ६६ ॥

उपसर्ग इनके आज तक कोई नहीं है गिन सका;
कहकर अनंतातिशय बस अवकाश कविवर पा सका।
अरिहंत थे, ये सिद्ध थे, आचार्य थे ये धर्म के;
व महा महोपाध्याय थे, मुनिवर्य्य थे मन-मर्म के ॥ ६७ ॥

हम गर्व जितना भी करें, उतना ही इन पर योग्य है;
हम ही नहीं हैं कह रहे, सब कह रहे जन विज्ञ हैं।
ये मन, वचन अरु कर्म से हर भाँति पावन हो गये,
मन के धनी, मनदेव सबे ये अनन्वय हो गये ॥ ६८ ॥

हे बंधुओं इन पूर्वजों का मान करना सीख लो;
गुण, भाव इनके देखकर अनुकार करना सीख लो।
ये धर्म की शिव कर्म की थी ज्योतिधर प्रतिमूर्तियें;
इनके उरों में थी अहिंसा की तरंगित उर्मियें ॥ ६९ ॥

कैसे प्रसारक धर्म के ये धर्म-केतन हो गये;
किनमें? कहाँ तुम ढूँढते? ये रत्न तुम में हो गये।
ये त्याग के, वैराग्य के आदर्श अनुपम रख गये;
जग से नहीं कुछ लेगये, जग को अमर धन दे गये ॥ ७० ॥

कैत्रिम्य इन में आज का-सा नाम को भी था नहीं;
यों बन्धु-रिपु की भावना इनके उरों में थी नहीं।
आध्यात्म-सर के ये सभी नित पद्म रहते थे खिले;
सबके लिये इनके हृदय के द्वार रहते थे खुले ॥ ७१ ॥

अरिहंत २४

विचरण जहाँ इनका हुआ सुख-शान्ति-रस सरसा गया;
योजन सवासौ प्रांत में दुखमूल जड़ से उड़ गया।
दश चार लोकालोक के सुर, इन्द्र इनको पूजते;
पैंतीस गुणयुत वचन में अरिहंत के स्वर कूँजते ॥ ७२ ॥

सिद्ध २२

ये अष्ट कर्मों का भयंकर काट दल आगे बढ़े;
त्रयरत्न-धारी ये हमारे मोक्ष-पद पर जा चढ़े।
अपवर्ग से ये पुरुष वर क्या लौट कर फिर आयँगे?
उजड़े हुये क्या देश को आबाद फिर कर जायँगे? ॥ ७३ ॥

आचार्य ५६

पंचेन्द्रियें थीं हाथमें, त्रय गुप्तिमय व्यवहार थे;
क्रोधादि के सब थे विजेता, शीलयुत आचार थे।
व्यवहार, पंचाचार उनके, समिति उनकी देख लो;
सौजन्य का इनकी क्रिया में रूप अन्तिम पेख लो॥ ७४॥

गंभीरता, दृढ़ता, मधुरता, निष्कपटता, शौर्य्यता,
शुचि शीलता, मृदुता, सदयता, सत्यता, ध्रुव धैर्य्यता।
कितनी गिनाऊँ आपको मैं आर्य-जन-आदर्शता;
कैसे भरूँ मैं वर्ण में अर्णव बतादो तुम पता॥ ७५॥

आदर्श आचार्य

आदर्श थे आचार्य ऐसे—वे दिवस भी एक थे;
हम थे अखिल! आचार्य सुर-नर-वंदिता अखिलेश थे।
श्री आर्य खपुटाचार्य[५७] कैसे धर्म के दिग्पाल थे;
नत चैत्य गौतम बुद्ध का यह कह रहा—सुरपाल थे॥ ७६

गुरुवर स्वयंप्रभ[५८] रत्नप्रभ[५९] आचार्य-कुल-अवतंस हैं;
श्रीमालपुर, उपकेशपुर जिनके सुयश-ध्वज-अंश हैं।
थे आर्य समिताचार्य[६०] जिनका नाम अब भी ख्यात है;
जिनको अचल, सर, नद, नदी होते न बाधक—ज्ञात है॥ ७७

श्रीवज्रसेनाचार्य[६१], मुनिवर रत्न[६२], कोविद चन्द्र[६३] से;
आदर्श थे मुनिवर यहाँ राजर्षि प्रसन्नचन्द्र[६४] से।
ये थे चमकते चन्द्रवत जब जैन-जगती-व्योम में;
जाज्वल्यता का लास था, जग था न तब तम-तोम में॥ ७८

पाखण्ड, मिथ्या, पाप का उस काल में नहिं अंश था;
पापी, नराधम मनुज का उन्मूल ही तब वंश था।
नरभूप गर्दभने[६५] जहाँ दुष्भाव आर्यो पर किया;
मुनिकालिकाचार्यो[६६] ने कैसा वहाँ था प्रण किया ॥ ७६ ॥

जिस काल इन्द्राचार्य[६७], तिलकाचार्य[६८], द्रोणाचार्य[६९] थे,
श्रीमल्लवाद्याचार्य[७०], सूराचार्य[७१], वीराचार्य[७२] थे;
मुनिवर जिनेश्वर[७३] जीव देवाचार्य[७४] दुर्गाचार्य[७५] थे;
उस काल भारत आर्य था, इसके निवासी आर्य थे ॥ ८० ॥

श्रीमानतुंगाचार्य[७६] ने पद-बंध चौमालीस से—
खण्डित किये पद-बंध, पाया मान मनुजाधीश से।
गुरु थे सुहस्ती[७७] आर्य को सम्राट संप्रति[७८] मानते;
आदर्श का आदर्श ही सम्मान करना जानते ॥ ८१ ॥

श्री मानदेवाचार्य[७९] के, श्री अभयदेवाचार्य[८०] के,
वेताल वादी शान्ति[८१] मुनि के, खप्पभट्टाचार्य[८२] के,
वर्णन गुणार्णव का करूँ कैसे भला मैं वर्ण में!
पर भान पा सकते नहीं आदित्य का क्या किरण में? ॥ ८२ ॥

जिनदत्त[८३], कुशलाचार्य[८४], जिनप्रभ[८५] युग-प्रभावक हो गये;
श्री चन्द्रसूरीश्वर[८६] प्रभाचन्द्रार्य[८७] मुनिमणि हो गये।
पंडित शिरोमणि आर्य आशाधर[८८] अमितगति[८९] आर्य-से—
विश्रुत जगत में होगये साहित्य-सेवा कार्य से ॥ ८३ ॥

आदर्श मुनि आचार्य ऐसे हैं अनंता हो गये;
जिनके सुयशके चिह्न कुछ तो रह गये, कुछ खो गये।
वे आज के आचार्य से दंभी कुरागी थे नहीं;
वाचाल, भोजक द्वेष-सेवी इस तरह वे थे नहीं ॥ ८४ ॥

अभित्याग उनका धर्म था, संयम मनोहर कर्म था,
शुचि-शील-परिपालन रहा उनका सदा ही वर्त्म था।
वे सहन कर उपसर्ग भी विचरण सदा करते रहे,
गिरते हुये को स्थान पर थे वे सदा धरते रहे ॥ ८५ ॥

उनके यशस्वी तेज से आलोकयुत हम आज हैं;
उनकी दया से विश्व में हम मान पाते आज हैं।
हम गर्वयुत हैं कह रहे—ऐसे न जग में साधु हैं;
पूर्वज हमारे हैं श्रमण, पूर्वज हमारे साधु हैं ॥ ८६ ॥

आदर्श स्त्रियाँ

कैसी यहाँ की नारियें थीं—सहज ही अनुमान है;
नर-रत्न जब इनको कहो, अनमोल नर की खान है।
ज्यों चन्द्र के विस्तार से होती अधिक है चन्द्रिका;
नर-चन्द्र की जग-व्योम-तल प्रसरित हुई त्यों चन्द्रिका ॥ ८७ ॥

कंथानुगामी थीं सभी वे लाजवंती नारियें;
पतिदेव को प्राणेश थीं वे मानती सुकुमारियें।
वे सौख्य में उपदेशिका, लक्ष्मी-स्वरूपा थीं सभी,
पति से नहीं वे दौख्य में पर भिन्न होती थीं कभी ॥ ८८ ॥

सहयोग उनका था सदा प्रति मानवोचित कर्म में;
थीं रोकती जाते हुए नर को सदा दुर्वत्म में।
सम भाग जो नर-कर्म में इनका न यदि होता कहीं;
वह भूत भारतवर्ष का गौरव-भरा होता नहीं ॥ ८६ ॥

शुचि शील के शिव ताप से पावक बदल जल हो गया[११];
ज्यों-ज्यों दुशासन चीर खींचे चीर त्यों त्यों बढ़ गया[१२]।
आदेश से उनके कहो क्या कुष्ट नहिं था मिट सका;
श्रीपाल का कुष्टी बदन कंचन नहीं क्या बन सका[१३] ?॥ ६० ॥

पति दुःखमोचन के लिये थी आप शैव्या[१४] बिक गई;
तारा[१५] कुसुमबाला[१६] कहो किस देश में हैं हो गई ?
वे संग रहकर कंथ के रणमें सदा लड़ती रहीं;
थीं निज करोंसे पुत्र, पति को भेजती रण में रहीं ॥ ६१ ॥

प्रत्यक्ष मानों देवियाँ थीं, ऋद्धियाँ मृत-वर्ग की;
आनंद घरमें मिल रहा था, चाह नहिं थी स्वर्ग की।
सुर-स्थान की संप्राप्ति में अपमान हम थे जानते;
जब हो रहे थे मोक्ष पद के कर्म—क्यों नहिं मानते ? ॥ ६२ ॥

चल चालिनी से भी सुभद्रा[१७] सींचती जल है अहो !
चढ़ती अनल को भी शिवा[१८] उपशाम करती है अहो !
काटे हुए भी हाथ जिसके फिर यथावत हो रहे[१९], !
इन शील-प्राणा नारियों के गान घर घर हो रहे ॥ ६३ ॥

अरि के करों में तात ने सौंपा जिसे निज भाग्य पर;
वन में मरी फिर छोड़ जिसको मातृ जिह्वा खींच कर।
रथवान, गणिका, श्रीमती को भूल हम सकते नहीं;
हा ! वासुमति[१००] ने कष्ट कितने थे सहे—गिनती नहीं ॥ ६४ ॥

तन के सिवा सर्वस्व को जो द्यूत में थे खो चुके;
तज वेष सारे राजसी अवधूत जो थे हो चुके।
होकर दुखी जिसने प्रिया को घोर वन में था तजा;
करती उसे सम्पन्न है फिर भीम नृप की आत्मजा[१०१] ॥ ६५ ॥

ब्राह्मी[१०२], सुजेष्ठा[१०३], सुन्दरी[१०४] का ब्रह्म-व्रत क्या था कहो !
सुर, इन्द्र जिस पथ में गिरे उसमें चली थीं ये अहो !
ये आर्य-कुल की दीपिका थीं ज्ञान-गौरवशालिनी;
ये धर्म-कुल-निशिराज की थीं शरद निर्मल चाँदनी ॥ ६६ ॥

थीं पुष्प[१०५] चूला, धारिणी-सी[१०६] देश में सुकुमारियें;
थीं मदनरेखा[१०७], नर्मदा[१०८], सुलसा[१०९], सुसीमा[११०] नारियें।
जब अञ्जना[१११], पद्मावती[११२] के तप मनोहर हो रहे;
था स्वर्ग-भूमी देश यह, थे भाग्य इसके जग रहे ॥ ६७ ॥

तुम विश्वभर की नारियों के कष्ट पहिले तोल दो;
राजीमती[११३] के कष्ट का फिर तोल मुँह से बोल दो।
देखो उधर वर लौट कर आया हुआ है जा रहा;
यह ज्ञान माया का कहो रण द्वन्द कैसा हो रहा ! ॥ ६८ ॥

ये देखिये इस ठौर पर हैं प्रश्न कैसे हो रहे!
विदुषी जयन्ती[114] को स्वयं भगवान उत्तर दे रहे।
इन भूत दत्ता[115], यक्ष दत्ता का स्मरण-बल देखिये;
फिर सप्त बहिनों के लिये उपमान जग में लेखिये ॥ ९९ ॥

ये लक्ष्मियाँ थी, देवियाँ थीं, ऋद्धियाँ थीं, सिद्धियाँ;
तन, मन, वचन अरु कर्म से करती रहीं नित वृद्धियाँ।
ये थीं सुधा, गृह था सदा देवामृताकर, सुख भरा;
ऋतुराज का चहुँ राज्य था, सब भाँति हर्षित थी धरा ॥ १०० ॥

ऐसा न कोई कर्म था जिसमें न इनका योग हो;
घर में तथा बाहर सदा इनका प्रथम सहयोग हो;
गार्हस्थ्य-सुख को देख कर थे देव मोहित हो रहे;
नरलोक को सुरलोक से सब भाँति बढ़कर कह रहे ॥ १०१ ॥

पूर्वज हमारे देव थे, नर-नारियाँ थी देवियाँ;
थीं मनुज-मानस का अलौकिक कान्त-दर्शी उर्मियाँ।
इनके सुभग अनुचर्य्य से कृतकाम पूर्वज हो गये;
हम आम्रतरुवर-डाल पर फल हाय! कटु क्यों लग गये ॥ १०२ ॥

ये थीं किशोरी वृद्धा-राजी, शील-धन पति-लोक था;
ये ध्येय थीं, वे ध्यान थे, परिव्याप्त प्रेमालोक था।
जमदग्नि[116], कौशिक[117], इन्द्र तक जिस मार्ग विचलित हो गये;
उस मार्ग में ही शील के शुचि पुष्प इनके खिल गये ॥ १०३ ॥

हमारी सभ्यता

आदिम हमारी सभ्यता के स्रोत का उद्गम कहो;
गंभीर इतना ज्ञान है ? जो आदि का संवत् कहो।
कर क्रान्तियें सब जाति की आध्यात्म-रस थे पी रहे;
बीते हजारों युग उन्हें—तुम क्रान्तियें अब कर रहे ॥ १०४ ॥

जिनवर ऋषभ को तुम कहो अब अब्द कितने हो गये ?
कुल कर हमारे सप्त इनसे पूर्व ही है हो गये।
जब अन्य जनपद के मनुज थे जम्बुकों-से चीखते;
उस काल भारत वर्ष में हम काव्य-रचना सीखते ॥ १०५ ॥

थे व्योमतल को चूमते प्रासाद, केतन हँस रहे;
गृह-द्वार के तोरण हमारे चीर नभ थे जा रहे।
चाहे किशोरी कल्पना इसको भला कोई कहें;
तनुमान था जब पंचशत धनु, मान केतन का कहें ॥ १०६ ॥

जो आज के दिन जग रहे, वे आज-सा ही जानते;
या राग से, या द्वेष से संकोच करते मानते।
कुछ वीर संवत् पूर्व के हैं चिह्न हमको मिल रहे[११८];
जिनसे हमारे काल का अनुमान जन हैं कर रहे ॥ १०७ ॥

ये नर अकिंचन आज के सम्पन्न निज को कह रहे;
मत्सरमय महाशान्ति के ये बीज जग में बो रहे।
थल, जल, गगन सब ठौर अत्याचार इनके होरहे;
सम्पन्न हो सब भाँति से उपकार हम थे कर रहे ॥ १०८ ॥

था जाति से नहि नेह अनुचित, बन्धु से नहिं राग था;
कुछ मोह माया में न था, कुछ शक्ति में नहिं राग था।
हम सार्वभौमिक ऐश को जो छोड़ते देरी करें;
ज्योतिष, पुरंदर, सुर हमारी किस तरह सेवा करें ? ॥ १०९ ॥

हमने हमारे राज्य में किस को बताओ दुख दिया;
क्रिमि कीट का भी जानते हो मनुजवत रक्षण किया।
क्या दण्ड से भी है कभी जग-शान्ति स्थापित हो सकी ?
जलती अनल जल-धार बिन उपशाम किस से होसकी ? ॥ ११० ॥

धन-द्रव्य-नारी-अपहरण उस काल में होते न थे;
संभव कहो कैसे कहे, जब पुष्प हम छूते न थे।
त्रियंच, मनुज, जड़ आदि में सब प्रेमयुत व्यवहार था;
सब प्रेम के ही रूप थे, सब प्रेममय संसार था ॥ १११ ॥

हम काल को तो कवल से भी तुच्छतर थे मानते;
हम मुक्ति, सुरपद का इसे बस यान केवल जानते।
यह यान था, इस पर चढ़ें हम जा रहे शिव धाम थे;
कोई न हमको भीति थी, जीवन परम अभिराम थे ॥ ११२ ॥

याचक हमारे सामने जो आगया वह बन गया;
सर्वस्व उसको दे दिया, कुछ वचन फिर भी ले गया।
हम गिर गये थे, पर गिरे को हम उठाते नित रहे;
निर्जीव को जीवन हमारे प्राण नित देते रहे ॥ ११३ ॥
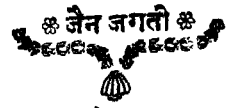
जब व्यञ्जनों को छोड़ कर उपवास हम थे कर रहे;
थे अन्य जनपद उस समय भी मांस-भक्षण कर रहे।
तप, दान, विद्या, ज्ञान, गुण हमने सिखाये हैं उन्हें;
पशु से बदल कर सभ्य नर हमने बनाये हैं उन्हे ॥ ११४ ॥

हम दूसरों का देख कर दुख शान्त रहते थे नहीं;
दुख मूल से हम काट कर विश्राम लेते थे कहीं।
उनके दुखों को दुख भला हम क्यों न अपना मान लें;
'आत्मस्य आत्मा बन्धु है' जब थे भला हम जानते ॥ ११५ ॥

सब भाँति से हम थे समुन्नत, गर्व पर कुछ था नहीं;
छोटे-बड़े के भेद का दुर्भाव मन में था नहीं।
अघ-पंक में लिपटे हुये को थे उठाते गोद में;
सर्वस्व हम देते रहे थे दीन को आमोद में ॥ ११६ ॥

हम शील-सरवर-मीन थे, तप-दान-संयम-प्राण थे;
सद्भाव-शतदल-भृङ्ग थे, त्रय लोक के हम प्राण थे।
उपकार, धर्मोद्धार में हमको न आलस था कहीं;
बस, ध्येय दलितोद्धार के अतिरिक्त दूजा था नहीं ॥ ११७ ॥

सिद्धान्त-रचना है दयामय शील-समता से भरी;
हमने जिसे आचार में, व्यवहार में व्यवहृत करी।
प्रतिकूल यदि कुछ होगया था—कौन किसको दण्ड दें;
अभियुक्त अपने आपको अपराध का खुद दण्ड दें ॥ ११८ ॥
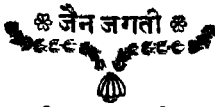
आलोचना करते सदा थे भोर में निशिचार की;
करते सदा फिर साँझ को दिन में किये व्यापार की।
थे मास की अरु पक्ष की भी कर रहे आलोचना;
वर्षान्त में करते तथा साँवत्सरिक आलोचना ॥ ११९ ॥

जीवन हमारा देख कर सुर, इन्द्र भी अनुचर हुए;
प्रति कर्म में जो थे अथक सहयोग दे सहचर हुए।
ऐसे अनूठे कर्म-प्राण क्या कहीं देखे गये ?
बस मोक्ष-जेता, भव-विजेता हम हमी-से हो गये ॥ १२० ॥

क्या होगया जो आज हम अघ-पंक में हैं सड़ रहे;
आकादि के जो शुष्क उड़ कर पत्र हम पर पड़ रहे।
यह पुण्य-जल से जिस समय सरवर भरा हो जायगा;
हम पंक में पंकज खिलेंगे आवरण हट जायगा ॥१२१॥

ये गर्व इतना कर रहे हैं 'रेडियो' 'नभयान' पर;
यह तो बतादे—ज्ञान इनका है मिला किस स्थान पर।
हैं 'शब्द' रूपी यह कहो किसने तुम्हें पहिले कहा ?
सुर-यान यदि होते नहीं, नभयान क्या होते यहाँ ? ॥१२२॥

हम भवन पर बैठे हुए थे जग बदरवत देखते;
है क्या, कहाँ पर हो रहा—सब मुकुरवत थे पेखते।
तन-मन-वचन में, कर्म में सबके हमारा वास था;
अज्ञेय हो—ऐसा न कोई दीखता न[illegible]पास था।

हम पूर्व भव को देखकर आगे चरण थे रख रहे;
हम जानते थे मोक्ष में कितने चरण हैं घट रहे।
पर हाय ! दंभी आज हम प्रति दिवस पीछे हट रहे;
छाया प्रलय की पड़ गई या भाग्य खोटे आ रहे ॥१२४॥

क्या नाथ ! नर-संहार हित विज्ञान निर्मापित हुआ ?
पच्छिम दिशा में देखिये—इस रूप से विकशित हुआ।
आकाश, ग्रह, त्रयलोक अरु सब तत्त्व हमको ज्ञात थे;
फिर भी कभी हम दीन पर करते न यों उत्पात थे ॥१२५॥

शिव शान्ति जग में हो नहीं सकती कभी संहार से;
क्या भूप कोई कर सका है शान्ति अत्याचार से ?
वर्त्तन अहिंसावाद का जब विश्वभर में होयगा;
तब अभिलषित शिव शान्ति का साम्राज्य विकशित होयगा ॥१२६॥

क्रिमि कीट तक भी बस हमारे राज्य में स्वच्छन्द थे;
पशु पूर्ण काली रात्रि में निश्चिंत थे, निष्फंद थे।
हम ईश-नियमों की कभी अवहेलना करते न थे;
हम स्वार्थ बस पर-अर्थ का यों अपहरण करते न थे ॥१२७॥

कृषि-कर्म को करते हुए थे भरण—पोषण कर रहे;
हम उदर-पोषण इस तरह संसार-भर का कर रहे।
पर आज तो गौमांस ही अधिकांश का आधार है;
शुभ्रांशु के पश्चात् क्या छाता सदा तमभार है ? ॥१२८॥

आस्ट्रेलिया अरु एशिया, यूरोप, अरबीस्थान को,
दुनिया नयी, अरु अफ्रीका, ईराक अरु ईरान को[११९]—
हम पूर्व तुम से जा चुके, इतिहास देखो खोल कर।
तुमने नया है क्या किया दुनिया नयी को खोज कर ? ॥१२९॥

जो तुम पुराने ग्रंथ कुछ भी नेत्र-भर भी देख लो;
संबंध कैसे थे हमारे—तुम परस्पर पेखलो।
हम भूप थे, वे थीं प्रजा, थे प्रेम-बन्धन जुड़ रहे;
हो बहन भाई धर्म के ज्यों, रस परस्पर जग रहे॥ १३० ॥

सम्पन्न होकर भी नहीं हम भोग में आसक्त थे,
हम दान जीवन दे रहे थे, आप जीवन-मुक्त थे।
जीवन-मरण के तत्त्व सारे थे करामल हो रहे;
सत्कर्म करने में तभी हम इस तरह थे बढ़ रहे॥ १३१ ॥

हम आदि करके कर्म को थे मध्य में नहिं छोड़ते;
सागर हमारा क्या करे! हम शुष्क करके छोड़ते।
हम पर्वतों को तोड़ कर समतल धरा कर डालते;
भू, अनल, नभ, वायु, जल आदेश नहिं थे टालते॥ १३२ ॥

परमार्थ हित ही थे हमारे कर्म सारे हो रहे;
कैत्रिम्यता पर इस तरह से थे नहीं हम मर रहे।
यूरोप के अब देश जो उन्नत कहे हैं जा रहे,
वे क्या कभी बतलायँगे किस देश के अनुचर रहे॥ १३३ ॥

विद्वान थे, गुणवान थे, तप-दान में हम शूर थे;
हम नीति, नय, विद्या-कला में अधिकतर मशहूर थे।
हमने किसी को युद्ध का पहले निमंत्रण नहिं दिया;
यमराज ने हम से अकड़ कर अन्त अपना ही किया ॥ १३४ ॥

पर ये नपुंशक आज के निंदा हमारी कर रहे;
बक्काल, बणिया ये हमें मुँह वक्र करके कह रहे।
संतोष इतने से नहीं पर हाय! इनको हो रहा;
भारत अहिंसावाद से ये कह रहे हैं, रो रहा ॥ १३५ ॥

गजराज को भी भूँकता कुक्कुर सदा लेखा गया;
ये सब समय के चक्र से सब काल में पेखा गया।
गांधी[१२०] अहिंसा-सत्य पर हैं जोर कितना दे रहे;
जग-शान्ति के सिद्धान्त इनको वे हमारे कह रहे ॥ १३६ ॥

हमारी प्राचीनता

उन पर दया आती हमें जो बौद्ध[१२१] हमको कह रहे;
है कौन-सा आधार वह जिस पर हमें यों कह रहे।
'हम बौद्धमत की शाख हैं' थे मूर्ख जो कहने लगे;
वे मत नये अब देख कर हैं देखलो छिपने लगे ॥ १३७ ॥

पुस्तक[१२२] पुरातन देखिये, इनमें हमारा लेख है;
श्रुति वेद में, स्तोत्रादि में भी उल्लिखित कुछ लेख है।
संतोष फिर भी हो नहीं, मनु-नीति को भी देख लो;
गीता, महाभारत कथित तुम सार पहिले लेख लो ॥ १३८ ॥

ब्राह्मण-कलेवर की कहो काया-पलट किसने करी ?
हिंसामयी थी वृत्ति उसकी वीर[123] ने अपहृत करी।
पाकर हमारा योग ये ब्राह्मण अभी तक जी सके;
हो भिन्न हमसे बौद्ध जन कबके किधर को जा चुके॥ १३६ ॥

व्याख्यान में ये मिश्र[124] जी वेदान्त-चर्चा कर रहे;
प्राचीनतम सबसे हमारे जैन-दर्शन कह रहे।
व्याख्यान अपने में तिलक[125] सुन लीजिये क्या कह रहे;
सबसे पुरातन जैन-दर्शन-शास्त्र ही बतला रहे॥ १४० ॥

गोविंद वरदा[126] कान्त के मन्तव्य भी तुम लेख लो;
फिर कृष्ण[127] शर्मा आदि की भी मान्यताएँ पेख लो।
गिरनार[128], हर्टलजान्स[129] के मन्तव्य भी तुम देखना;
फिर आदि के संवत् विषय में ध्यान से अवलेखना॥ १४१ ॥

प्राचीनता को नष्ट जो भी हैं हमारी कर रहे;
वे द्वेष या अज्ञानता से इस तरह हैं कर रहे।
स्वाध्याय अरु सद्भाव वे ज्यों ज्यों बढ़ाते जायँगे;
हम को अगाऊ पायँगे, वे गुण हमारे गायँगे॥ १४२ ॥

श्रुति वेद हमको आज भी हैं पूर्वतम बतला रहे;
विद्वान, कोविद, वेदविद स्वीकार हम को कर रहे।
ज्यों ज्यों अधिक भूगर्भ जन उत्कीर्ण करते जायँगे;
षड्खण्ड में पद-चिह्न वे हर स्थल हमारे पायँगे॥ १४३ ॥
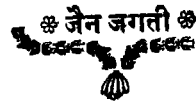
हमारे विद्वान-कलाविद

हम आप मुँह से क्या कहें कितने बड़े विद्वान थे,
पर आज कहना ही पड़ेगा—सब तरह गुणवान थे।
जब हीन हमको देशवासी बन्धु भी कहने लगें;
तब क्यों न हम प्रतिकार में उत्तर जरा देने लगें॥ १४४॥

ये मंत्र-विद्या, तंत्र-विद्या, यंत्र-विद्या, भूत वा,
वैक्रिय-असुर-सुर-यक्ष-विद्या दृष्ट, अन्तर्भूत वा,
ये मृत्यु-जीवन-क्षार विद्या, रस-रसायन-पाक भी,
ये ऐन्द्रजालिक, गणित,ज्योतिष ज्ञात थी हमको सभी॥ १४५॥

जल-वह्नि-बंधन, पवन-स्तंभन, चित्र-वर्पण की कला—
हैं आज ग्रंथित मिल रही ये इस तरह बहतर[130] कला।
इन नर-कलाओं के सिवा नारी-कलायें और थीं;
नारी-कला[131] में नारियें सब भाँति से शिर-मौर थीं॥ १४६॥

वाणिज्य, नर्तन, चित्र, नय, संगीत, सद्विज्ञान वा,
आतिथ्य, वैद्यक, काव्य, व्यञ्जन, दंभ, जल्पन, ज्ञान वा,
आकार-गोपन, हस्त-लाघव, धर्ममय सब नीतियें,
इनमें कलाविद् थीं हमारी नारियें, नवयुवतियें॥ १४७॥

विद्वान—

जग में अधिक विद्वान हमसे था नहीं कोई कहीं;
हम ही नहीं हैं कह रहे, अब कह रही सारी मही।
पर हाय! हमसे अनुग, अंगज क्यों सदा जलते रहे;
कलिकाल-मदिरा-रमण से मत-भ्रष्ट हो बकते रहे॥ १४८॥

पुण्यापराजित[132], नंदि[133], नंदिल[134], भद्रभुज[135], श्रुतकेवली,
सब थे चतुर्दश पूर्व के ज्ञाता धुरंधर निर्मली।
श्री आर्यरक्षित[136] सूरि के सुमनेश सेवक थे रहे;
ये योग चारों आज उनका पूर्ण परिचय दे रहे ॥१४९॥

गणधर[137] हमारे ये सभी कैसे प्रखर विद्वान थे ?
इनके विनिर्मित देख लो ये ग्रन्थ वे गुणवान थे.!
थे ग्रंथ ऊमा[138] स्वाँति ने शत पंच संस्कृत में लिखे;
थे चैत्य तक भी सूत्र मुँह से बोलते उनके सखे ! ॥१५०॥

कविराज शेखर[139] चक्रपति से याद जब हमको नहीं !
निर्लज्ज कितने हाय ! हैं, बोलो पतन क्यों हो नहीं !
श्री कुन्दकुन्दाचार्य[140] का साहित्य कितना श्लिष्ट है !
देवर्धि[141] ने सब शास्त्र विस्मृत फिर रचे नव इष्ट हैं ॥१५१॥

किस भाँति मूत्रोच्चार से श्री पादलिप्ताचार्य[142] ने—
कंचन किया रज-धूल का, माना जिन्हें नागार्य[143] ने—
उस व्योमचारी साधु का तुम नाम भी नहिं जानते;
सीमा कहाँ बोलो सखे ! अब हो पतन की मानते ? ॥१५२॥

नवरत्न विक्रम भूपके पाण्डित्य में प्रख्यात हैं,
साहित्य-रचना आज भी जिनकी अनूठी ख्यात है।
लेकिन दिवाकर[144] सेन के ये सामने नहिं टिक सके,
सम्राट विक्रम जैन फिर होये बिना नहिं रह सके ॥१५३॥

वादीन्द्र[145], वादी[146], हेम[147], हरि[148], श्रीपाल[149], परिमाल[150] हो चुके,
कविवर धनंजय[151], वज्रस्वामी[152] से विशारद हो चुके।
ज्योतिष, गणित, श्रुति शास्त्र के ये सब प्रवर पण्डित हुये;
इनका सदय साहित्य पाकर आज हम मण्डित हुये ॥१५४॥

अकलंक[153], कविपति वाग्भट[154] को भूल हम किसविध सकें ?
क्या बौद्ध उनके सामने शास्त्रार्थ में थे टिक सके ?
कवि भूप कालीदास हल जिस प्रश्न को नहिं कर सके—
उस प्रश्न को धनपाल[155] कविवर सहज ही थे कर सके ॥१५५॥

कविवर दिवाकर ग्रन्थ कितने कुल मिलाकर लिख गये ?
इतने कि जितने विश्वभर के कवि मिलाकर लिख गये।
कविभूप कालीदास, होमर शेक्सपीयर मान्य हैं;
श्रीमाल[156], मण्डन[157], चक्रवर्ती[158] भी न पर अवमान्य हैं॥
॥१५६॥

आनन्दघन[159] के काव्य की रस युक्त रचना लेखिये;
बस सूर-तुलसी-सा मजा इनके पदों में देखिये।
कविराज जटमल[160] की 'लता' है आज भी लहरा रही;
पर गन्ध उसकी हम अभागों को न कुछ भी आ रही ॥१५७॥

आचार्य आत्मारामजी[161] कुछ वर्ष पहिले हो गये;
पंडित यशोपाध्यायजी[162] शतग्रन्थकर्ता हो गये।
क्या सूरिवर राजेन्द्र[163] को यह जग नहीं है जानता ?
इनके विनिर्मित कोष की कितनी बड़ी है मान्यता ?॥१५८॥

हमारा साहित्य

साहित्य-सरवर है हमारा कमल-भावों से भरा;
जिसमें अहिंसा जल-तरंगें छहरती हैं सुन्दरा।
शुचि शील-सौरभ से सुगन्धित हो रही है भारती,
सद्ज्ञान-परिमल-युक्त यह सलिलोर्मि करती आरती ॥ १५६ ॥

उस आदि प्राकृत में हमारा बद्ध सब साहित्य है;
पर आज प्राकृत-भाषियों का अस्तमित आदित्य है!
ऐसे न हम विद्वान हैं—अनुवाद रुचिकर कर सकें!
जैसा लिखा है, उस तरह के भाव में फिर रख सकें! ॥ १६० ॥

है बहुत कुछ तो मिट गया, अवशिष्ट भी मिट जायगा;
हो जायगा वह नष्ट जो कर में हमारे आयगा!
हे आदि जिनवर! आपके ये वाक्य हितकर मिट रहें!
उद्दाम होकर फिर रहे हम, हैं परस्पर लड़ रहे! ॥ १६१ ॥

भण्डार जयसलमेर[१६४], पाटणके[१६५] हमारे लेख्य हैं;
क्रिमि, कीट, दीमक खा रहे उनको वहाँ पर—पेल्य है!
मुद्रित करालें आप हम, यह भाव भी जगता नहीं!
भवितव्यता कैसी हमारी, जान कुछ पड़ता नहीं! ॥ १६२ ॥

आगम—

हा! लुप्त चौदह[१६६] पूर्व तो हे नाथ! कब से हो गये!
हा! कर्म-दर्शक शास्त्र ये कैसे मनोहर खो गये!
जब नाम उनका देखते हैं, हाय! रो पड़ते विभो!
कैसे मनोहर नाम हैं! सिद्धान्त होंगे क्या, प्रभो? ॥ १६३ ॥

कितने हमारे शास्त्र थे, हा ! शेष आधे भी नहीं;
इन अर्द्ध शास्त्रों में कहें क्या अंश पूरे भी नहीं !
द्वादशिक[167] वत्सर-काल विभुवर ! रूग्ण पर श्रावण हुआ !
अवशिष्ट सब साहित्य का भी अंत फिर पूरा हुआ ! ॥ १६४ ॥

देवर्धिगणि आगम-निगम हैं नव्य विधिसे लिख गये;
परिलुप्त होते जिनवचन को प्रगट फिर से कर गये।
अनुवाद, टीका आदि फिर पाकर समय होते रहे;
नव नव्य इन पर ग्रंथ फिर विद्वान जन लिखते रहे ॥१६५॥

विश्रुत पुरातन वेद[168] जिन-साहित्य के ही अंश हैं;
अब जिनवचन से हो विलग वे हो गये अपभ्रंश हैं।
यों छिन्न होकर भी अभी साहित्य है पूरा अहो !
जीवन जगाने के लिये वह आज भी शूरा अहो ! ॥१६६॥

दुनियाँ हमारे दर्शनों[169] को देख विस्मित हो रहीं;
इन दर्शनों से ज्ञान की विकशित कलाएँ हो रहीं।
उन पूर्वजोंने दर्शनों में तत्त्व कैसा है भरा !
अन्यत्र ऐसा आज तक कोई किसी ने नहिं करा ॥१६७॥

सिद्धान्त ऐसे जटिल हैं, हम समझ भी सकते नहीं;
इनकी उपेक्षा हेतु इस करते निरक्षर हम नहीं ?
सिद्धान्त जिन-सिद्धान्त-से पाश्चात्य[170] अब स्थिर कर रहे;
वे देख लो अब जीव-शोधन तरु, लता में कर रहे ॥ १६८ ॥

यह मत अहिंसावाद का शिव-शान्ति का संदेश है;
हर ग्रन्थ को तुम देख लो, उसमें यही आदेश है।
हम कह चुके थे ये कभी से पूर्व लाखों वर्ष ही;
है कर रहा उपदेश फिर भी आज भारतवर्ष ही ॥ १६९ ॥

अंग १७१

साहित्य कितना उच्च है? तुम अंग पढ़कर लेख लो;
आचार का, व्यवहार का सब मर्म उनमें पेख लो।
व्रत, सत्य, संयम, शील का उपदेश इनमें है भरा;
अवलोकते ही कह पड़ोगे—क्या विवेचन है करा! ॥ १७० ॥
तुम ग्रन्थ आचारांग-से कुछ ढूँढ़ कर तो दो बता;
सूत्रोत्तराध्ययन तुमको हम बाद में देंगे बता।
अनुयोग, नंदीसूत्र का हरि-द्वार तुमको खोल दें;
ये मुक्ति-माणिक-रत्न-भूत हैं—आपको अनमोल दें ॥ १७१ ॥

उपांग १७२

सद्भाव कहते हैं किन्हें, क्या रूप उनका सत्य है?
तप, दान, ब्रह्माचार क्या है? क्या अहिंसा कृत्य है?
अपवर्ग, ग्रह, नक्षत्र का यदि विशद वर्णन चाहिए।
तब द्वादशोपांग तुमको आद्यन्त पढ़ने चाहिए ॥ १७२ ॥

पयन्ना १७३

ये दश पयन्ना ग्रन्थ तुमने आज तक देखे नहीं!
जिनराज, त्यागी, सिद्ध के क्या रूप हैं—पेखे नहीं!
स्याद्वाद कहते हैं किसे? क्या मोक्ष का सद्रूप है?—
ये मोक्ष-जिनपद-मर्म के साहित्य-दर्पण रूप हैं ॥ १७३ ॥
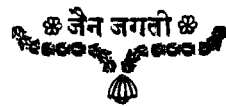
छेद-सूत्र [१७४]

काठिण्य साध्वाचार का छः छेद-सूत्रों में पढ़ो;
इनमें कथित आचार को तुम पाल जिनपद पर चढ़ो।
जब अंग-चालन सूक्ष्म भी सावद्य है माना गया;
तब पार्थमय व्यवहार पर कितना लिखा होगा गया ? ॥ १७४ ॥

संसार के सब साधुओं का एक सम्मेलन करो;
फिर त्याग किसका है अधिक—निष्पक्ष हो चर्चा करो।
इन छेद-सूत्रों से इतर हर ग्रन्थ की तुलना करें;
सिद्धान्त जिनका श्रेष्ठ हो, सब जन उसे स्वीकृत करें ॥ १७५ ॥

चार मूल व दो चूलिका सूत्र [१७५]

चत्वार सूत्रों में हमारे तत्त्व सारे आगये;
जीवन-मरण के भेद वर्णित चूलिका में हो गये।
बस सूत्र अङ्गोपाङ्ग में कर्त्तव्य-वर्णन आ गया;
इनमें विवेचन पूर्ण साङ्गोपाङ्ग जग का हो गया ॥ १७६ ॥

धर्म-ग्रन्थ—

इस ग्रंथ गोमठसार[१७६] के सम ग्रंथ दूजा है नहीं;
अतिरिक्त इसके मोक्ष-पद का वर्त्म दूजा है नहीं।
श्रुति वेद, गीता ग्रंथ के सब सार इसमें आ गये;
सम्पूर्ण मानव-धर्म के सिद्धान्त इसमें भर गये ॥ १७७ ॥

नवतत्त्व[१७७] दृश्यादृश्य जग का एक सत्तम ग्रन्थ है;
इस ग्रंथ में नव तत्त्व जग के कह गये निर्ग्रंथ हैं।
यदि सूत्र तत्त्वार्थाधिगम[१७८] तुमने न देखा हो कभी;
तुम मनुज नाहिं, खर-मूर्ख हो विद्वान होकर भी अभी ॥ १७८ ॥

जिनराज-वाङ्मय-कोष में ऐसे अनेकों ग्रंथ हैं;
आत्माभिसाधन के लिये बस एक वे शिव-पंथ हैं।
भवभावना[१७९], जीवानुशासन[१८०], पुष्पमाला[१८१] लेखिये;
द्वादशाकुलक[१८२], निर्वाणकलिका[१८३], भावसंग्रह[१८४] देखिये॥ १७९॥

न्याय—

हम सप्तभंगी[१८५] ग्रंथ का यों कर रहे अभिमान है;
उपहास के अतिरिक्त जग ने क्या किया सम्मान है?
इस लोक के, परलोक के सब मर्म इसमें हैं भरे;
यह पार्थमय संसार में आलोक स्वर्गिक है अरे!॥ १८०॥

संसार-भर के ग्रंथ-गिरि पर चाह से पहिले चढ़ो,
पाषाण, तरुवर, पात पर उत्कीर्ण भावों को पढ़ो,
नयवाद-भूमी में हमारी उतर कर विश्राम लो;
निःकृष्ट, मध्यम, श्रेष्ठ फिर है कौन?—उसका नाम लो॥ १८१॥

साहित्य-जग में जैन-दर्शन-न्याय अति विख्यात हैं;
पचास पुस्तक इस विषय की उत्तमोत्तम ख्यात हैं।
स्याद्वाद[१८६], न्यायालोक[१८७], अरु मार्त्तण्ड[१८८] विश्रुत ग्रंथ हैं;
कादम्बरी, रघुवंश के ये जोड़ के सब ग्रंथ हैं॥ १८२॥

पुराण १८९

रचना पुराणों की कहो कितनी मनोहर गम्य है!
अन्तर्जगत, संसार का लेखा यहाँ पर रम्य है!
इतिहास, आगम, नर-चरित इनको सभी हम कह सकें;
सद्चित्र इनको भूत भारतवर्ष के हम कह सकें॥ १८३॥

चरित्र—

जीवन-चरित्रों की कमी भी है न कुछ हमको यहाँ;
हो श्रेष्ठ पुरुषों की कमी तो हो कमी इनकी यहाँ।
जीवन, कथानक, रास से साहित्य-गृह भरपूर हैं;
हमको दिखाने के लिये पथ तिमिर में ये सूर हैं ॥ १८४ ॥

अवकाश तुमको है नहीं, हा ! हो नहीं फिर भी कभी;
पर मात्र कहने से हमारे तनिक तो सुन लो अभी।
त्रयपठ-शलाका-चरित[१९०] मौलिक चिर पुरातन ग्रंथ है।
पौराण, रामायण, महाभारत व गीता ग्रंथ हैं ॥ १८५ ॥

नीति—

सब नीतियों का मर्म चाहो, नीति अर्हत्[१९१] पेख लो;
मनुनीति से भी अधिक इसमें नीति-वर्णन लेखलो।
यही मजमूआ-फौजदारी, हिन्द-ताजीरात था;
कानून सायर था यही, कानून भूमी ख्यात था ॥ १८६ ॥

नाटक—

जिनराज, मुनि, आचार्य को जब पात्र कर सकते नहीं;
ऐसी दशा में नाट्य-रचना क्या कठिन होती नहीं ?
धर्माभ्युदय[१९२], विक्रांत[१९३] कौरव, मैथिली कल्याण[१९४] से-
फिर भी यहाँ उपलब्ध हैं नाटक मनोहर प्राण से ॥ १८७ ॥

चंपू—

नाटक जहाँ हमने लिखे, चंपू लिखे थे साथ में;
साहित्य का यह अंग है, कैसे न रखते हाथ में ?
पुरुदेव[१९५] चंपू, यशतिलक[१९६] उत्कृष्ट हैं सब भाँतिसे;
जिन-वाक्कलन सम्पन्न है साहित्य की सब जाति से ॥ १८८ ॥

व्याकरण—

छोटे बड़े चालीस लगभग व्याकरण के ग्रंथ हैं;
साहित्य वर्णाकीर्ण गिरिके ये सभी हरि-पंथ हैं।
सम्पन्नता सब भाँति ये साहित्य की बतला रहे;
साहित्य-सरके पार हमको यान ये पहुँचा रहे ॥ १८६ ॥
यह शाकटायन[१९७] व्याकरण सबसे अधिक प्राचीन है;
श्री हेमचन्द्राचार्य्यकृत[१९८] व्याकरण उपमाहीन है।
व्युत्पत्ति से हर शब्द की उत्पत्ति हमने है करी;
संस्कृत[१९९] सुना है मातृ-भाषा आदि प्राकृत[२००] की अरी ! ॥१९०॥

कोष—

कुछ हेमकृत उस कोष[२०१] की जटिलता तो लेखिये;
प्रत्येक अक्षर के वहाँ बस अर्थ नाना पेखिये।
राजेन्द्र सूरीश्वर रचित अभिधान[२०२] नामा कोष-से—
है कौन विश्रुत कोष जग में ?—ढूँढ़ लो संतोष से ॥ १९१ ॥

छंदोऽलंकार—

काव्यानुशासन[२०३] नाट्य[२०४] दर्पण वृत्ति कैसे ग्रंथ हैं ?
साहित्य पुष्पित हो रहा कर प्राप्त ऐसे ग्रंथ हैं।
अवयव सभी साहित्य के तुमको यहाँ मिल जायँगे;
आबाल जिन-साहित्य को साहित्य-तरु का पायँगे ॥ १९२ ॥

महाकाव्य—

उत्कृष्ट काव्यों से भरा साहित्य भूषित हो रहा;
ज्यों पद्म-संकुल रम्य सरवर हो मनोहर लग रहा।
है जोड़ के रघुवंशसंभव, मेघदूतेत्यादि के;
क्या शब्द-परिचय दे यहाँ परिशिष्ट पर्व[२०५] इत्यादि के ॥ १९३ ॥

ज्योतिष-शिल्प—

श्रीजन[206] ज्योतिष, भुवन[207] दीपक-से न ज्योतिष ग्रंथ हैं;
ज्योतिष[208] करण्डक विश्व-ज्योतिष में अनूपम ग्रंथ है।
विज्ञान ज्योतिष का भला कैसे न आविष्कार हो?
जब लग्न मुहुर्त के बिना होता न कुछ व्यापार हो ॥ १६४ ॥

मंत्र-ग्रन्थ—

वह मंत्र-बल तो बस हमारा देखने ही योग्य था;
मंत्र-बल से सुर-भुवन में गमन हमारा योग्य था।
अतएव विद्यारत्न[209], अद्भुत[210] सिद्धि पुस्तक लेख्य है;
आकाश[211] गामी पुस्तिका सब भाँति से अवपेख्य है ॥ १६५ ॥

हाँ, ग्रन्थ चाहे आपको ऐसे कहीं मिल जायँगे;
पर भाव, भाषा में अधिक कल वे न इनसे पायँगे।
नख-शिख-विवेचन जिस तरह हर तत्त्व का इनमें हुआ;
वैसा न वर्णन आज तक अन्यत्र ग्रन्थों में हुआ ॥ १६६ ॥

ऐसा न कोई है विषय, जिस पर न हमने हो लिखा;
जिस पर कलम थी चल गई, उसको न फिर बाकी रखा।
इतिहास, ज्योतिष, नय, निगम, छंदागमालंकार से।
साहित्य संकुल है हमारा, पूर्ण है रसचार से ॥ १६७ ॥

जितने हमारे ग्रन्थ है, सब को गिनाने यदि लगें;
संक्षेप में प्रत्येक का यदि कुछ विषय कहने लगें;—
ऐसे खड़े कितने बड़े पुस्तक नये हो जायँगे;
नामावली, विषयावली के ग्रंथ शत बन जायँगे ॥ १६८ ॥

कला-कौशल

कितनी कलायें थीं हमारी पूर्व, हम बतला चुके;
दश-चार विद्या-विज्ञ पूर्वज पार जिनका पा चुके।
चौषठ-कलाविद थे पुरुष, सब थीं कलाविद नारियें;
कौशल-कला में देवियें थीं उस समय सुकुमारियें ॥ १९९ ॥

शिल्प-कला—

ये सब कलायें आज केवल पुस्तकों में रह गईं!
जब थे कलापति मर गये, सतियें कलायें हो गईं!
कुछ खण्डहर में रह गईं दब कर तथा भूगर्भ में!
खिन्न बदन होकर पड़ीं कुछ वक्र विकृत दर्भ में! ॥ २०० ॥

ये आपको भग्नांश, पेखो दूर से ही दीखते;
हा! हंत! जिनमें चील कौवे निडर होकर चीखते।
जो अभ्र-भेदी थे कभी, वे आज रज में मिल गये;
आख्यान माण्डव[२१२], लक्ष्मणी[२१३] के हाय! विस्मृत हो गये ॥ २०१ ॥

सुरकेत अर्बुद[२१४] शृङ्ग के, गिरिनार[२१५] पर्वत के अहो!
तारंग[२१६] पर्वत, सिद्ध[२१७] गिरि के चैत्य हैं कैसे कहो!
सम्मेत शेखर[२१८] के अभी भी चैत्यगृह सब हैं नये!—
वर्षो सहस्रों झेल कर यों रह सके कितने नये? ॥ २०२ ॥

उदयाद्रि[२१०] का अरु खण्डगिरि[२२०] का नाम तो होगा सुना;
कैसे कलामय स्थान हैं, यह भी गया होगा सुना।
ऐलोर[२२१], ऐजेंटा गुफायें ऐतिहासिक चीज हैं;
ये कर-कला के कोष हैं, ये सुर-विनिर्मित चीज हैं ॥ २०३ ॥

मथुरा[222], बनारस[223], ओरिसा[224] की वह न शोभा है कहीं,
पावापुरी[225], अमरावती[226] भी रम्य वैसी हैं नहीं;
पर चिह्न इनमें शिल्प के जो भी पुराने शेष हैं।
हा ! गत हुई उस भारती के अंश ये अवशेष हैं॥ २०४ ॥

यह एक प्रस्तर का बना चौबीस गज का चैत्य है[227];
यह कर-कला तो है नहीं, दैवी-कला का कृत्य है।
इससे बड़ा संसार में है बिम्ब कोई भी नहीं;
अनुकूल इसके एक दिन जिन-शिल्प की सीमा रही॥ २०५ ॥

हा ! खो गये भूगर्भ में लाखों नमूने शिल्प के;
जब भी मिलेंगे सिद्ध होंगे पूर्व अगणित कल्प के।
कुछ खो गये, कुछ दूसरों ने छीन हमसे भी लिये;
कुछ यवन[228] अत्याचारियों ने नष्ट, खण्डित कर दिये॥ २०६ ॥

कैसी कलामय थी भला वह शिल्प-कौशल की कला !
कैसे कलायुत हाथ होंगे शिल्प-शास्त्री के भला !
जब इंच भरकी कोरणी में माह लगता था अहो !
फिर वस्तु होगी मूल्य में कितनी भला यह तो कहो ?॥ २०७ ॥

आयाग[229]पट के खण्ड तुम मथुरापुरी में लेख लो;
कर दो तुम्हें भी हैं मिले, कर की कला तो पेख लो।
वे मनुज थे या और कुछ; या देव-माया थी विभो !
उनके करों में थी कला या थे कलामय कर प्रभो !॥ २०८ ॥

चित्र-कला—

वह चित्र-कौशल आज हा ! नरके न कर में रह गया;
कर में भला कैसे रहे ? कल में विचारा पिस गया !
चल-चित्र चलते देख कर अब हम अचम्भित हो रहे;
पड़कर चमक के चक्र में हम भूल अपने को रहे। ॥ २०९ ॥

खलु चित्र-प्रिय हम थे सभी, बिन चित्र गृह था ही नहीं;
उन मंदिरों का चित्र-धन हम कह सके—सम्भव नहीं।
प्रत्यक्ष था या चित्र था, कुछ था पता चलता नहीं;
थे चित्र[२३०] चलते-बोलते भ्रम क्यों भला फिर हो नहीं ? ॥२१०॥

प्रेमी मनुज को प्रिय-प्रिया की याद जो आती नहीं;
यह चित्र-कौशलकी कला निःसृत कभी होती नहीं।
हम भक्त दृढ़ थे ईश के, परिवार से अनुराग था;
बढ़ता गया लाघव, यथा बढ़ता गया शुचि राग था ॥ २११ ॥

मूर्ति-कला—

करते न आविष्कार यदि हम मूर्ति जैसी चीज का;
मिलना कठिन होता अभी कुछ धर्म के भी बीज का।
हो प्राण व्याकुल मूर्ति में हैं देखते भगवान को;
यह मूर्ति है भगवान की, यह शास्त्र है अज्ञान को ॥ २१२ ॥

हमको मनोविज्ञान का होता न यों सद्ज्ञान रे !
शिव भाव लाना मूर्ति में क्या है कभी आसान रे ?
रस-धार करुणा-प्रेम की रे ! मूर्ति से बहती रहें;
वह भव्य भावोद्भाविनी तन, मन, वचन हरती रहें ॥ २१३ ॥

सब भाँति भक्तों के लिये यह मूर्ति ही आधार है;
योगीजनों के तो लिये भगवान यह साकार है।
कितना रसद लगता हमें है चित्र अपने बन्धु का;
फिर क्यों न सबको हो सुखद यह बिम्ब करुणासिन्धु का ॥२१४॥

भगवान कायोत्सर्ग में कैसे मनोहर लग रहे!
शिव भाव-सरवर बिम्ब-तल पर क्या सुभग लहरा रहे!
वर्षा सुधा की दर्शकों के ये हृदय पर कर रहे;
पाषाण-उर के भाव-प्रस्तर भाव पंकज कर रहे ॥ २१५ ॥

संगीत-कला—

संगीतमय जड़-जीव हैं, संगीतमय सब लोक हैं;
संगीत का तो मनुज तो क्या, इन्द्र तक को शौक है।
अवहेलना हम इस कला की कर न सकते थे कभी;
संगीत, कीर्तन, नृत्य से विभु को रिझाते थे सभी ॥ २१६ ॥

गंधर्व[२३१] सारी जाति का संगीत ही व्यापार था;
इसने किया जग में प्रथम संगीत-आविष्कार था।
यदि मात्र पल भर के लिये यह स्वर-कला कल-भग्न हों;
हत् कान्ति बस हो जायगी यह भूमि भारत नग्न हो ॥ २१७ ॥

संगीत बिन नाटक, सभा, परिषद् अलोनी दीखती;
हम देखते हैं तान पर धुनती मृगी शिर दीखती।
संगीत पर उन पूर्वजों ने ग्रन्थ गहरे हैं लिखे;
संगीत जीवन-मित्र है जग-चर-अचर का हे सखे! ॥ २१८ ॥

जैन धर्म का विस्तार

यह जैन मत था विश्व-मत माना हुआ संसार में—
हैं चिह्न ऐसे मिल रहे कुछ ठौर, कंदर, गार में।
वत्सर अनंता पूर्व ही हम दिग्विजय थे कर चुके।
हा ! बहुत करके चिह्न तो अब तक हमारे मिट चुके ! ॥ २१९ ॥

कुछ चिह्न ऐसे हैं मिले आस्ट्रेलिया[२३२] इत्यादि में;
जिनसे पता चलता हमें, जग-धर्म था यह आदि में।
यह भूमि भारतवर्ष इसका आदि पैतृक वास है;
अतिरिक्त भारत के सभी जनपद रहे उपवास हैं ॥ २२० ॥

थे राम-रावण-से हमारे धर्म के नायक अहो !
रावण सरीखे भक्त क्या अन्यत्र जन्मे हैं कहो !
सब बन्धु यादव[२३३] वंश के छप्पन कोटी❀ जैन थे;
कितने मुरारी काल में भाई हमारे जैन थे ? ॥ २२१ ॥

मुख धर्म चारों वर्ण का था आदि से जिन धर्म ही;
क्षात्र-मत था, विप्र-मत था, था शूद्र-मत जिन धर्म ही।
अवतार इसके क्या नहीं हैं क्षात्र-कुल में से हुए ?
आचार्य, गणधर, साधु इसके वर्ण चारों से हुए ॥ २२२ ॥

उन ऋषभ जिनपति को सभी हैं अन्य मत भी मानते;
अवतार खलु हम ही नहीं, अवतार वे भी मानते।
ये चक्रपति महिभूप थे—पुस्तक पुरातन कह रहे;
जिस धर्म के हों ये प्रवर्तक, क्यों न वह चक्री रहे ? ॥ २२३ ॥

❀ जाति, गोत्र।

द्वादश हमारे चक्र-पाणी विश्व-जय हैं कर चुके;
अमरेश, किन्नर, देव भी जिनकी चरण-रज छू चुके।
इतिहास चाहो आज भी क्रम-बद्ध उनका मिल सके,
हँसते रहे जो आज तक, वे सत्य अब क्यों कह सके ? ॥ २२४ ॥

फूटे सभी के हैं नयन या भ्रष्ट-मति सब हो गये;
शत्रुत्व, मत्सर, द्वेष से सब के वचन, मन रंग गये।
वे मूर्ख हैं या अज्ञ हैं, प्रत्यक्ष झूठा कह रहे;
क्यों बौद्ध-वैदिक धर्म की शाखा हमें बतला रहे ? ॥ २२५ ॥

इतिहास जाति विशेष का क्या दूसरी का हो सके ?
सम्बन्ध दोनों में रहे हो मान्य इतना हो सके।
शाखा किसी मत की नहीं हम सिद्ध अब यह हो गया;
अब कौन वैदिक, जैन में है ज्येष्ठ—इतना रह गया ॥ २२६ ॥

निज देश के इतिहास में इतनी पुरानी जाति का—
उल्लेख कुछ भी हो नहीं–इतिहास वह किस भाँति का !
इतिहास भारतवर्ष के तुम आधुनिक सब देख लो;
उनमें तनिक भी है नहीं वर्णन हमारा लेख लो ॥ २२७ ॥

श्रीमंत, दानी, वीर, नृप हममें अनंता हो गये;
विद्या, कला-कौशल सभी के ज्ञान-धारी हो गये।
इतने नरों में से हमारे लेख्य क्या कोई नहीं ?
–पर द्वेष से मतभ्रष्ट किसकी हो भला सकती नहीं !! ॥ २२८ ॥

हम जैनियों में आज ऐसा एक नहिं विद्वान है,
शुकलाल, बेचर हैं;—भला दो से कहीं संमान है?
इतिहास लिखने की कला पर है न उनके पास में;
क्यों दाँव दूजों के लगें ऐसे न फिर अवकाश में! ॥ २२९ ॥

हमारा राजत्व

राजत्व की भी स्थापना हमने प्रथम जग में करी[२३४];
नर-धर्म के रक्षार्थ हमने स्थापना इसकी करी।
सब आत्मियों के आत्म का जब रूप ही है एकसा;
फिर राव, राजा, रंक में यों भेद होता कौनसा ॥ २३० ॥

हम थे पितावत, हर तरह थी पुत्रवत हमको प्रजा;
द्विज को न लेने में हिचक थी शूद्र की भी आत्मजा।
फिर क्यों प्रजापति को कहो प्यारी प्रजा लगती नहीं?
क्यों मनुज-मानस-द्वीप में रस-धार फिर बहती नहीं? ॥ २३१ ॥

परमार्थ हित राजत्व क्या, अपवर्ग यदि तजना पड़ा—
सब कुछ तजा, सुख से दिया यदि प्राण भी देना पड़ा।
हमको न माया-मोह था, राजत्व से नहिं लोभ था;
राजत्व तजते भूप को होता न कुछ भी क्षोभ था ॥ २३२ ॥

राजत्व-वर्त्ती मात्र थे, पर भोग-वर्त्ती थे नहीं;
होते हुये उपलब्ध वैभव लीन वैभव थे नहीं।
वह भरत-चक्री पुरुषपति कैसा सदाशय भूप था!
होता हुआ वह राज-भोगी राज-योगी भूप था[२३५] ॥ २३३ ॥

हमने न अत्याचार यों था दीन दलितों पर किया;
पापीजनों को भी न हमने विश्व में बढ़ने दिया।
उपदेश को हम दण्ड-नय से अधिक हितकर मानते;
सद्मार्ग लाने की कला हम बहुत अच्छी जानते ॥ २३४ ॥

हमारी वीरता

हम आप जाकर के किसी से कर रहे नहिं युद्ध थे;
श्रोणित बहाकर दीन का पथ यों न करते रुद्ध थे।
थे चक्रवर्त्ती भूप, पर कुछ गर्व हमको था नहीं;
सुरलोक वैभव प्राप्त कर होते बधिर हम थे नहीं ॥ २३५ ॥

गिरिनाथ भी था जन्मते ही वीर विभु के हिल गया[२३६],
आसन स्वयं था इन्द्र का कंपित उसी क्षण हो गया।
इस भाँति के अगणित हमारे वीर नरपति हो गये;
यदि युद्ध उनमें छिड़ गया, थे एक जल-थल हो गये ॥ २३६ ॥

हमने समर अगणित किये, पर आप लड़ने नहिं गये;
उन्मुख हुए हम भूपको पहिले मनाने को गये।
उपयोग चारों नीतियों का अन्त तक हमने किया;
माना न जब अरि ने कथन, होकर विवश फिर रण किया ॥ २३७ ॥

सज्जन, महाशय, सहृदय रिपु रुष्ट होकर आगया;
वह बल हमारा तोलकर भूला हुआ-सा गृह गया।
था वज्र-सा यदि, कुंठ-हृदयी, काल-सा विकराल था;
लख वह हमारा आत्म-बल होता तरलतत्काल था ॥ २३८ ॥

रण-क्षेत्र[२३७] में भी पहुँच कर गल बाँह देकर मिल रहे;
थे रोकने को रक्त-निर्झर यत्न भरसक कर रहे।
दोनों परस्पर युद्ध पति करते कभी द्वौ ओर के;
इस भाँति के प्रस्ताव से कटते न दल द्वौ ओर के ॥ २३९ ॥

आवेश हममें था नहीं, यह विश्व क्या नहिं जानता;
हमको क्षमाधर, शान्त यह जग आज भी है मानता।
निर्बल सबल कहते किसे ? यह प्रश्न हम हैं पूछते;
हैं घट छलकता अधभरा या मुखभरा ? हम पूछते ॥ २४० ॥

तलवार का उपयोग करना निर्बलों का काम है;
हर बात में असि को दिखाना वीर का क्या काम है ?
है आत्म-बल जिसमें नहीं तलवार साधन है उसे;
आत्माढ्य बोलो वचनसे सकता न कर है वश किसे ? ॥ २४१ ॥

था युद्ध जिस दिन छिड़ गया, वह दिन प्रलय का आगया;
जल, थल, अनल, पव, गगन में भूकंप उस दिन आगया।
जल-थल अनलमय हो गया, जल, थल पवनमय हो गये;
जब चक्र-पाणी चक्रियों के चक्र फिरने लग गये ॥ २४२ ॥

सागर,[२३८] स्वयंभू,[२३९] अर,[२४०] अचल,[२४१] जयनाम,[२४२] मघवा,[२४३] भद्र-से;[२४४]
द्विपृष्ट[२४५] कैसे थे बली ? त्रिपृष्ट,[२४६] नृप बलभद्र-से[२४७] !
निष्कुंभ[२४८] तारक[२४९]-से बली अरि क्या हमारा कर सके ?
दर्शन,[२५०] विजय[२५१] बलदेव का क्या बाल बाँका कर सके ? ॥ २४३ ॥

उस मौर्यपति[२५२] भूपेन्द्र की तलवार में क्या तेज था !
क्या ग्रीस-सैन्याधीश[२५३] से लेना सुता भी सहज था ?
क्या कोटिभट श्रीपाल[२५४] का बल जानता यह जग नहीं ?
श्रीपालको वर कोटि भट भी जीत सकते थे नहीं ॥ २४४ ॥

राजर्षि उदयन[२५५] को कहो इतिहास क्या नहीं जानता ?
इसको नपोलिन कह रहा वह, कौन यह नहिं मानता ?
सम्राट श्रेणिक[२५६], नंदिवर्धन[२५७], राष्ट्रपति चेटक[२५८] अहो !
नृप चण्ड[२५९] कैसे थे विजेता ? वीर थे कैसे कहो ? ॥ २४५ ॥

उस खारवेल[२६०] नृपेन्द्र की तलवार में क्या शक्ति थी ?
सम्राट मगधाधीश[२६१] की क्या चल सकी कुछ शक्ति थी ?
कन्दर गुफायें आज भी ये ओरिसा[२६२] की पेख लो;
सम्राट के यश-कीर्ति की ये हैं पताका लेख लो ॥ २४६ ॥

हम युद्ध में अरि से कभी अपधर्म से लड़ते न थे;
बाहर सदा रणक्षेत्र के हम शत्रु रिपु गिनते न थे।
रिपु झुक गया रण-क्षेत्र में यदि या पलायन कर गया;
वह शत्रु से मिटकर हमारा बन्धु सब विध हो गया ॥ २४७ ॥

वैश्य कुल के वीर—

उस तोरमाण[२६३] महावली से युद्ध था हमने किया;
उसको भगाकर देश से हमने कहीं था कल लिया।
गिरते हुए इस काल में भी वीर, मानी हो गये;
जो शेष रहते शौर्य्य का संक्षिप्त परिचय दे गये ॥ २४८ ॥

हा ! वागभट[२६४]-से नागभट[२६५]-से वीर बालक अब कहाँ !
सौराष्ट्र ! तेरे लाल ये अनमोल हीरे हैं कहाँ !
आमात्य आंबू[२६६] विमल[२६७], उदयन[२६८], शान्तनु[२६९] महेता[२७०] तथा—
होते न यदि सौराष्ट्र में, सौराष्ट्र होता अन्यथा ॥ २४६ ॥

गुजरातपति नृप सिद्ध[२७१] के, सौराष्ट्रपति नृप भीम[२७२] के—
थे डालने वाले हमीं साम्राज्य की दृढ़ नीम के।
आमात्य वस्तुपाल[२७३] कहे क्या किस तरह के वीर थे !
इनके[२७४] सहोदर बन्धु भी आमात्य थे, रण-धीर थे ॥२५०॥

इन पौरवंशी बन्धुओं के तेग में क्या शक्ति थी !
सुलतान आलम कुतुब[२७५] की चलती न कोई युक्ति थी।
सौराष्ट्रपति नृप भीम के यदि ये अनुग होते नहीं;
सौराष्ट्र के इतिहास, वर्णन दूसरे होते कहीं ॥ २५१ ॥

भुजदण्ड भैषा-शाह[२७६] के थे नाम के अनुरूप ही;
थे बन्धु रामाशाह[२७७] उनके वीरवर तद्रूप ही।
श्रीकर्मसी[२७८] श्रीनेतसी[२७९] श्रीअन्नदाता धर्म-सी[२८०];
सब थे अतुल वर वीर भट हा ! वर्ण्य हो कैसे अभी ! ॥२५२॥

हम दूर जाने की नहीं हैं आप से कुछ कह रहे;
बस ध्यान से पढ़ लीजिये जो पंक्ति दो में कह रहे।
इतिहास राजस्थान का, क्या आप नहिं हैं जानते ?
सब वर्ण हमको आज भी भूपाल[२८१] कह कर मानते ॥२५३॥

हम जैनियों ने क्या किया इतिहास-वेता जानते;
सौराष्ट्र राजस्थान की वे स्नायु हमको मानते।
जयपुर, उदयपुर, जोधपुर गुण आज किसके गा रहे?
यदि हम न होते, आज फिर ये राज्य होने से रहे ॥ २५४ ॥

हमारी आध्यात्मिकता

कैसा हमारा आत्मबल था, विश्व में वह था नया;
रविदेव का भी रुक गया रथ, मेरु मग से हट गया[२८२]।
राजर्षि मुनिपति मदन[२८३] अपने प्राण वल्लभ दे चुके;
मुनिराज खंदक[२८४] भी त्वचा निर्दोष थे खिंचवा चुके ॥ २५५ ॥

हम कर्म में अति शूर थे, हम धर्म में रण-धीर थे;
हमको न माया-मोह था, हम त्याग में वरवीर थे।
विपरीत चलना धर्म के हमको न भाता था कभी;
दिन को निशा कहना नहीं था भीति बस आता कभी ॥ २५६ ॥

मुनिवृन्द के चारों तरफ वह अग्नि कैसी थी लगी[२८५]!
उस अग्नि जैसी अग्नि जग में क्या कहीं अब तक लगी?
हमने बिगड़ कर भी किसी को शाप अब तक नहिं दिया;
अपकार के प्रतिकार में उपकार ही हमने किया ॥ २५७ ॥

मुनिराज करने क्षेत्र में परिक्षेप हाला को गये[२८६];
कुछ सोचकर फिर आप ही बस पान उसका कर गये।
मुनिराज ऐसे हो गये किस धर्म में, किस देश में?
आध्यात्म-पद तो साध्य है जिनराज के ही वेष में ॥ २५८ ॥

हम हो दिगंबर फिर रहे थे पुर, नगर, हर ग्राम में;
यों नग्न कोई फिर सके जाकर नगर अभिराम में?
हम आज वैसे हैं नहीं, फिर भी दिगंबरवाद है;
जिनराज की जय बोल दो, पाखण्ड जिंदाबाद है ॥ २५६ ॥

श्रीमन्त व व्यापार

व्यापार भारतवर्ष का था विश्व भर में हो रहा;
संसार के प्रति भाग में था वास भारत कर रहा।
हम वैश्य मृत व्यापार से ही आज तक विख्यात थे;
हैं गिर गये, पर उस समय व्यापार में प्रख्यात थे ॥ २६० ॥

संसार भर में घूम कर व्यापार हम थे कर रहे;
सर्वत्र जल-थल-व्योम-वाहन थे हमारे चल रहे।
थे यान भारतवर्ष से सब अन्न भर कर जा रहे;
मरकत, रजत, मणि, हेम से विनिमय वहाँ हम कर रहे ॥ २६१ ॥

व्यापार से परिचय परस्पर थे हमारे बढ़ रहे;
सौहार्द, ममता, प्रेम हम में उत्तरोत्तर जग रहे।
लगने लगा था विश्व कुल, भ्रातृत्व जग में जग रहा;
सम्बन्ध कन्या-ग्रहण का भी था परस्पर बढ़ रहा ॥ २६२ ॥

व्यापार में हम से बढ़ा था दीखता कोई नहीं;
जिस ग्राम में हम थे नहीं, वह ग्राम विश्रुत था नहीं।
सर्वत्र हो संसार में हाटें हमारी खुल रहीं;
सर्वत्र क्रय थे बढ़ रहे, विक्री अतुल थी बढ़ रही ॥ २६३ ॥

उपकरण स्वर्गिक ऐश का सब हाट में मौजूद था;
सामान सारा निर्धनों को मिल रहा बिन सूद था।
व्यापार सब विधि सत्यता की पीठ पर था चढ़ रहा;
धन-लोभ हमको यों बधिर, अंधा नहीं था कर रहा ॥ २६४ ॥

रस, केश का, गजदन्त का व्यापार हम करते न थे;
व्यापार पशुओं का नहीं था, लाख मधु छूते न थे।
परिधान-पट का, हेम-मणि का कुल प्रमुख व्यापार था;
अथवा कलाकृत वस्तु का व्यापार सहविस्तार था ॥ २६५ ॥

था देश भारत स्वर्ण की विश्रुत तभी चिड़िया रहा;
यह देश द्रव्यागार था, यह देश रत्नों का रहा।
सम्पन्न जब यों देश को व्यापार से हमने किया;
संतुष्ट होकर देश ने श्रीमन्त-पद हमको दिया ॥ २६६ ॥

श्रीमन्त, शाह, शाहजो लक्ष्मीधरों के नाम हैं;
बनिया, महाजन, वैश्य भी धनवंत के ही नाम हैं।
था त्यागमय धन, ऐश; था उपकारमय जीवन रहा;
भूपाल विश्रुत पद हमारा है यही बतला रहा ॥ २६७ ॥

व्यापार में वह धूम थी, होती समर में जो नहीं;
थी बढ़ रही दिन दिन कृषी, मिलती न भूमी थी कहीं।
थे व्योम-जल-थल-यान आते हीर पन्नों से भरे;
थे लौटकर फिर जा रहे रस, अन्न वस्त्रों से भरे ॥ २६८ ॥

गणना हमारी मोहरों पर आज तक होती रही;
दश, पाँच, द्वादश, बीस कोटी-ध्वज हमें कहती रही;
निर्धन हमारे सामने वर सार्वभौमिक भूप था;
वे दिन दिवस थे भाग्य के, यह दीन का नहिं रूप था ॥ २६६ ॥

वर शाह[२८७] हममें पाठ चौदह ख्यात नामा हो गये;
जिनके यहाँ सम्राट बंधक 'बादशाही' रख गये।
लगता हमारे नाम के पहले अतः पद शाह का;
सम्राट के पद 'बाद' के भी बाद लगता 'शाह' का ॥ २७० ॥

आनन्द-से[२८८], सद्दाल-से[२८९] अलकेश हममें हो गये;
महाशतक[२९०] चुल्लणीशतक[२९१] गोपाल गोपति हो गये।
जिनदत्त[२९२], धन्ना[२९३], शील[२९४], जगडूशाह[२९५] कैसे शाह थे?
उपकारमय था द्रव्य जिनका, दीन की ये राह थे ॥ २७१ ॥

जब देखते हैं भूत-वैभव, निकल पड़ते प्राण हैं;
उस रिद्धि के यह सामने समृद्धि सब म्रियमाण हैं।
पाश्चात्य जन के अभिमतों पर हाय! हम इठला रहे;
हम देश के त्रय भाग धन के स्वामि हैं कहला रहे ॥ २७२ ॥

थोथी प्रशंसा का कहो क्या अर्थ होना चाहिये?
गिरते हुए को हाय! कैसे 'धन्य' कहना चाहिये!
लक्षाधिपति उस काल में यों गण्य होते थे नहीं;
इन आज के कोटीश सम उस काल के थे दीन ही ॥ २७३ ॥

क्षत्री सभी थे देश-रक्षक, विप्र विद्या-ज्ञान के;
थे शूद्र सेवी देश के, थे वैश्य पोषक प्राण के।
पोषण-भरण यदि आज तक हम, देश का करते नहीं;
इस रूप में यह देश तुमको आज यों मिलता नहीं ॥ २७४ ॥

व्यापार-कला का प्रभाव

व्यापार से ही जन्म है इस गणित, ज्योतिष का हुआ;
व्यापार की सोपान पर साम्राज्य भी प्रोत्थित हुआ।
श्रुति वेद, आगम, शास्त्र का उद्भव इसी से है हुआ;
कौशल, कला, विज्ञान का व्यापार ही स्रष्टा हुआ ॥ २७५ ॥

वैश्य-कुल की साक्षरता

हाँ! वैश्य कुल में आज भी अनपढ़ न मिल सकता कहीं;
तब सुखद काल सुवर्ण में संशय न रहता है कहीं।
व्यापार करना था हमारा कर्म सब हैं जानते;
फिर अज्ञ रहकर कर सके व्यापार क्या तुम मानते? ॥२७६॥

यतिवर्य्य जिनको आज भी गुरुराज कहते हैं सभी—
थे ज्ञान हमको दे रहे आगम, निगम, जग के सभी।
हर ठौर गुरुकुल खुल रहे थे, छात्र उनमें पढ़ रहे;
दश-चार विद्या-विज्ञ हो वे लौट कर घर जा रहे ॥ २७७ ॥

वातावरण

हा! उस समय का और ही कुछ और वातावरण था;
प्रिय पाठको! सच मानिये वह काल-वर्ण सुवर्ण था।
कंचन-शिला पर बैठ कर मणिहार हम थे पो रहे;
भिक्षार्थ आये भिक्षु को फिर दान में वह दे रहे ॥ २७८ ॥

उस समय के स्त्री-पुरुष—

नर देव हैं, हैं नारियाँ मृतवर्ग में सुर-देवियाँ;
नर-ज्ञान गरिमागार हैं, हैं नारियाँ गुण-राशियाँ।
उपकार-प्राणा पुरुष हैं, सेवापरायण नारियाँ;
सर्वत्र आनन्द क्षेम हैं, बस खिल रहीं फुलवारियाँ ॥ २७६ ॥

बाहर प्रमुख नर-देव हैं, भीतर प्रधाना नारियाँ;
हैं कर रहीं कैसी व्यवस्था लेख लो सुकुमारियाँ।
उनमें कलह, शैथिल्य, आलस नाम को भी हैं नहीं;
जो भी मिलेंगे गुण मिलेंगे, दोष मिलने के नहीं ॥ २८० ॥

व्यापार में, व्यवसाय में, उद्योग में, राजत्व में—
नर नारि दोनों हैं कुशल संसार के हर तत्त्व में।
बल-बुद्धि-प्रतिभापुञ्ज हैं, सब ज्ञान के भण्डार हैं;
विज्ञान के, कौशल्य के, सौजन्य के आगार हैं ॥ २८१ ॥

हैं नारियें या देवियें या कल-कला प्रत्यक्ष हैं;
सीना पिरोना जानती हैं, कार्य-कुशला दक्ष हैं।
पति धर्म है पति मर्म है, पति एक उनका कर्म है;
वे स्फूर्ति की प्रतिमूर्ति हैं, उनके नयन में शर्म है ॥ २८२ ॥

ये देख लो वे सज रही हैं साज निज रण के लिये;
रुक जाय नर-संहार यह, वे जा रहीं इसके लिये।
दुख है न कोई चीज उनको, ऐश क्या? आराम क्या?
अवशिष्ट रहते कार्य के उनको भला विश्राम क्या? ॥ २८३ ॥

सन्तान

सन्तान सब गुणवान हैं, बलवान हैं, धीमान हैं;
माता पिता में भक्ति है, सब के प्रति सम्मान है।
माता पिता का पुत्र से, अतिशय सुता से प्रेम है;
संतान के कल्याण में, माता-पिता का क्षेम है ॥ २८४ ॥

जब देव सदृश हो पिता, देवी स्वरूपा मातृ हो;
सन्तान उत्तम क्यों न हों, ऐसे सगुण जब पितृ हों।
पति पत्नि के गुणपुञ्ज का सन्तान होती योग है;
ये गुण्य-गूणक राशियों का गुणनफल है, योग हैं ॥ २८५ ॥

दाम्पत्य-जीवन—

सन्तान आज्ञापालिनी है, नारि आज्ञाकारिणी;
सब कार्य-प्राणाभृत्य है, समृद्धि है अनुसारिणी।
दाम्पत्य जीवन क्यों न हो फिर सौख्यकर उनका सदा;
निर्मल सरोवर पद्मयुत लगता न सुन्दर क्या सदा ? ॥२८६॥

कर्तव्याचरण—

हो कूकड़[२१६] का कूक इसके पूर्व ही सब जग गये;
जिनराज का करके स्मरण सब प्रति-क्रमण में लग गये।
आलोचना, पचखाण कर गुरुदेव-वंदन हो गये;
यों धर्म-कृत्यों से निपट गृह-कार्य-रत सब हो गये ॥ २८७ ॥

स्वाध्याय[२१७], पूजन, दान, संयम, तप तथा गुर्वर्चना;
कर्तव्य हैं ये नित्य के अरु हैं अतिथ्यभ्यर्थना।
ये देख कर बाधा विविध रुकते न चलती राह हैं;
तन-प्राण की, धन-ऐश की करते न ये परवाह हैं ॥ २८८ ॥

वंदित्तु[२९८] से इनके उरों का सब पता लग जायगा;
व्यवसाय जप, तप, धर्म का सबका पता मिल जायगा।
निःराग हैं, निर्द्वेष हैं, निष्कलेश ये नर नारि हैं;
उपकारकर्ता मनुज के उपकृत सभी नर नारि हैं ॥ २८९ ॥

मन्दिरों का वैभव—

ये रव्युदय के पूर्व ही हैं देव-मन्दिर खुल गये;
ये ईश के दरबार में सरदार आकर जम गये।
आह्लादकारी घोष घण्टों का गगन में छा रहा;
हैं भक्तजन के कण्ठ से संगीत जीवन पा रहा ॥ २९० ॥

है मन्दिरों का ऐश-वैभव स्वर्गपुर से कम नहीं;
नर्त्तन कहीं सुर-नर्तकी का, गान कण्ठो का कहीं।
रवि चन्द्र का भी मान-मर्दन दीप माला कर रही;
है भक्तगण के कीर्तनों से गूँजती मण्डप-मही ॥ २९१ ॥

सम्राट सम्प्रति चैत्य-वन्दन कर रहे हैं लेख लो;
सामन्त पूजा कर रहे हैं भक्ति पूर्वक पेख लो।
वन्दन सुदर्शन[२९९] श्रेष्ठि सुत हैं शिर झुका कर कर रहे;
श्रावक, श्रमण सब वन्दना कर लौट कर हैं जा रहे ॥ २९२ ॥

इन मन्दिरों से प्राण अब तक धर्म हैं पाते रहे;
मस्जिद, मकबरे और गिर्जागृह यही बतला रहे।
पर आज के हा ! सभ्य जन इनको मिटाना चाहते;
ये बाँध ग्रीवा में उपल हैं डूब मरना चाहते ॥ २९३ ॥

गुरुकुल—

अब ब्रह्म-वेला आ गई, घण्टे चतुर्दिक बज रहे;
गुरु-पर्ण-कुटि को जाग कर सब शिष्यगण हैं जा रहे।
गुरुदेव को हैं शिष्यगण गुरुदेव-वंदन कर रहे;
गुरु-शिष्य के उस काल में सम्बन्ध सुन्दर हैं रहे ॥ २९४ ॥

श्रुति-शास्त्र पढ़ते पाठकों के कलित कलरव हो रहे;
नक्षत्र, ग्रह, तारे तथा भूलोक शिक्षण हो रहे।
बैठे कहीं पर शाकटायन[300] शब्द व्याख्या कर रहे,
चौषठ कला दशाचार विद्या शिष्य गुरु से पढ़ रहे ॥ २९५ ॥

ऐकान्त आये स्थान में अब शस्त्र-शिक्षण लेख लो;
ये पुष्पवत गुरुराज को लगते हुए शर पेख लो।
कुछ लक्ष्य-भेदन, शब्द-भेदन, रण परस्पर कर रहे;
रविदेव को ढकने किसी के कर कलावत चल रहे ॥ २९६ ॥

हे वाचकों! अब बाण ये सब एक पर चलने लगे;
जाकर उधर शर चक्र से कच-व्याल से कटने लगे।
गिरिराज का कोई गदा से चूर्ण-मर्दन कर रहा;
करतल लिये अगखण्ड कोई चक्रवत घूमा रहा ॥ २९७ ॥

उपाश्रय—

ये मंच पर बैठे हुये उपदेश गुरुवर दे रहे;
इस लोक के, परलोक के ये मर्म सब समझा रहे।
सब सुर, असुर, देवेन्द्र हैं व्याख्यान में बैठे हुये;
परिषद विसर्जित होगई जिनराज-जय कहते हुये ॥ २९८ ॥
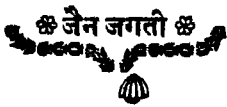
अरिहंत का स्वागत—

सम्राट आगे हाथ जोड़े पाँव नङ्गे चल रहे;
चतुरंगिणी सज कर चमू सामंत पीछे आ रहे।
वाद्यंत्र के निर्घोष से है व्योम पूरित हो रहा;
जिन स्वागतोत्सव देव-तरुवर के तले है हो रहा ॥ २९९ ॥

त्रयगढ़[301] मनोहर की यहाँ हैं देव रचना कर रहे;
अरिहंत का सुर मणिजटित आसन यहाँ लगवा रहे।
आदेशना देने लगे विभु मञ्च पर अब बैठ कर;
तिर्यंच तक रस ले रहे हैं मातृ-जिह्वा श्रवण कर ॥ ३०० ॥

भोजन वेला—

अब देवियाँ अपने गृहों में पाक-व्यञ्जन कर रहीं;
आकर प्रतीक्षा द्वार पर कुछ साधु मुनि की कर रहीं।
यदि आगया मुनि ब्रह्मचारी भाग्य उनके जग गये;
सबको खिला कर खा रहीं, भोजन नवागत कर गये ॥ ३०१ ॥

हाटमाला—

देखो लगी यह हाटमाला स्वर्ण-सुन्दर लग रही;
भूषण उधर को, वस्त्र की इस ओर विक्री हो रही।
ग्राहक जुड़े हैं हाट पर बिन भाव पूछे ले रहे;
सुर शाह जी के सत्य की देखो परीक्षा ले रहे ॥ ३०२ ॥

राज-प्रासाद—

ये चक्र-पाणी भूप के प्रासाद हैं तुम पेख लो;
आमात्यवर से कर रहे नृप मंत्रणा तुम लेख लो।
साम्राज्य में मेरे कहीं भी चोर, लम्पट हैं नहीं;
हो देश जिससे स्वर्गसम, करना मुझे मंत्री! वही ॥ ३०३ ॥

पारस्परिक व्यवहार—

राजा प्रजा में प्रेम है, सौहार्द है, अनुराग है;
द्विज, शूद्र चारों वर्ण में सब प्रेम का ही भाग है।
वैषम्य, कुत्सित द्वेष का तो नाम तक भी है नहीं;
अपवर्ग भारतवर्ष है, ऐसी न दूजी है मही ॥ ३०४ ॥

कार्य-विभाग—

आचार्य धर्माध्यक्ष हैं, क्षत्री सभी रणधीर हैं;
हैं विप्र शिक्षक वर यहाँ, अंत्यज कलाधर वीर हैं।
ये वैश्य सब व्यापार में, व्यवसाय में निष्णात हैं;
उद्योत आठों याम है, होती न तमभृत रात है ॥ ३०५ ॥

दानालय—

नंगे, निरन्नों को यहाँ हैं वस्त्र, भोजन मिल रहे;
कहते न उनको दीन हैं, आतिथ्य उनका कर रहे।
हो स्वर्ण-युग चाहे भले, पर रंक तो रहता सदा;
तम तोम का शुचि दिवसमें भी अंश तो मिलता सदा ॥३०६॥

गवालय—

आनन्द[302], चुल्लक[303], नन्दिनीप्रिय[304] के घरों को देखिये;
बहती वहाँ पयधार है, घृत की दुधारा लेखिये।
हा ! आज गौ पर हो रहा हर ठौर खड्गाघात है;
घृत-दुग्ध देती हैं उसी पर हा ! कुठाराघात है ॥ ३०७ ॥

विहंग-पश्वालय—

सब अश्व, गौ, गज, सिंह, मृग अज एक कुलमें रह रहे;
पिक, केकि, कोका, सारिका, पन्नग इसी में रह रहे।
आश्चर्य है, ये किस तरह सारंग पन्नग मिल रहे;
उनकी कला वे जानते, वर्णन वृथा हम कर रहे ॥ ३०८ ॥

चिकित्सालय—

निःशुल्क होती है चिकित्सा, शुल्क कुछ भी है नहीं;
देखो मनुज, पशु आदि सब की है चिकित्सा हो रही।
यति-कुल हमारा आज भी निःशुल्क औषध दे रहा;
वह भूत भारतवर्ष की कुछ कुछ झलक झलका रहा ॥ ३०९ ॥

ग्राम-नगर—

हैं ग्राम, पुर सारे सहोदर, प्रेममय व्यवहार है;
हर एक का दुख हो रहा सब के लिये दुख भार है।
सब के भरण-पोषण निमित ये कृषक करते काम हैं;
हैं अस्थियाँ तक घिस गईं, कुछ शेष तन पर चाम है ॥ ३१० ॥

सब वैश्य साहूकार हैं, वर वीर क्षत्री हैं सभी;
हैं ऊर्ध्वरेता विप्रगण, हैं शूद्र जन-सेवी सभी।
सब कर्म अपने कर रहे, नहिं भेद हैं, नहि द्वेष है;
धर्मान्ध छूताछूत की दुर्गंध का नहिं लेश है ॥ ३११ ॥

सब में परस्पर पाणि-पीड़न प्रेमपूर्वक हो रहे;
योग्या सुता वर योग्य को सर्वत्र सब हैं दे रहे।
योग्या सुता वर मूर्ख को होती न स्वीकृत आज है!
नहिं विप्र का भी विप्र में सम्बन्ध होता आज है! ॥ ३१२ ॥

सब ग्राम-पुर धन-धान्य-भृत हैं, स्वास्थ्य-प्रद जलवायु है;
भूमी अधिक है उर्वरा, सब नारि नर दीर्घायु हैं।
इनमें न ऋण की रीति है, कहते किसे फिर सूद हैं;
उपकरण जीवन के सभी हर ग्राम में मौजूद हैं ॥ ३१३ ॥

औदार्य-चेता भूप हैं; दुष्काल भी पड़ते नहीं;
षष्ठांश कर से कर अधिक नहिं भूप लेते हैं कहीं।
कर भूप जितना ले रहे, सब व्यय प्रजा हित कर रहे;
अनिवार्य विद्या हो रही, गुरुकुल सभी थल चल रहे॥ ३१४॥

देखो यहाँ होते नहीं यों घूँस के व्यापार हैं;
ग्रामीण जन पर आज-से होते न अत्याचार हैं।
नृप आप जाकर ग्राम में हैं पूछते, 'क्या हाल हैं'?
कैसा प्रजापति वह भला काटें न दुख तत्काल है॥ ३१५॥

यों भ्रूण-हत्या, अपहरण देखो कहीं होते नहीं;
दुःशीलता की बात क्या! रतिचार तिल छूते नहीं।
हा! वृद्ध भारत! पुत्र तेरे जन्मते थे गुण भरे;
हा! हंत! अब तो प्रौढ़ भी हैं दीखते अवगुण भरे!!॥ ३१६॥

तीर्थ-यात्रा—

अब अन्त में वर्णन तुम्हें हम तीर्थ-यात्रा का कहें;
फिर से सभी वातावरण संक्षेप में तुमको कहें।
धन-ऐश-वैभव-भाव का सब कुछ पता मिल जायगा;
कुछ उक्त में से होगया विस्मृत, नया हो जायगा॥ ३१७॥

है तीर्थ-यात्रा चीज क्या? श्री संघ फिर क्या हैं अहो!
जातीय सम्मेलन अहो! ये घट गये कब से कहो?
क्यों श्रमण, श्रावक उस तरह से आज मिलते हैं नहीं?
क्यों देश, जाति, सुधर्म पर सुविचार अब होते नहीं?॥ ३१८॥

श्री तीर्थ-यात्रा के लिये हर वर्ष जाते संघ थे;
होते शकट, गज, अश्व के अति भूरि संख्यक संघ थे।
आचार्य होते थे विनायक, संघपति भूपेन्द्र थे;
थे अंगरक्षक क्षत्रपति, जिनके निरीक्षक इन्द्र थे ॥ ३१९ ॥

ये पहुँच कर सब तीर्थ धर्माराधना करते वहाँ;
सब काटने अघ, कर्म-दल धर्माचरण करते वहाँ।
सबसे वहाँ पर पहुँच कर नृप क्षेम-शाता पूछते;
आचार्य के थे चरण नृप कौशेय लेकर पूँछते ॥ ३२० ॥

पश्चात इसके दान की, गृह-त्याग की सरिता चली;
वह दीन-गह्वर, उजड़ जीवन को सरस करती चली।
फिर देशना होती वहाँ गुरुराज की अमृत भरी;
यों तीर्थ शोभा देख कर होती नतानन सुरपुरी ॥ ३२१ ॥

थी देश, जाति, स्वधर्म पर तब मन्त्रणा होती वहाँ;
होते वहाँ प्रस्ताव थे, नियमावली बनती वहाँ।
अपराध थे जिनने किये, वे दण्ड खुद लेते सभी;
उपवास, प्रत्याख्यान, पौषध वे वहाँ करते सभी ॥ ३२२ ॥

स्थापित सभायें हो गईं जब, कार्य निश्चित हो गये;
अध्यक्ष, मन्त्री, कार्य-कर्ता, सभ्य घोषित हो गये;
जब देश, धर्म, समाज के हल प्रश्न सारे हो गये;
तब संघपति के कथन से प्रस्थान सब के हो गये ॥ ३२३ ॥

कैसा निकाला संघ था सम्राट संप्रति ने कहो;
शचि, इन्द्र जिनको देख कर थे रह गये स्तंभित अहो !
गज, अश्व, वाहन, शकट की गिनती वहाँ पर थी नहीं;
नर-नारि को गिनती भला फिर हो सके सम्भव कहीं ?॥ ३२४ ॥

श्रीचन्द्र[३०५] गुप्त नृपेन्द्र ने, भूपेन्द्र कुमारपालने—
राजर्षि उदयन शांतनिक, दधिवाहना जय पालने—
सबने निकाले संघ थे, उल्लेख मिलते हैं अभी;
सरवर सुदर्शन लेख लो, वह दे रहा वर्णन सभी ॥ ३२५ ॥

चरम तीर्थंकर भगवान् महावीर

प्रभु पार्श्व को इतिहास-वेता सम तरह हैं जानते;
पशु-यज्ञ का कैसा किया प्रतिवाद, खण्डन जानते।
प्रभु पार्श्व का,विभु वीर का यदि जन्म जो होता नहीं[३०६];
फिर इस नृशंसाचार का क्या पार कुछ रहता कहीं ? ॥ ३२६ ॥

वे त्याग कर प्रासाद को दुख-शैल कंटकमय चले;
था चण्ड[३०७] कौशिक ने डसा विभु वीर को,क्या मुड़ चले ?
थे तीग्म कीले कर्ण में विभु वीर के ठोंके गये[३०८];
इससे हुआ क्या ? वीर कायोत्सर्ग से क्या डिग गये ? ॥ ३२७ ॥

ज्यों वीर अर्कोदय हुआ, प्रातः हुआ तम छट गया;
पशुयज्ञ के तिमिरावरण का जाल कुण्ठित उड़ गया।
थे दुष्ट, लम्पट छिप गये, गलबंध पशु के कट गये;
आनन्द घर-घर हो गये, फिर भाग्य जग के जग गये ॥ ३२८ ॥

महावीर का उपदेश—

अपवर्ग की संप्राप्ति में यह जाति बाधक है नहीं;
हो शूद्र चाहे राजवंशी, भेद इससे कुछ नहीं।
बाहर भले ही भेद हो, भीतर सभी जन एक हैं;
क्या शूद्र की, क्या विप्र की, आत्मा सभी की एक है॥ ३२६॥

चाहे भले ही शूद्र हो, सद्भाव का यदि केत है;
बस चक्रपति से भी अधिक हमको वही अभिप्रेत है।
संमोह, माया, लोभ जिसने काम को जीता नहीं;
वह उच्च वर्णज हो भले, पर डोम से वह कम नहीं॥ ३३०॥

है सत्यव्रत जिसका नहीं, घट में नहीं जिसके दया;
शुचि शीलव्रत पाला नहीं, नहिं दान जीवन में दिया;
वह भूप हो या विप्र हो, हो श्रेष्ठिसुत चाहे भले;
वह मोक्ष पा सकता नहीं, उस ठौर किसका वश चले॥ ३३१॥

महावीर द्वारा जैनधर्म का विस्तार और उसका स्थायी प्रभाव—

सर्वत्र आर्यावर्त में यों धर्म-ध्वज फहरा गई;
तलवार हिंसावाद की बस टूट कर दो हो गई।
सम्राट, राजा, माण्डलिक फिर जैन कहलाने लगे;
विस्तार हिंसावाद के सर्वत्र फिर रुकने लगे॥ ३३२॥

अन्त्यज तथा द्विजगण सभी वीरानुयायी हो गये;
गणधर हमारे विप्र थे, वीरावलम्बी हो गये।
सम्प्रति नरप के काल तक कितने कहो जैनी हुये?
संक्षेप में हम यों कहें चालीस कोटी थे हुये॥ ३३३॥

परिवार सह चेटक यदि जिन वीर की सेवा करें;
फिर आत्मजाएँ सप्त उनकी क्यों न जिनवर को वरें ?
उनकी यहाँ पर आत्मजाओं का न वर्णन हो सके;
यदि वर्ण अर्णव भर सके, यह वर्ण्य मुझ से हो सके ॥ ३३४ ॥

वह चन्द्रगुप्त नृपेन्द्र जो इतिहास में विख्यात हैं;
यश-कीर्ति जिनकी आज भी संसार में प्रख्यात है।
जिसको अधूरे विज्ञजन थे बौद्ध-धर्मी कह रहे;
विद्वान अब नृप चन्द्र को सब जैन हैं बतला रहे ॥ ३३५ ॥

वीतभय[३०९] साकेतपुर[३१०] के कुछ भवन खण्डित शेष हैं;
कुछ राजगृह[३११] चम्पापुरी[३१२] में खण्ड विगलित शेष हैं।
उज्जैन[३१३], मिथिला[३१४], पटन[३१५] के शिल-पत्र तो तुम देख लो;
वर्णन हमारा दे रही श्रावस्ति[३१६], इसको लेख लो ॥ ३३६ ॥

गिरनार[३१७], शत्रुञ्जय[३१८] कहो ये तीर्थ कब से हैं बने,
सम्मेत[३१९] गिरिवर का कहो वर्णन कहीं तुमसे बने ?
क्या चीज हैं सरवर सुदर्शन[३२०] ? नाम शायद ही सुना;
अर्थात् यों जिन धर्म भारतवर्ष में व्यापक बना ॥ ३३७ ॥

पंजाब, उत्कल, मध्यभारत, मगध, कौशल, अङ्ग में;
सौराष्ट्र, राजस्थान, काशी, दक्षिणाशा बङ्ग में।
अर्थात् आर्यावर्त में, सब थल अनार्यावर्त में—
जिन धर्म प्रसरित हो चुका था कोण, आशा, वर्त में ॥ ३३८ ॥

आती हमें है: कुछ हँसी जब देखते इतिहास हैं;
उसमें हमारा कुछ कहीं मिलता न क्यों आभाष है।
ये आधुनिक इतिहास-वेता अज्ञ हो, सो हैं नहीं;
तब राग, मत्सर, द्वेष से वे कर रहे ऐसा कहीं ॥ ३३९ ॥

जिनधर्म क्षत्री-धर्म था, संदेह इसमें है नहीं;
यदि विज्ञ हो तो लेख लो वह भूत भारत की मही।
फिर क्यों नपुंसक आज के हैं दोष हमको दे रहे?
अपनी नपुंसकता छिपाकर भीत हमको कह रहे ॥ ३४० ॥

जैन धर्म का इतर धर्मों पर प्रभाव—

ऐसा न कोई धर्म है, जिसने न माना हो हमें;
वैदिक, सनातन, सांख्य ने जाना कभी से हैं हमें।
तुगलक[321]-मुगल[322]-सम्राट पर इसका असर कैसा हुआ?
गौराङ्ग[323] जन के हृदय पर कैसा अमर शाश्वत हुआ? ॥३४१॥

पतन का इतिहास

सम्राट थे, हम भूप थे, सम्पन्न थे, अलकेश थे;
विद्या, कला, विज्ञान में हम पूर्ण थे, निःशेष थे।
नित पुष्प यानों पर चढ़े सर्वत्र हम थे घूमते;
सब राज लोकों के हमारे यान नभ थे चूमते ॥ ३४२ ॥

पर काल-चक्र कुचक्र के सब वक्र होते काम हैं;
थे सभ्य हम सब भाँति, पर हम आज हा! बदनाम हैं।
किसको भला हम दोष दें, जब आप ही हम गिर गये;
बस नाश के कुरुक्षेत्र में डंके हमारे बज गये ॥ ३४३ ॥

जब के गिरे ऐसे गिरे, संज्ञा न आई आज भी;
है कौन भाई, कौन रिपु, नहिं दीखता हमको अभी।
स्वाधीन से आधीन हो, सब भाँति विषयालीन हैं;
बलहीन हैं, मतिहीन हैं, सब भाँति अब तो दीन हैं ॥ ३४४ ॥

पयपूर्ण था, मयपद्म था, था भृंग मधुकर देश जो;
अब देख लो सूखा पड़ा है, पङ्क भी हो शेष जो।
चीरे करारी पड़ गईं, हर ठौर गह्वर हो गये;
क्या वेदना के प्राण इसमें हाय ! स्तर-स्तर सो गये ॥ ३४५ ॥

यह हो गई कब से दशा, हम जानते कुछ भी नहीं;
जो आरहा मुँह में हमारे बक रहे हैं हम वही।
निष्भूप हो, उद्दाम हो द्विज-कुल हमारे गिर गये;
सब पुंश्चली स्त्री हो गईं, हा ! नर नपुंसक हो गये ॥ ३४६ ॥

ज्यों कायरों में नर-नपुंसक भंग करते शान्ति हैं;
होती यथा निस्तब्ध निशि में उल्लुओं की क्रान्ति है।
पशु-यज्ञ के उपदेश त्यों थे द्विज सभी करने लगे;
जहाँ बह रही थी घृत-सरि, थे रक्त-नद झरने लगे ॥ ३४७ ॥

निर्झर, नदी के कूल पर सर्वत्र होते होम थे;
गौ, अश्व का करते हवन द्विज-भ्रष्ट-पापी-डोम थे।
यदि उस समय में वीर विभु का जन्म जो होता नहीं;
उस आज डोमाचार का कुछ पार भी रहता नहीं ॥ ३४८ ॥

विभु वीर ने सबके उरों में फिर दया स्थापित करी;
उपसर्ग लाखों झेलकर पशु मूक की रक्षा करी।
पर शान्तिमय सुख राज्य कहिये छद्म कैसे सह सकें ?
वे विप्र वंचित हाय ! बोलो किस तरह चुप रह सकें ? ॥ ३४९ ॥

तात्पर्य आखिर यह हुआ की धर्म-रण होने लगे;
लड़कर परस्पर जैन, वैदिक, बौद्ध हा ! मरने लगे।
जब हो हताहत गिर पड़े, ये यवन पत्थर से पड़े;
क्या प्राण उसके बच सकें गिरते हुये पर गिरि गिरें ? ॥ ३५० ॥

उस दुष्ट, पापी मनुज का जयचंद[३२४] कहते नाम है;
जिसके बुलाये यवन आये—घोर काला काम है।
जितने मनुज आये यहाँ, थे सब हमी में मिल गये;
इस्लाम-झंडे पर हमारे से अलग ही लग गये !! ॥ ३५१ ॥

इनकी हमारी फूट का हा ! यह कुफल परिणाम है;
जो स्वर्ग-सा यह सौम्य भारत मिट रहा अविराम है।
जैसे परस्पर मेल हो करना हमें वह चाहिए;
सब भेद-भावों को भुला कर रस बढ़ाना चाहिए ॥ ३५२ ॥

हा ! हाय ! भारत ! आज तेरे खण्ड कितने हो गये;
ये धर्म जितने दीखते, हा ! अंग उतने हो गये।
प्रति धर्म के अन्दर अहो ! फिर सैकड़ों फिरके बने;
फिर गोत्र, जाति, सुवर्ण के हा ! चल पड़े विग्रह घने ॥ ३५३ ॥

ये श्वान-विग्रह नष्ट कर मत-भेद को हम हर सकें—
त्रय काल में संभव नहीं, यह काल शायद कर सकें।
फिर आज की सरकार से मत-भेद पोषित हो रहे;
ये धर्म-रण हा ! बदल कर सब राजरण हैं हो रहे॥ ३५४॥

अन्तरभेद व पतन—

मतभेद होता आदि से हर ठौर जग में आ रहा;
चढ़ने उतरने की कला सब है यही सिखला रहा।
इससे उतरने की कला हम जैनियों ने सीख लीं;
पर हाय ! चढ़ने की कला नहिं दृष्टि भर भी लेख ली॥ ३५५॥

जिन धर्म पहिले एक था, फिर खण्ड इसके दो हुये;
फिर वे दिगंबर[325] श्वेत अंबर[326] नामसे मंडित हुये।
चत्वार दल में फिर दिगंबर मत विभाजित हो गया;
यह श्वेत अम्बर भी अहो ! दो खण्ड होकर गिर गया॥ ३५६॥

संतोष पर इतनी दशा से काल क्यों करने लगा !
जो था क्षुधित चिरकाल से, अब क्यों क्षुधित रहने लगा !
बावीस[327] चौरासी[328] दलों में श्वेत अम्बर छट गया;
बावीस दल में पंथ तेरह[329] फिर अलग ही हो गया॥ ३५७॥

तब विप्र, क्षत्री, शूद्र इसको छोड़ कर जाने लगे;
वे विप्र इस पर उलट कर तब वार फिर करने लगे।
जब है कलह निज देह में, अवयव भला क्यों खिल सकें;
निर्जल हुये अघ-पंक में शुचि पद्म कैसे खिल सकें ? ३५८॥

लड्डू कलह में तुम बताओ आज तक किसको मिले;
पद-त्राण के अतिरिक्त भाई! और दूजे क्या मिले।
अपशब्द, निंदावाद तो हा! हंत! मण्डनवाद है;
जब तक न मूलोच्छेद हो, फिर क्या जिनेश्वरवाद है!! ॥ ३५९ ॥

हा! ये दिगम्बर श्वेत अम्बर श्वानवत हैं लड़ रहे;
पद-त्राण पावन स्थान में इनमें परस्पर चल रहे।
हा! नाथ! यह क्या हो गया! निशिकर अमाकर हो गया!
वृद्धत्व में अनुभव हमारा भार हमको हो गया!! ॥ ३६० ॥

बिगड़ा न कुछ भी है अभी, बिगड़ा यदि हम सोच लें;
ऐसे न निःसृत प्राण है जो एक पद दुर्भर चलें।
यदि अब दशा ऐसी रही, तब तो हमारा अन्त है;
हा! हंत! हा! हा! अन्त! हा! हा! हंत! हा! हा! अन्त है ॥३६१॥

जैन धर्म पर अत्याचार—

नृप[330] कल्कि के दुष्कृत्य[331] हम कुछ चाहते कहना नहीं;
कुछ पुष्यमित्र[332] महीप का व्यवहार भी कहना नहीं।
दुष्कृत्य इनके आज भी मुद्रित हृदय पर पायँगे;
जिनको श्रवण करते हुये श्रुत आपके खुल जायँगे ॥ ३६२ ॥

पहिने हुये पद-त्राण तक ये शीप पर थे जा चढ़े;
करने हमें ये देश बाहर के लिये आगे बढ़े।
हमको गिराया अग्नि में, हमको डुबाया धार में,
न विचार था उस काल में, इस काल भी न विचार में ॥ ३६३ ॥

जितराग थे, जितद्वेष थे, क्यों क्रोध हमको हो भला;
कोई न हम में से कभी था रण-प्रथम करने चला।
अब खैर! सब कुछ हो गया, अब ध्यान आगे का करो;
जैसे बने फिर देश का उत्थान सब मिलकर करो ॥ ३६४ ॥

वैदमत, बौद्धमत—

श्रुति वेद को जिनधर्म का ही बन्धु हम हैं मानते;
इच्छा तुम्हारी आपकी यदि भिन्न तुम हो जानते।
साहित्य के ये दीप हैं, शुचि प्रखरतर मार्तण्ड है;
आलोक इनका प्राप्त कर यह जग रहा ब्रह्माण्ड है ॥ ३६५ ॥

होता नहीं अवतार यदि उस बुद्ध[333]-से भगवान् का;
क्या हाल होता आज फिर इस चीन का, जापान का।
ये हो गये अब मांसहारी, दोष पर इनका नहीं;
कैसे चलें वे शास्त्र पर सिद्धान्त जब समझें नहीं ॥ ३६६ ॥

ये जैन, वैदिक, बौद्धमत मिलते परस्पर आप हैं;
मत एक की मत दूसरे पर अमिट गहरी छाप है।
हे बन्धुओ! ये मत सभी मत एक की सन्तान हैं;
ये युगजनित पाखण्ड हित को-दण्ड-सर-सधान हैं ॥ ३६७ ॥

हमारे पर दोषारोपण—

"जिनधर्म के कारण हुआ हत भाग्य भारतवर्ष है;
इसका अहिंसावाद से भारी हुआ अपकर्ष है।
ये कीट तक को मारने में हिचकिचाते हाय! हैं;"
क्या बन्धुओं! उत्थान-साधन मात्र खड्गोपाय है? ॥ ३६८ ॥

मैं पूर्व हूँ बतला चुका, सब शौर्य-परिचय दे चुका;
था आत्म-बल कैसा हमारा, वह तुम्हें बतला चुका।
जब आत्म-बल से शत्रु को हम कर विजय पाते नहीं;
तब खड्ग के अतिरिक्त साधन दूसरा फिर था नहीं॥ ३६९॥

जैसा हमारा धर्म था, वैसा हमारा आज है;
यह मानते लज्जित नहीं—वैसे नहीं हम आज हैं।
हम पूछते हैं आपसे, क्या आप वैसे हैं अभी?
फिर दोष सब हम पर धरो, आती तुम्हे नहिं शर्म भी॥३७०॥

इस बात को आगे बढ़ा झगड़ा न करना है हमें;
विषकुम्भ घातक फूट का जड़-मूल खोना है हमें।
अब क्या, किसी का दोष हो, यह भ्रष्ट भारत हो चुका;
हम-आपनन का नाश हो यदि, स्वर्ग फिर भी हो चुका॥३७१॥

वर्णाश्रम और वैश्य-वर्ण—

हैं वर्ण चारों आज भी, निर्जीव चाहे हो सभी;
हा! वर्ण विकृत हो गये, सब वर्ण-शंकर हैं अभी।
उन पूर्वजों ने वर्ण-रचना क्या मनोहर थी करी;
द्विज डोमियों ने आज उसको गरल से कटुतर करी॥ ३७२॥

हतवीर्य क्षत्री हो भले, पर छत्रपति कहलायगा;
चाहे निरक्षर विप्र हो, पर पूज्य माना जायगा।
तस्कर भले हो प्रथम हम, पर शाह हम कहलायँगे;
दुष्कर्म कितने भी करो नहिं शूद्र द्विज कहलायँगे॥ ३७३॥

पद योग्यता पर थे मिले, वंशानुगत अब हो गये;
उत्थान के यों द्वार सब हा! बंद सबके हो गये।
उन्मार्गगामी हो भले, द्विज तो पतित होता नहीं;
हो उर्ध्वरेता, धर्म-चेता शूद्र, द्विज होता नहीं ॥ ३७४ ॥

हे वैश्य-वर्णज बन्धुओ! निज वर्ण पहिले देख ले;
ये गोत्र इतने वर्ण में आये कहाँ से पेख ले।
जब वैश्य कुल में गोत्र को हम सोचने लगते कभी;
मिलते वहाँ पर गोत्र सब द्विज, शूद्र, क्षत्री के तभी ॥ ३७५ ॥

यों कर्म से सब जातियें, ये गोत्र हैं बतला रहे;
इतिहास, धार्मिक ग्रंथ भी सब पुष्टि इसकी कर रहे।
कारण कहो फिर कौन-सा जो ये पटावृत हो गये;
ताला लगाकर द्वार पर द्विज चोर भीतर सो गये! ॥३७६॥

सब दृष्टि से द्विज भ्रष्ट हैं, पर उच्च थल नहिं छोड़ते;
जो दीखता चढ़ता नया, पत्थर उसे द्विज मारते।
द्विज सभ्यता, आदर्शता के शृङ्ग पर हैं चढ़ चुके;
ये पहुँच कर इस शृङ्ग पर अधिकार पूरा कर चुके ॥ ३७७ ॥

उन पूर्वजों के सदय उर का किस तरह वर्णन करें;
जो शूद्र का भी कर पकड़ अविलम्ब द्विज सदृश करें।
पथ में गिरे को वे उठाते गोद में थे दौड़ कर;
टूटे हुये को एक करते थे सदा वे जोड़ कर ॥ ३७८ ॥

किस भाँति छूताछूत को इस भाँति से वे मानते;
नर-जाति के प्रति मनुज को जब थे सहोदर जानते।
अज आत्म-सरवर की अहो ! सब वे मनोहर मीन थे;
उनमें परस्पर प्रेम था, आध्यात्म-शिखरासीन थे॥ ३७६ ॥

इन वर्ण, आश्रम, वेद की किसने कहो रचना करी;
कितनी मनोहर भाँति से लेखो समस्या हल करी।
इस कार्य को श्री नाभि-सुत [334] ने था प्रथम जग में किया;
वह था प्रथम, अब अंत है, क्या अन्त कर खोटा किया ?॥३८०॥

यवन-शासक—

राजत्व यवनों का कहें कैसा रहा इस देश में;
ऐसा कि जैसा पोप का यूरोप के था देश में।
था दोष किसका, था अशुभ फल यह हमारे कर्म का;
क्या भोगना पड़ता नहीं दुष्फल किये दुष्कर्म का॥ ३८१ ॥

राजत्वभर ये यवनपति हा ! प्राण के ग्राहक रहे;
ये गौ, बहू, सुत, बेटियों का थे हरण करते रहे।
तलवार के बल हिन्दु थे इस्लाम में लाये गये;
आये न जो इस्लाम में बेमौत वे मारे गये॥ ३८२ ॥

धन द्रव्य पर उनके लगे रहते सदा ही दांत थे,
बिछड़े हुओं के रात के मिलते न शव हा ! प्रात थे !
हा ! दूधपीते शिशु गणों का वह रुदन देखा न था;
नरभूप था, यमभूप या, हमने उसे लेखा न था॥ ३८३ ॥

पर्दा-प्रथा उस काल की हमको दिलाती याद है;
वे मस्तकों में घूम जाते कौंध कर अवसाद हैं।
राजत्व उनका अब नहीं है, याद उनकी रह गई;
यह याद मुस्लिम हिन्दुओं में प्राण-ग्राहक बन गई।। ३८४ ।।

ये मूर्तियें खण्डित यवन-व्यवहार हैं बतला रहीं;
भूगर्भ में सोयी हुई कितनी उन्हें हैं जप रहीं।
मंदिर हमारे अश्वथल, मस्जिद मकबरे हो गये;
हैं चिह्न जिनके आज भी बहु मंदिरों में रह गये।। ३८५ ।।

अनगण्य अत्याचार हैं, जिनका न कुछ भी पार है;
सब को यहाँ उद्धृत करें ऐसा न मुख्य विचार है।
सम्राट अकबर[335] को हमें सम्राट गिनना चाहिए;
उसके सदय व्यवहार का गुण-गान करना चाहिये।। ३८६ ।।

सम्राट बस औरंग[336] के ओ ! रंग भी नव रंग थे;
उस्ताद, काजी, मौलवी उसके सदा ही संग थे।
लाचार होकर फिर हमें जजिया उसे देना पड़ा;
जब आ पड़ी थी धर्म पर करना हमें रण भी पड़ा।। ३८७ ।।

बृटिश-शासन—

अब है बृटिश-साम्राज्य, पर वैसे न इसके दाव हैं;
बहु-बेटियों पर यवन से करते नहीं ये घाव हैं।
ये बोलकर मीठे वचन देते तुम्हें मिष्ठान हैं;
अब लूट वैसी है नहीं मेरा यही अनुमान है।। ३८८ ।।

हैं कोर्ट मुनसिफ खुल रहे, होता जहाँ पर न्याय है;
तुम लार्ड-परिषद्[337] तक बढ़ो, यदि हो गया अन्याय है।
इस लार्ड-परिषद्-कोर्ट का हम लाभ कितना ले चुके!
सम्मेत[338]-शेखर के लिये हम हैं वहाँ तक बढ़ चुके॥ ३८६॥

है पास में पैसा अगर, सब काम कल कर जायगी;
थोड़े दबाने पर बटन के रोशनी लग जायगी।
खबरें नये जग की हमें इसकी कृपा से मिल रहीं;
अब इस बटन के सामने कुछ देव-माया भी नहीं॥ ३६०॥

इनके कलायें पास में हैं सुर, असुर, अमरेश की;
हम देखते हैं नेत्र से कितनी दया है ईश की!
मृत को जिलाना हाथ में इनके अभी आया नहीं;
अतिरिक्त इसके और कोई काम बाकी है नहीं॥ ३६१॥

यह रेल, वायर की कहो है जाल कैसी बिछ रही!
ये अम्बु-थल-नभयान की चालें मनोहर लग रहीं।
रसचार का, व्यापार का श्री राम के भी राज्य में—
साधन नहीं था इस तरह जैसा मिला इस राज्य में॥ ३६२॥

हैं भूरि संख्यक स्कूल सारे देश भर में खुल रहे;
निज स्वामियों के प्रति हमें सद्भाव हैं सिखला रहे।
यह भूत छूताछूत का कितना भयंकर यत्त है;
हम तो पराभव पा चुके, अब भागता प्रत्यक्ष है॥ ३६३॥

कानून-परिषद् में हमारे शूद्र अब जाने लगे;
फिर भी न जाने क्यों नहीं अच्छे बृटिश लगने लगे।
सुविधा हमें सब भाँति से सब जाति की ये दे रहे;
हम माँगते निज राज्य हैं, क्या राज्य मुँह से मिल रहे ? ३६४ ॥

शासन हमें इन नरवरों का आज क्यों भाता नहीं;
दुष्भाव हममें हो भले, दुष्भाव इनमें तो नहीं।
यदि है हमारे कुछ जलन उर में, उसे कह दें यहाँ;
ये स्वामि हैं, हम दास हैं, सब हैं क्षमा भूलें यहाँ ॥ ३६५ ॥

सबसे प्रथम यह प्रार्थना तुम देश के होकर रहो;
इस दीन भारतवर्ष के तुम पुत्र बन कर के रहो।
करके उपार्जित धन यहाँ अन्यत्र यों फूको नहीं;
धन द्रव्य भारतवर्ष का अन्यत्र जाने दो नहीं ॥ ३६६ ॥

हैं अन्य देशों में कला-कौशल धड़ाधड़ बढ़ रहे;
कल कारखाने नित्य नव आये दिवस हैं खुल रहे।
सुविधा न इनकी है हमें अन्यत्र जैसी देखते;
हा ! हंत ! यों रहना पड़े मुँह दूसरों का पेखते ॥ ३६७ ॥

जिह्वा हमारी बन्द है, सब मार्ग भी हैं बन्द-से;
परतंत्र्य के इस कोण में हम फिर रहे पशुवृंद से।
जब तक न भारतवर्ष को सुविधा न हा ! दी जायँगी;
तब तक न ये दासत्व की दृढ़ बेड़ियें कट पायँगी ॥ ३६८ ॥

विद्या न वैसी मिल रही, जैसी हमें अब चाहिए;
अज्ञानतम रहते हुये कैसे बढ़ें बतलाइये ?
कौशल-कला व्यापार में हम ठेट से निष्णात थे;
हम घट गये, वे बढ़ गये, जो ठेट से बदजात थे ! ॥ ३९९ ॥

सरकार का उपकार फिर भी बहुत कुछ देखो हुआ;
इनकी कृपा से आज इतना देखने को तो हुआ।
परतंत्र्य के ये कोट जिस दिन देश से उड़ जायँगे;
शुभ दिन हमारे देश के फिर उस दिवस जग जायँगे ॥ ४०० ॥

हम आज—

वैसे न दिन अब हाय ! हैं, वैसी न रातें हैं यहाँ;
अब हाय ! वैसे नर नहीं, वैसी न नारी हैं यहाँ।
हा ! स्वर्ग-सा वह भूत भारत भूत सदृश रह गया !
कण मात्र भी अब उस छटा का शेष है नहिं रह गया ! ॥४०१॥

है वायु भी बहती वही, आनंदप्रद वैसी नहीं;
ऋतुराज, पावस, ग्रीष्म की भी बात है वैसी नहीं।
बदली हुई हमको हमारी मातृ-भूमी दीखती;
हा ! पूर्व-सी वैसी कृषी इसमें न होती दीखती ! ॥ ४०२ ॥

अघचार, पापाचार, हिंसाचार, मिथ्याचार हैं;
रसचार हैं, रतिचार हैं, सब के बुरे व्यवहार हैं !
हम दीन हैं, मति हीन हैं, नहिं मदन पर कोपीन हैं;
दासत्वता में, भृत्यता में नाथ ! अब लवलीन हैं !! ॥ ४०३ ॥

६

वर्तमान खण्ड

—○:❀:○—

गाती रही तू भूत अब तक लेखनी उत्साह भर;
रोया न तुझसे जायगा अब आज का दिन दाहकर !
निःशक्त हैं, निःचेष्ट है, नहिं नाड़ियों में रक्त है;
अब श्वास भी रुकने लगी, अंतिम हमारा वक्त है !!! ॥ १ ॥

क्या बंधुओ ! हमको कहाने का मनुज अधिकार है ?
दर दर हमें दुत्कार है ! धिक् ! धिक् ! हमें धिक्कार है !
कटुकर लगेंगे आपको ये वाक्य हैं जो कह रहा;
पर क्या करूँ ? लाचार हूँ, मेरा हृदय नहीं रह रहा ॥ २ ॥

दयनीय हा ! इस दुर्दशा का हे विभु ! कहां छोर है ?
इस ओर भी हम है नहीं, नहिं नाथ ! दूजी ओर हैं।
हममें विषैली फूट है, हममें बढ़ा अघचार है;
हैं रोग ऐसे बढ़ रहे, जिनका न कुछ उपचार है ॥ ३ ॥

है अज्ञता-श्यामा-अमा सम्यक् हमें घेरे हुये;
हैं नाथ ! हम रतिकामिनी के कक्ष में सोये हुये।
एकान्त हो, तमभार हो, रति रूपसी-सहवास हो;
उस ठौर पर कल्याण की क्या नाथ ! कोई आश हो ॥ ४ ॥

गुर्जर व मालव देश के हम शाह थे, सरदार थे;
सौराष्ट्र, राजस्थान के आमात्य थे, भूदार थे।
ऐसा पतन तो शत्रु का भी नाथ ! हा ! करना नहीं;
इससे भली तो मृत्यु है, जिसमें न है लज्जा कहीं ॥ ५ ॥

श्रीमंत होने मात्र से क्या अवपतन रुकता कहीं;
हैं किस नशे में झूमते, हमसे न कम गणिका कहीं।
कितनी हमारे पास में दौलत जमा है देख लूँ;
किस श्रेणि के फिर योग्य हैं हम, श्रेणि वह भी लेख लूँ ॥ ६ ॥

हम शाह हैं या चोर हैं, हम हैं मनुज या हैं दनुज;
हम नारि हैं या हैं पुरुष ! अत्यंज तथा या हैं अनुज।
हिंसक तथा या जैन हैं, या नारि-नर भी हैं नहीं;
क्यों की हमारे कार्य तो नर-नारि सम खलु हैं नहीं ॥ ७ ॥

अविद्या

क्यों सूत्र ढीले पड़ गये ? क्यों अवगुणों से ढक गये ?
क्यों मन-वचन-अरविंद पर पाले शिशिर के पड़ गये ?
निज जाति, धन, जन, धर्मका क्यों ह्रास दिन-दिन हो रहा ?
हम चेतते फिर क्यों नहीं ? क्या रोग विभुवर ! हो रहा ? ॥ ८ ॥

हममें विषय का जोर क्यों ? हममें बढ़ा अतिचार क्यों ?
उन्मूल हमको कर रहा यह अन्ध श्रद्धाचार क्यों ?
घातक प्रथायें, रीतियों के घोर हम हैं अड्ड क्यों ?
हम आप अपने ही लिये उत्कीर्ण रखते खड्ड क्यों ? ॥ ९ ॥

अतिव्यय हमारे में अधिक क्यों आय से भी बढ़ रहे ?
अनमेल-अनुचित-शिशु-प्रणय हममें अधिक क्यों घट रहे ?
हममें सुशिक्षा की व्यवस्था नाम को भी क्यों नहीं ?
क्यों सो रहे युग-नींद हम ? हम जागते हैं क्यों नहीं ? ॥ १० ॥

क्यों *आज* 'अज' को 'मेर' को *मर* 'रोज' को *रज* लिख रहे ?
'चत्वार पट' लिखना जहाँ *चौपट* वहाँ क्यों लिख रहे ?
'सुत' को *सुता* क्यों लिख रहे ? क्यों बन रहे नादान हैं ?
इस जग-अजायब गेह में हम क्यों अजब हतज्ञान हैं ? ॥११॥

इस अवदशा का बन्धुओ ! क्या हेतु होना चाहिए ?
क्या द्वेष, मत्सर, राग को जड़-हेतु-कहना चाहिए ?
इनका जहाँ पर जन्म है—जड़-हेतु है सच्चा वही;
इनकी अविद्या मातृ है, जड़-हेतु अवनति का वही ॥ १२ ॥

आर्थिक स्थिति

एकाक्ष का अन्धे जनों में मान बढ़ता है यथा;
कंकाल-भारतवर्ष में श्रीमंत जन हम हैं तथा।
कुछ मोड़ कर ग्रीवा सखे ! हम पूर्व-वैभव देख लें;
फिर दीन हैं, श्रीमन्त या जलकण बहाकर लेख ले ॥१३ ॥

हे बन्धुओ ! गणना हमारी लक्ष तेरह है अभी;
कोटीश जन, लक्षेश जन हममें मिलें कितने अभी ?
मैं आप जैनी हूँ, हमारा जानता गृह भेद हूँ;
अब खोलने गृह-पोल को मैं बन रहा गृहछेद हूँ ॥ १४ ॥

हम पाँच प्रतिशत भी नहीं श्रीमंत-पद के योग्य हैं;
चालीस प्रतिशत भी कहीं हम पेट भरने योग्य हैं।
पैंतीश प्रतिशत आत्मजा को बेच कर हैं जी रहे;
अवशिष्ट रहते बीस विष मारे क्षुधा के पी रहे ॥ १५ ॥

अपव्यय

हा ! जाति निर्धन हो चुकी,—क्या ध्यान हमको है भला ?
देता न वह भी ध्यान जिसके आगई घर है बला !
निज जाति का, निज धर्म का, निज का 'न' जिसको ध्यान है;
नर-रूप में, हम सच कहें, वह फिर रहा बन श्वान है ॥ १६ ॥

हो पाणि-पीड़न के समय व्यय लक्ष कुछ चिंता नहीं;
आतिश, कलाबाजी न हो—आनन्द कुछ आता नहीं;
'रतिजान' के तनहार बिन जी की कली खिलती नहीं;
बिन भोज भारी के दिये यश-कीर्ति बढ़ सकती नहीं ॥ १७ ॥

धन नाम को भी हो नहीं, नहिं शान में होगी कमी;
कौलिण्यता अब वंश की व्यय व्यर्थ में आ ही थमी।
करके मृतक-भोजन हजारों बाल-विधवा रो रहीं;
घर दीन कितने हो गये, पर बढ़ क्रिया यह तो रहीं ॥ १८ ॥

मेले, महोत्सव, तीर्थ-यात्रा अरु प्रतिष्ठा कार्य में;
उपधानतप, दीक्षादि में शोभा-विवर्धक कार्य में—
हतज्ञान हो हम आय से व्यय बहु गुणित हैं कर रहे;
सत्कर्म को दुष्कर्म कर हम आप निर्धन बन रहे ॥ १९ ॥

इन मंदिरों के आय-व्यय को आँक हम सकते नहीं;
क्या तीर्थ-धन खाकर धनी हैं बन गये गुण्डे नहीं।
मन्दिर पुराने सैकड़ों पूजन बिना हैं सड़ रहे;
हम घटरहे हर वर्ष हैं, पर चैत्यगृह नव बढ़ रहे ॥ २० ॥

अब धर्म के भी कार्य में प्रतियोगितायें चल रहीं;
बढ़कर हमारे हो महोत्सव—योजनायें बन रहीं।
हा ! जाति निर्धन हो चुकी, व्यापार चौपट हो चुका;
पड़ धर्म भी प्रतियोगिता में भ्रष्ट सारा हो चुका ॥ २१ ॥

हम मूर्ख हैं अनपढ़, तथा, नहिं सोच भी हम कुछ सकें;
फिर व्यर्थ व्यय, अपयोग को हम समझ भी क्या कुछ सकें ?
हम श्रेष्ठि, शाहूकार हैं—धन क्यों न पानी-सा बहे;
वे राम-पूर्वज मर गये ! मणि कपि-करों में क्यों रहे ? ॥ २२ ॥

अपयोग

किस काम में हम दे रहे धन—देखते नहिं कार्य हैं;
परिणाम तब उस द्रव्य का होता नहीं शुभ आर्य है !
कुछ द्रव्य की करना व्यवस्था है हमें आती नहीं;
हा ! दूसरों की राय भी लेनी हमें भाती नहीं ॥ २३ ॥

उत्साह में आकर अहो ! हम शिक्षणालय खोल दें;
होकर प्रभावित शीघ्र ही हम दान-शाला खोल दें।
धर्मार्थ भोजन-धर्म-गृह यदि खोलते देरी करें;
उतनी अनङ्गोपासना में हाय ! हम देरी करें ॥ २४ ॥

वेश-भूषा

निज वेश-भूषा छोड़ना यह देश का अपमान है;
क्या दूसरों की नकल में ही रह गया सम्मान है।
जो जाति खलु ऐसा करे, वह जाति जीवित ही नहीं;
यदि चढ़ गया रंग लाल तो फिर श्वेतपन है ही नहीं ।।२५।।

इस वृद्ध भारतवर्ष का यह वृद्ध भूषा-वेश है;
चारित्र-दर्शन-ज्ञान का यह पूत! पार्थिव वेश है।
हम दूसरों की कर नकल अब सिद्ध ऐसा कर रहे—
जन्मे नहीं हम पूर्व थे, हम जन्म अब हैं धर रहे ।। २६ ।।

जलवायु, कर्माचार के अनुसार होता भेष है;
प्रतिकूल जिनके वेश हैं, खलु पतित वे ही देश हैं।
इस वेश-भूषा में निहित नव रस तुम्हें मिल जायँगे;
साहित्य-कौशल-कर्म का हमको जनक बतलायँगे ।। २७ ।।

"जब तक न भाषा-भेष का अभिरूप बदला जायगा;
तब तक न भारत में हमारा राज्य जमने पायगा।"
ये वाक्य किसको याद हैं? किसने कहो, कब थे कहे?
मंतव्य के अनुसार अब तक कार्य वे करते रहे! ।। २८ ।।

हम छोड़ करके वेश-भूषा देश लज्जित कर रहे;
अपमान कर हम पूर्वजों का श्याह मुख निज कर रहे!
पूर्वज हमारे स्वर्ग से आकर अगर देखें हमें;
मैं सत्य कहता हूँ सखे! पहिचान नहिं सकते हमें ।। २९ ।।

नर नारि हैं या नारि नर—यह वेश कहता भी नहीं;
'नर-वेश' नर का भी नहीं, 'रति-वेश' रति का भी नहीं।
नर वेश भी जब है नहीं, नहिं नारियों का वेश है;
यह कौन-सा फिर देश है, यह तो न भारत देश है !!॥ ३० ॥

खान-पान

हे भाइयों ! हम जैन हैं, यह मान जन सकते नहीं;
ऐसे कर्भा भी जैन के तो कार्य हो सकते नहीं।
आमिष-विनिर्मित नित्य हम भोजन विदेशी खा रहे;
बदनाम कर यों धर्म को हम जैन हैं कहला रहे॥ ३१ ॥

'विसकी' 'बरण्डी' 'बारले-व्हाइन' हमें रुचिकर लगें;
जापान-जर्मन-चीन के बिस्कुट हमें मधुकर लगें।
हममें व मांसाहारियों में भेद अब क्या रह गया ?
जल छान पीने में अहो ! जैनत्व सारा रह गया॥ ३२ ॥

फैशन

ये युवक हैं या युवतियें—पहिचान में आता नहीं;
पहिने हुये ये पेन्ट हैं, साया तथा पत्ता नहीं।
शिर पर चमकती माँग है, नहिं मूछ मुँह पर हैं कहीं;
नाटक-सिनेमा की कहीं ये नायिकायें हैं नहीं ?॥ ३३ ॥

सर्वाङ्ग इनके वस्त्र में सबको प्रदर्शित हो रहे;
निर्लज्जता की अवतरित ये मूर्ति सच्ची हो रहे।
हा ! जैन जगती ! आज तेरा शील चौपट हो गया;
व्यभिचार से हम दूर थे—नैकट्य उससे हो गया॥ ३४ ॥

परिधान करने के लिये मलमल विदेशी चाहिए!
हा! चमक लाने के लिये मुँह पर—लवण्डर चाहिए!
हर वक्त मुँह को पूँछने करचीफ कर में चाहिए!
जलता हुआ सिगरेट तो कर में सदा ही चाहिए!! ॥ ३५ ॥

जेबी घड़ी है जेब में, है रिष्ट बाहे हाथ में;
है नाक पर ऐनक लगी, है कैप दाहे हाथ में।
ये छोर धोती का उठाये है किधर को जा रहे;
हा! हंत! ये भी वैश्य हैं—वैश्या भवन को जा रहे!! ॥ ३६ ॥

हो पान की लाली टपकती, इत्र-भीना कान हो;
हों वस्त्र सारे मलमली, रसराज की-सी शान हो।
दो यार मिलकर साथ में ये झूमते हैं जा रहे;
उन्मत्त होकर बहिन के कर को दबाते जा रहे!! ॥ ३७ ॥

इस हाय! फैशन ने हमारा नष्ट जीवन कर दिया;
इसने हथोड़े मार कर हा! हेम कण-कण कर दिया।
इस भूत-फैशन के लिये हड़मान जगना चाहिए;
या भूतसे ही भूत अब हमको भिड़ाना चाहिये॥ ३८ ॥

अनुचित प्रणय

बालायु में करना प्रणय संतान का—अभिशाप है;
ऐसे—पिता माता नहीं, वे पुत्र के शिर पाप हैं।
अल्पायु में ये कर प्रणय संतान निर्बल कर रहे;
देकर निमंत्रण काल को ये भेट सन्तति कर रहे! ॥ ३९ ॥

ये जाति के अभिशाप हैं, निर्मूल उसको कर रहे;
संतान भावी को हमारी दीन दुखिया कर रहे।
यदि हाल जो ऐसा रहा—हम एक दिन मिट जायँगे;
इन पापियों के पाप का फल हाय! कटु हम खायँगे ॥ ४० ॥

है रोग इतना ही नहीं, दूजे कई हैं लग रहे;
अनमेल वय में, वृद्ध वय में पाणि-पीड़न बढ़ रहे!
बहु पाणि-पीड़न की प्रथा भी आज हममें दीखती!
हम क्या कहें, अंतिम समय की काल-घड़ियाँ चीखतीं!! ॥ ४१ ॥

ये बाल विधवायें हजारों दे रहीं कटु शाप हैं;
बालक विधुर हो फिर रहे—हम देखते नित आप हैं!
वृद्धायु के दुष्प्रणय ने हा! बल हमारा हर लिया;
हा! युवक दल के सत्व को कामी कुकुर ने हर लिया!! ॥ ४२ ॥

जिस जाति का यह हाल हो, उसका भला संभव नहीं;
कब किस घड़ी आ जाय उसका काल कुछ, अवगत नहीं।
मेरे युवक! तुम आँख खोलो, ध्यान कुछ तो अब करो;
सरकार बल या युक्ति से इन कुक्कुरों को वश करो ॥ ४३ ॥

सम्बन्ध जो अनमेल वय में, अल्प वय में कर रहे;
वृद्धायु में बहु पाणि-पीड़न जो मनुज हैं कर रहे;
वे मातृ हों या पितृ हों या हों प्रबल बलधर भले;
प्रतिकार तुम इनका करो—ये नाश करने पर तुले ॥ ४४ ॥
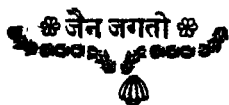
फैले हुये अघचार के ये दुष्ट जिम्मेदार हैं;
ये हैं शिकारी जाति के—इनके बुरे व्यापार हैं।
आज्ञानुवर्त्ती आदि से हम आज तक इनके रहे;
कहना पड़ेगा आज जब आदर्शता तज ये रहे॥ ४५॥

श्रीमन्त

श्रीमन्त हो फिर क्या कमी—पैसा न क्या रे! कर सके;
तुम जीव-हिंसा भी करो, पर कौन तुमको कह सके।
कुछ एक को तो आप में भी है प्रिया मृगया-प्रिया;
कुल्टा तुम्हारी हो गई चिरसंगिनी जीवन-प्रिया!!॥ ४५॥

श्रीमन्त हो, रसराज हो, कामी तथा बेभान हो;
अवकाश भी तुमको कहाँ! जो जाति का भी ध्यान हो।
इस आज की हा! दुर्दशा के मूल कारण हो तुम्हीं;
तुम रोग हो, गुण चोर हो, अरु प्राण-हर्ता हो तुम्हीं!!॥ ४७॥

देव-धन खाते हुये तुमको न आती लाज है;
तुम मनुज को भी खा सको यह कौन-सा दुष्काज है!
अनैच्छिक कन्या-हरण तुम हा! कर्म गुण्डों का कहो;
धन के सहारे तुम हरो, हो तुम न गुण्डे हा! अहो!॥ ४८॥

फैले हुये अघचार के हा! तात, जननी हो तुम्हीं;
अनमेल-वृद्धिक प्रणय के भी हाय! त्राता हो तुम्हीं।
बहु पाणि-पीड़न भी तुम्हारा हाय! पापी कर्म है;
ये रो रहीं विधवा हजारों, पर न तुमको शर्म है!!॥ ४९॥

नौ-नौ तुम्हारी शादियें हों—मार पर मरता नहीं;
यों स्वत्व युवकों का हरो—तुमको न पर लज्जा कहीं !
लक्ष्मी ! अहो ! तुम धन्य ! हो—हम रूप नाना लेखते;
दुष्प्रेम भाभी पुत्रवधु से हाय ! इनका देखते ॥ ५० ॥

हा ! जाति भूतल जा चुकी, श्रीमंत तुम क्या बच चुके ?
पच्चास प्रतिशत हाय ! तुम में दीन भिक्षुक बन चुके !
अब द्यूत, सट्टा, फाटका श्रीमंत के व्यापार हैं;
उद्योग, धन्धे और सब इनके लिये निस्सार हैं !! ॥ ५१ ॥

तुम कल्प तक में बन्धुओ ! सट्टा न करना छोड़ते;
फिर ओलियें तो वस्तु क्या ? बाकी न कुछ हा ! छोड़ते ।
यदि दीप-माला पर्व पर जो द्यूत-क्रीड़ा हो नहीं—
हा ! अपशकुन हो जायँगे—श्री तुष्ट संभव हो नहीं ॥ ५२ ॥

रसचार में, रतिवास में जीवन तुम्हारा जा रहा;
लेटे हुए हो महल में, तन में नशा-सा छा रहा ।
शतरंज, चौपड़, ताश के अभिनय मनोहक लग रहे;
किलकारियों से महल के छज्जे अहो हैं उड़ रहे !! ॥ ५३ ॥

तुम साठ के हो—पत्नि हा ! है आठ की भी तो नहीं;
तुमको सुतावत पत्नि से रतिचार में लज्जा नहीं ।
श्रीमंत हो, सरकार की भी है तुम्हें चिन्ता नहीं;
टुकड़ा अगर मिल जाय तो कुक्कुर न 'हू' करता कहीं ॥ ५४ ॥

रति, रास, वैभव, ऐश में तुम धन तुम्हारा खो रहे;
सत्कार्य में देते हुये हो कोड़ि-कोड़ी रो रहे।
ऐसे धनी भी हैं कई जो पेट भर खाते नहीं;
यदि मिल गई रोटी उन्हें तो साग के पत्ते नहीं !! ॥ ५५ ॥

तुम छोड़ कर निज पत्नि को बाम्बे, सितारे में रहो;
हर ठौर मिलती पत्नि हैं, फिर व्यर्थ क्यों व्यय में रहो !
उस ओर तुमको पत्नि है, इस ओर तुमको पुत्र है;
धन-वृद्धि के यों साथ में बढ़ता तुम्हारा गोत्र है !! ॥ ५६ ॥

है कौन सा ऐसा व्यसन जिसका न तुमको रोग हो;
दुष्कर्म है वह कौन सा जिससे न कुछ संयोग हो।
था बहुत कुछ कहना मुझे, कहना न मुझको आ रहा;
बस दुर्व्यसन, दुष्कर्म में जीवन तुम्हारा जा रहा !! ॥ ५७ ॥

श्रीमन्त हो, नहिं आपको तो लुब्ध होना चाहिए;
है नीति का यह वाक्य, निंदक निकट होना चाहिए।
आस्वाद भोगानंद में जब तक तुम्हारी भक्ति है;
उद्धार संभव है नहीं—क्षय हो रही सब शक्ति है ॥ ५८ ॥

यह मानना, अवमानना—इच्छा तुम्हारी आपकी;
माना न—आशातीत तो होगी बुरी गत आपकी।
यदि अब दशा ऐसी रही—जीने न चिर दिन पायँगे;
इतिहास से जग के हमारे नाम भी उड़ जायँगे !! ॥ ५९ ॥

जितने कलह हैं जाति में इस भाँति से पुष्पित हुये,
घर, तीर्थ, मंदिर, जाति तक जिनके चरण लंबित हुये,
ये साम्प्रदायिक रूप जिनके नित भयंकर हो रहे;
वे काम सब हैं आपके—बल आपके वे हो रहे ॥ ६० ॥

जिस ठौर पैसा चाहिए तुमको न देना है वहाँ;
देना तुम्हें उस ठौर है अति अधिक पैसा है जहाँ।
उपयोग करना द्रव्य का तुमको तनिक आता नहीं;
जब तक न संयमशील हो, उपयोग भी आता नहीं ॥ ६१ ॥

तन में कमी है रक्त की या मांस तन में है नहीं;
तुम रक्त कपि को मार कर भी चूँस लो—कुछ है नहीं।
तुम जैन होकर यों अहिंसा धर्म का पालन करो!
धिक्कार तुमको लाख हैं, क्यों धर्म को श्यामल करो ॥ ६२ ॥

ऐसे हमें श्रीमन्त पर क्या गर्व करना चाहिए;
शिल बाँध कर इनके गले जल में डुबोना चाहिए।
जिनके उरों में जाति प्रति यदि नेह कुछ जगता नहीं;
संबंध फिर ऐसे जनों से जाति का रहता नहीं ॥ ६३ ॥

ये दीन जायें भाड़ में इससे उन्हें कुछ है नहीं;
ये जाति में उनकी कहीं भी चीज कोई है नहीं।
धन-धान्य-सुख-संपन्न हैं ये—क्यों किसी का दुख करें;
क्या दीन ने इनको दिया जो दीन का ये दुख हरें ॥ ६४ ॥

इनके भरोसे बैठना अब तो भयंकर भूल है;
क्या रोप देंगे जड़ हमारी !—आप ये निर्मूल हैं।
बेड़ा हमारा पार क्या येही करेंगे ? सच कहो;
हा ! हंत ! आया अंत है !—ऐसा नहीं तुम कुछ कहो ॥ ६५ ॥

इनके वहाँ पर मान है श्रीमन्त बिन होता नहीं;
धनहीन भाई को यहाँ दुत्कार है, न्योता नहीं।
हम किस तरह से हाय ! इनसे तुम कहो आशा करें;
दुत्कार ठोकर द्वार पर इनके सदा खाया करें ? ॥ ६६ ॥

श्रीमन्त की संतान

यह कौन हैं ? नहिं जानते ? श्रीमंत की संतान हैं;
नङ्ग, निरक्षर, मूर्ख हैं, पाषाण, पशु, नादान हैं।
सीखा न अक्षर बाप ने, सीखा न ये हैं चाहते;
मर्याद ये भी वंश की तोड़ा नहीं हैं चाहते !! ॥ ६७ ॥

आलस्य, विषयानंद के ये दुर्व्यसन के धाम हैं,
बढ़कर पिता से पुत्र नहिं—होता न जग में नाम है।
ये अर्ध निद्रा में पड़े हैं, नाज-मुजरें ले रहे;
वामा पड़ी विमुखा उधर, ठेके इधर ये दे रहे !! ॥ ६८ ॥

ये बोलने पर पत्नि के डण्डे बिना नहिं बोलते;
उसको किये मृतप्राय बिन सीधी कभी नहिं छोड़ते !
हा ! हंत ! भावज पत्नि है, हा ! बहन के ये यार हैं;
ये भी विचारें क्या करें ! रति-भाव से लाचार हैं ॥ ६९ ॥

इनको न व्यय की है कमी, इन पर पिता का प्यार है;
भट, भाण्ड, भड़वे, धूर्त इनके मित्र-संगी-यार हैं।
शतरंज, जूआ, ताश के कौतुक अहिर्निश लेख लो;
कल कण्ठियों से गूँजते प्रासाद इनके पेख लो !! ॥ ७० ॥

मेले, महोत्सव, पर्व पर इनके नज़ारे देखिये;
चल-चाल नखरे-नाज इनके उस समय अवलोकिये।
हा ! जैन-जगती ! यह दशा होती न जानी थी कभी;
संतान की ऐसी दशा होती न जानी थी कभी !! ॥ ७१ ॥

पढ़ना-पढ़ाना सीखना तो निर्धनों का काम है;
सच पूँछिये तो पठन-पाठन ब्राह्मणों का काम है।
होकर बड़े इनको कहीं भी नौकरी करनी नहीं;
तब पुस्तकों में फिर इन्हें यों श्रम वृथा करनी नहीं !! ॥ ७२ ॥

यौवन जहाँ इनको हुआ, बस भूत मानों चढ़ गया;
प्रत्येक इनके अङ्ग में बस काम जाग्रत बन गया।
हर बात में, हर काम में बस काम इनको दीखता;
हा ! पत्नि, भावज, बहन में अंतर न इनको दीखता !! ॥ ७३ ॥

संगीत के ये हैं कलाविद, नर्तन-कला आती इन्हें;
निज प्रेयसी के काम में नहिं शर्म है आती इन्हें।
लेकर प्रिया ये साथ में नाटक सिनेमा देखते;
तात्पर्य मेरा है यही—जग काममय ये लेखते !! ॥ ७४ ॥

क्षण मात्र में तुम देख लो इनकी जवानी सो गई;
अब दिन बसंती हैं नहीं, पतझड़ इन्हें है हो गई।
वे नाज-मुजरे मर गये, सहचर मरे सब साथ में;
धन, मान, पत सब उड़ गये, भिक्षा रह गई हाथ में ! ॥ ७५ ॥

इनके परन्तु महापतन का मूल झर झरता कहाँ ?
चटशाल जाने से इन्हें थी रोकती माता जहाँ।
ऐसे पिता-माता महारिपु हैं, उन्हें धिक्कार है;
क्या नाथ ! सब यह आपको अब हो रहा स्वीकार है ?॥ ७६ ॥

नैया हमारी क्या भँवर से ये निकालेंगे अहो !
क्या बुद्धि पर शिल पड़ गये ? बक क्या रहे हो रे ! अहो !
इस भाँति की संतान से उत्थान क्या हो पायगा ?
हो जायगा—काया-पलट इनका अगर हो जायगा ॥ ७७ ॥

निर्धन

जिन जाति ! तेरी हाय ! यह कैसी बुरी गत हो गई !
हा ! चन्द्रिका से क्यों बदल काली अमा तू हो गई !
हे बन्धुओ ! यह क्या हुआ ! क्या तुम न चेतोगे अभी !
हे नाथ ! दिन वे चन्द्रिकायुत क्या न लौटेंगे कभी !! ॥ ७८ ॥

पचास प्रतिशत पूर्व निर्धन हूँ तुम्हें मैं कह चुका;
पर दैन्य, क्रन्दन, दुर्दशा का कुछ न वर्णन कर सका !
कहने लगा अब हाय ! क्या आवाज तुम तक आयगी !
प्रासाद-माला चीर कर क्या क्षीण-लहरी जायगी !! ॥ ७९ ॥

७

ये भी कहाते सेठ हैं, पर पेट भरता है नहीं;
स्वीकार इनको मृत्यु है, दैन्यत्व स्वीकृत है नहीं।
निर्लज्ज होकर तुम मरो, ये लाज से मरकर मरें;
तुम खूब खाकर के मरो, हा! ये क्षुधित रहकर मरें! ॥ ८० ॥

जिस जाति में श्रीमन्त हों—कैसे वहाँ धनहीन हों!
दयवंत हैं धनवंत यदि—कैसे वहाँ पर दीन हों!
मनहंत पर जिन जाति के श्रीमन्त जन हैं दीखते;
फिर क्यों न निर्धन बन्धु उनके ठोकरों में दीखते!! ॥ ८१ ॥

कहते इन्हें भी सेठ हैं अरु शाह-पद अभिराम है;
बक्काल, बणिया, बणिक भी इनको मिले उपनाम हैं।
क्या अर्थ है श्रीमन्त को इस ओर क्यों देखें भला;
देखें इधर कुछ अगर वे—छू मंत्र हो जावे बला ॥ ८२ ॥

श्रीमंत के आराम के ये दीन ही दृढ़ धाम हैं;
उनके मनोरथ काम के सब भाँति ये तरु काम हैं।
इस हेतु ही शायद इन्हें वे हीन रखना चाहते;
दे नींव इनकी—महल की मंजिल उठाना चाहते ॥ ८३ ॥

निर्धन बिचारे एक दिन श्रीमन्त यदि बन जायँगे;
दस-पाँच कन्या का हरण श्रीमंत फिर कर पायँगे?
बालक कुँवारे निर्धनों के जन्म भर फिरते रहें!
उस ठौर नौ-नौ पाणि-पीड़न शाह जी करते रहें!! ॥ ८४ ॥

कन्या कहो, बाजार में फिर क्यों न बिकनी चाहिए ?
निर्मूल निर्धन हो रहे—क्या युक्ति करनी चाहिए ?
इस पाप के विस्तार के श्रीमन्त ही अवतार हैं;
श्रीमन्त संयम कर सकें—भव पार बेड़ा पार है ॥ ८५ ॥

क्या अन्य कार्याभाव में व्यापार यह अनिवार्य है ?
क्या अर्थहीनों का कहीं होता न कोई कार्य है ?
क्यों बेच कर तुम भी सुता को तात की शादी करो ?
हा ! क्यों न तुम निर्धन मनुज मिलकर सभी व्याधी हरो ॥८६॥

होते हुये तुम युक्ति के यदि हो सुता तुम बेचते;
धिक् ! धिक् तुम्हें शत बार है ! तुम मांस कैसे बेचते ?
रे ! पुरुष का पुरुषार्थ ही कर्तव्य, जीवन धर्म है;
चीर कर विपदावरण को पार होना धर्म है ॥ ८७ ॥

श्रीमन्त का ही दोष है—ऐसा न भाई ! मानना;
अस्सी टका अपने पतन में दोष अपना जानना।
तुम चोर हो, मक्कार हो, झूठे तुम्हारे काम हैं;
बक्काल, बणिया, मारवाड़ी ठाक हा तो नाम हैं ॥ ८८ ॥

श्रीमन्त जैसी आय तुमको हो नहीं है जब रही;
श्रीमन्त की फिर होड़ करने को तुम्हें क्यों लग रही।
प्रतियोगता के जाल में चिड़िया तुम्हारी फँस गई;
सब पंख उसके कट गये, वह बदन से भी छिल गई ॥ ८९ ॥

था एक दिन ऐसा कभी—हम में न कोई दीन था;
पुरुषार्थ-प्राण थे सभी—सकता कहाँ मिल हीन था?
पर आज हमको पूर्व भव तो भूल जाना चाहिए;
अब तो हमें इस काल में कुछ युक्ति गढ़ना चाहिए ॥ ६० ॥

श्रीमन्त यदि कुछ* कर दया कल कारखाने खोल दें,
व्यापार हित हाटें कई भूभाग भर में खोल दें,
तो बस हमें उठते हुये कुछ देर लगने की नहीं;
हे नाथ! क्या इस जाति का उत्थान होगा ही नहीं? ॥ ६१ ॥

साधु-मुनि

अब इतर मत के साधुओं को देखते हम आज हैं;
तब तो हमारे साधु-मुनि आदर्श फिर भी आज हैं।
तप, त्याग, संयम, शील में अब भी न इनके सम कहीं;
कुछ एक ऐसे भी श्रमण हैं, अपर जिनके सम नहीं ॥ ६२ ॥

पर वेष धारी साधुओं की भूरि संख्या हो गई;
सद् साधु की आदर्श बस यों ज्योति तम में खो गई।
सद् साधु तो मेरे कथन से रुष्ट होने के नहीं;
अरु नामधारी साधु से कुछ भीति मुझको रे! नहीं ॥ ६३ ॥

वंदन तुम्हें शतवार है, तुम धर्म के पतवार हो!
पर वेषधारी साधुओ! तुम आज हम पर भार हो।
तुमने उठाया था हमें, तुमने चढ़ाया है अहो!
क्यों आज शिल पर शृङ्ग से तुमने गिराया है कहो? ॥ ६४ ॥

क्यों श्रावकों के दास गुरुवर ! आप यों हैं हो गये ?
क्यों त्याग-संयम-शील-वित खोकर असाधू हो गये ?
हमको लड़ाना ही परस्पर आज गुरुवर काम है !
करना इधर की उधर ही गुरु आपका अब काम है !! ॥ ९५ ॥

अब साधु तुम हो नाम के, वे साधु अब तुम हो नहीं !
अब साधु-गुण तो साधु में हा ! देखने तक को नहीं !
तुम क्रोध क अवतार हो, तुम मान के भण्डार हो !
संसार मायामय तुम्हारा, लोभ के आगार हो !! ॥ ९६ ॥

भगवान् पद के प्राप्ति की इच्छा उरों में जग गई;
सम्राट बनने से तुम्हारी कामनाएँ फल गई ?
भगवान हो, सम्राट हो, तुम जगद्गुरु आचार्य हो;
भगवान पर कर लग रहे, भगवान कैसे आर्य ! हो ! ॥ ९७ ॥

मुनि-वेष धरने से कहीं मन साधु होता है नहीं;
जैसा हृदय में भाव है—बाहर झलकता है वही।
तप-प्राण, त्यागी, साधु तुममें बहुत थोड़े रह गये;
भरपेट खाकर लौटने वाले सभी तुम रह गये ॥ ९८ ॥

गिरते न गुरुवर ! आप यों—हम दीन यों होते नहीं !
धन, धर्म, पत, विश्वास खोकर आज खर होते नहीं !
अभिप्राय मेरा यह नहीं की आपका सब दोष है;
कुछ आपका, कुछ काल का, अरु कुछ हमारा दोष है ॥ ९९ ॥

साध्वी

हे साध्वियो ! वंदन तुम्हें यह भक्त दौलत कर रहा;
पर देख कर जीवन तुम्हारा हाय ! मन में कुढ़ रहा।
आत्माभिसाधन के लिये संयम लिया था आपने;
संयम-नियम को भूल कर कर क्या दिया यह आपने !! ॥ १०० ॥

तुममें न गृहणी में मुझे अन्तर तनिक भी दीखता !
वह मोह-माया-जाल मुझको आप में भी दीखता।
तुम छोड़कर नाते सभी—नाते सभी विध पालतों;
सम्यक्त्व आर्ये ! भूल कर संमोह तुम हो पालती ! ॥ १०१ ॥

तुम पति विहीना नारियों की दृढ़ चमू है बन गई;
अथवा च विधुरा नारियों को अलग परिषद बन गई।
परिषद चमू तो देश की रक्षार्थ आती काम है;
क्षन्तव्य, उलटा कह गया ऐसा न इनका काम है !! ॥ १०२ ॥

तुममें न कोई पंडिता, विदुषी मुझे हैं दीखती !
जैसी चली गृहवास से वैसी अभी हो दीखती !
आर्या कहाती आप हो, आर्यत्व तुममें अब कहाँ !
तुममें, अनाथा भिक्षुकी में कुछ नहीं अन्तर यहाँ !! ॥ १०३ ॥

धन, मान, परिजन, गेह, पति परित्यक्त तुम हो कर चुकीं;
उर में लगन पर है वही—स्वाहित स्वकर से कर चुकीं।
अवकाश पर भी धर्म की चर्चा तुम्हें भाती नहीं !
घरबास के अतिरिक्त बातें हा ! तुम्हें आती नहीं !! ॥ १०४ ॥
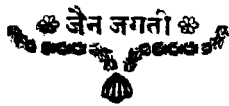
लड़ने लगो जब तुम परस्पर वह छटा तो पेख्य है !
को-दण्ड हैं डण्डे तुम्हारे, पात्र शर सम लेख्य हैं !
कर-पाद भी उस काल में देते गदा का काम हैं !
मुँह-यंत्र की तो क्या कहूँ—वह तो कला का काम है !! ॥ १०५ ॥

संयम-व्रता इन नारियों का यह पतन ! हा ! हंत ! हा !
कह कर चली थीं मोक्ष की जो, तपन में भी हैं न हा !!
श्रीसंघ को इस भाँति से विभु ! भग्न करना था नहीं !
नग्नत्व का जैनत्व में से भाव हरना था नहीं !! ॥ १०६ ॥

श्रीपूज्य-यति

श्रीपूज्य, यति जिनका अधिक सम्राट से भी मान था;
किस भाँति अकबर ने किया यति हीर का सम्मान था।
पर आज ऐसे गिर गये ये—पूछना कुछ है नहीं !
अब दोष-आकर हैं सभी, वह त्याग-संयम है नहीं !! ॥ १०७ ॥

अनपढ़ तथा ये मूर्ख हैं, अरु घोर विषयासक्त हैं !
भंगी, भड़ेड़ी, कामरत नर आज इनके भक्त हैं !
अब यंत्र, मोहन-मंत्र में श्रीपूज्य-पद हा ! रह गया !
यह यंत्र नारी-जगत में बन कर विहंगम उड़ गया !! ॥ १०८ ॥

कुलगुरु

ये आज कुलगुरु सब हमारे दीन, भिक्षुक हो गये !
हो क्यों न भिक्षुक, दीन विद्याहत जब ये हो गये !
ये पड़ गये सब लोभ में, व्यसनी, रसीले हो गये !
आदर्श कुलगुरु थे कभी, अब भृत्य देखो हो गये !! ॥ १०९ ॥

तीर्थ-स्थान

ये तीर्थ मंगल-धाम हैं, ये मोक्ष की सोपान हैं;
उन पूर्वजों की तप-तपस्या, मुक्ति के ये थान हैं।
अपवर्ग साधन के जहाँ होते रहे नित काम हैं!
अब देख लो होते वहाँ रसचार के सब काम हैं!! ॥ ११० ॥

रस-भोग-भोजन के यहाँ अब ठाट रहते हैं सदा!
गुण्डे दुराचारी जनों के जुत्थ फिरते हैं सदा!
मेलादि जैसे पर्व पर होती बसंती मौज है!
सर्वत्र मधुबन वीथियों में प्रेयसी-प्रिय-खोज है!! ॥ १११ ॥

प्रति वर्ष लाखों का वृथा धन खर्च इनमें हो रहा!
हा! देव-धन से काम यों लाखों जनों का हो रहा!
अतिव्यय, कलह, वैषम्य के अवतीर्थ मेले मूल हैं!
इसमें हमारी भूल है इनकी न कुछ भी भूल है॥ ११२ ॥

जब देखते हैं नेत्र इनको बंद दो पड़तीं अहा!
अब ये तपोवन हैं नहीं, जगता मनोभव ही यहाँ!
अब दर्श भी बिन शुल्क के भगवान के संभव नहीं!
अब ईश के दरबार में भी घूस बिन अवसर नहीं!! ॥ ११३ ॥

मंदिर और पुजारी

मंदिर न अब इनको कहो, नहिं ईश के आवास हैं!
पण्डे-पुजारी ईश हैं, दर्शक बिचारे दास हैं!
अड़ना, अकड़ना, डाँटना इनके सदा के काम हैं!
बस माल खाना, मस्त रहना, लोटना ही काम हैं!! ॥ ११४ ॥

सौन्दर्य्य के प्यासे दृगों के खूब लगते ठाट हैं!
ये ईश के आवास अब सौन्दर्य्य के ही हाट हैं!
हा! ईश के आवास में होती अनङ्गोपासना!
प्रत्यक्ष अब इन मंदिरों में दीखती दुर्वासना!! ॥ ११५ ॥

साम्प्रदायिक कलह

हा! चन्द्रिका के राज्य में कैसी अमा है यह पड़ी!
दिन राज के अधिराज में कैसी निशा की यह घड़ी!
हमको सुधा में हा! गरल का स्वाद अब आने लगा!
बन्धुत्व में शत्रुत्व का हा! भाव अब भरने लगा! ॥ ११६ ॥

जो चढ़ चुका है शृङ्ग पर फिर निम्नगा भी है वही;
कैसे बढ़े फिर शृङ्ग से, जब ठौर आगे है नहीं।
ऐसी दशा में लौटना होता न क्या अनिवार्य है?
पर हाय! हम तो गिर पड़े भिड़कर परस्पर आर्य! है ॥११७॥

मतभेद में शत्रुत्व के यदि भाव जो भरने लगें;
झरने वहाँ विषधार के फिर देखलो झरने लगें।
अन्न, जल, पवमान तब विषभूत होंगे देख लो;
उद्भिज, मनुज, खग, कीट भी विषकुम्भ होंगे लेख लो ॥११८॥

हा! आज ऐसा ही हमारी जाति का भी हाल है!
प्रत्येक बच्चा, प्रौढ़ इसका हाय! तक्षक व्याल है!
उत्थान की अब आश हमको छोड़ देनी चाहिए;
धिक्कार! हमको श्वान की दुर्मौत मरनी चाहिए ॥ ११९ ॥

ये तो दिगम्बर हैं नहीं, नंगे लड़ाकू दीखते !
ये श्वेतपटधारी नहीं, ये भूत मुझको दीखते !
इनको सहोदर हाय ! हम सोचो भला कैसे कहें ?
अखिलेश के ही सामने पद-त्राण जब इनमें बहें !! ॥ १२० ॥

होकर पुजारी एक के ये हाय ! डण्डों से लड़े !
फिर क्यों न इनके देव पर हा ! दाव दूजों के पड़े !
धिक्कार ! कैसे जैन हैं ! क्या जैन के ये काम हैं !
गतराग जो गतद्वेष जो हा ! जैन उसका नाम है ॥ १२१ ॥

हर एक अपने बन्धु को ये शत्रु कट्टर मानते !
इनसे भले तो श्वान हैं जो अन्त मिलना जानते !
ये एक दूजे को अहो निर्मूल करना चाहते !
ये मार कर अपना सहोदर बन्धु रहना चाहते !! ॥ १२२ ॥

लड़ते हुए इस भाँति से बरबाद दोनों हो चुके !
कोटी सहोदर खो चुके, दोनों समर में रो चुके !
निर्धन, पतित अब दीन ये देखो विचारे हो रहे !
इनके घरों को देख लो बैठक मृतक के हो रहे !! ॥ १२३ ॥

ये व्यूह-रचना में नहीं निष्णात हमको दीखते;
अभिमत हमारा मानलें ऐसे नहीं ये दीखते ।
इनके दलों में फूट है, ये फूट पहिले फूंक दें;
फिर फूंक कर दल-फूट को रण-शंख पीछे फूंक दें ॥ १२४ ॥

ओ! देखते हो क्या दिगम्बर! चार तुममें भेद हैं;
आशा न तुम जय की करो, तुममें जहाँ तक छेद हैं।
हा! श्वेताम्बर भी अहो! है खण्ड-मण्डित हो रहा;
बाहर तथा भीतर अहो! यम-चक्र गतिमय हो रहा ॥ १२५ ॥

बावीसपंथी मूर्त्तिपूजक लड़ रहे मुख-पत्ति पर!
दोनों हताहत हो रहे गैसें विषैली छोड़ कर!
झगड़े सभी इनके अहो! बेनीम हैं निस्सार हैं!
बावीसपंथी मन्दिरों को तोड़ने तैय्यार हैं!! ॥ १२६ ॥

वैष्णव-सनातन मन्दिरों में शौक़ से ये रह सकें;
चौमास-भर ये इतर मत के मन्दिरों में रह सकें।
पर जैन-मन्दिर के नहीं ये सामने तक जायँगे;
हा! चीर कर ये दुर्दिवस कैसे भले दिन आयँगे!!! ॥ १२७ ॥

क्या अर्थ 'पूजा' का करो? क्यों हो परस्पर लड़ रहे?
अन्तर तुम्हारे बोलता क्या काल? क्यों तुम अड़ रहे?
आतिथ्य, रक्षण, मान, अरु औचित्य इसके अर्थ हैं;
अनुसार श्रद्धा, भक्ति के बहु रूप हैं, बहु अर्थ हैं ॥ १२८ ॥

अनुकूल पाकर अन्न ज्यों जीवन हमारा खलु बढ़े;
कृत काम हो ज्यों काम में आगे हमारा मन बढ़े।
चिरकाल रखने के लिये ज्यों चित्र मण्डित चाहिए—
जीवन जगाने के लिये अनुकूल साधन चाहिए ॥ १२९ ॥
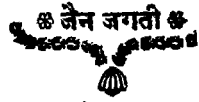
इस दृष्टि से विभु-मूर्त्ति-जीवन-उपकरण ढूंढे गये;
प्रक्षाल, दीपक, धूप इसके उपकरण माने गये।
ज्यों स्नान, भोजन, वस्त्र से तुम देह की पूजा करो;
अनुकूल साधन प्राप्त कर दीर्घायु की आशा करो ॥ १३० ॥

त्यों मूर्ति भी दीर्घायु हो—ऐसे न किसके भाव हैं?
फिर बिंब करुणासिंधु का—फिर क्यों न पूजा-भाव हैं?
इस भाँति पूजा-भाव दिन-दिन मूर्ति में दृढ़ हो गये;
फिर भाव-पूजा-भाव बढ़कर द्रव्य-पूजा हो गये ॥ १३१ ॥

प्रस्तर-विनिर्मित मूर्तियें जिनराज के शिव बिम्ब हैं;
संसार में जिनराज केवल मात्र बस अवलम्ब हैं।
उनके भला फिर बिम्ब का संमान क्यों नहिं हो चढ़ा;
फिर शिल्प भी इस बिंब की सोपान पर देखो चढ़ा ॥ १३२ ॥

जिनराज के जब बिंब हैं, जब शिल्प के ये चिह्न हैं;
अतएव हमसे हो नहीं सकते कभी भी भिन्न हैं।
रक्षार्थ इनके तब हमें साधन जुटाने फिर पड़े;
रखने यथा सम्भव इन्हें मन्दिर बनाने फिर पड़े ॥ १३३ ॥

मैं मानता हूँ आज अति ही द्रव्य-पूजा बढ़ गई;
हतज्ञान होकर भक्ति-पूजा अन्ध श्रद्धा बन गई।
पर अर्थ इसका यह नहीं—हम मूर्ति, मन्दिर तोड़ दें;
हम उचित श्रद्धा में न क्यों हा! अन्ध श्रद्धा मोड़ दें ॥ १३४ ॥

तुम मूर्ति कहते हो जिसे, मैं शास्त्र भी कहदूं उसे;
तुम मूर्ति कह सकते उसे मैं शास्त्र कहता हूँ जिसे।
है एक कागज का बना, दूजा बना पाषाण का;
यह वाकलन भगवान का, वह भान है भगवान का ॥ १३५ ॥

आदर्शता पर शुल्क का फिर प्रश्न है रहता नहीं;
रज का कभी वह मूल्य है, जो मूल्य कंचन का नहीं।
विश्वेश की यह मूर्ति है, इसका न कोई मूल्य है;
जिससे हमारा राग हो, उसके न कोई तुल्य है ॥ १३६ ॥

ये शास्त्र, आगम, निगम हैं विद्वान् जन के काम के;
पर बिम्ब तो अज्ञान के, विद्वान् के सम काम के।
साहित्य की ये दृष्टि से दोनों कला के अंश हैं;
मन-मैल धोने के लिये ये अम्बुकुल-अवतंश हैं ॥ १३७ ॥

अर्थात् आगम है वही शिवमार्ग का जो ज्ञान दें;
शिवमार्ग जो शंकर गये यह बिम्ब उनका भान दें।
उत्थान-उन्नति के लिये दोनों अपेक्षित एक-से;
हैं भूत भारत वर्ष के इतिहास दोनों एक-से ॥ १३८ ॥

समयज्ञ थे पूर्वज हमारे भूत, भावी, आज के;
सब के लिये वे रख गये साधन सभी सब साज के।
पूजा* प्रतिष्ठा मूर्ति की अब क्यों न होनी चाहिए ?
मतभेद कह कर शत्रुता यों पालना नहिं चाहिए ॥ १३९ ॥

---

* प्रसिद्धि
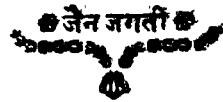
आलाप तेरहपंथ का अंतिम दिवस का नाद है;
चहुँ ओर क्रन्दन, शोर हैं, अपवाद, निन्दावाद हैं।
इन सब कलह की डोर है गुण्डे जनों के हाथ में;
ये भूत कैसे लग गये शाश्वत हमारे साथ में ॥ १४० ॥

रहते हुए इन दम्भियों के प्राण उठ सकते नहीं;
पारम्परिक मतभेद के भी राग मर सकते नहीं।
बावीस! तेरहपंथियो! ओ दिग्पटो! श्वेताम्बरो!
हे बन्धुओ! निज बन्धु को यों मार कर तुम मत मरो ॥१४१॥

कुशिक्षा

शिक्षा कहें अथवा इसे कुल्टा कहें या चण्डनी;
कुलनाशिनी, धनहारिणी, प्रातंत्र्य बंदी-मण्डनी।
शिक्षे! तुम्हारा नाश हो, भिक्षा सिखाती हो हमें;
भिक्षुक बनाकर हाय! रे! दर-दर फिराती हो हमें ॥ १४२ ॥

निज पूर्वजों में हाय! अब श्रद्धा न होती है हमें;
ईशा, नपोलिन पूर्वजों में दीखता नहिं है हमें।
ये सर्व कुशिक्षा के कुफल हैं, हा! हंत! हम भी मनुज हैं!
शिक्षा, विनय में गिर गए—सब भाँति अब तो दनुज हैं!! ॥१४३॥

स्वाध्याय, शास्त्राभ्यास में मन हा! कभी लगता नहीं;
आख्यायिकोपन्यास से मन हा! कभी थकता नहीं।
इतिहास यूरोप आदि के हमको रटाये जा रहे;
संस्कार सब यूरोप के हम में जमाये जा रहे ॥ १४४ ॥
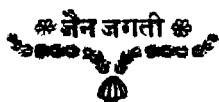
पाश्चात्य मृदंग सीखकर हम तबलची कहला रहे;
हर वर्ष बी० ए०, एम० ए० बढ़ते हुए हैं जा रहे।
यदि हो न बी० ए०, एम० ए० रक्खी कहाँ हैं नौकरी!
डिगरी बिना हम निर्धनों को है कहाँ पर छोकरी!! ॥ १४५ ॥

प्राचीन प्राकृत, देव भाषा सीखते हैं हम नहीं;
इनके सिखाने की व्यवस्था है न अब सम्यक् कहीं।
फिर देश के प्रति तुम कहो अनुराग कैसे जम सके?
दासत्व के कैसे कहो ये भाव उर से उड़ सके? ॥ १४६ ॥

जापान, लण्डन, फ्रांस में शिक्षार्थ हम हैं जा रहे;
आते हुये दो एक लेडी साथ में ले आ रहे।
शिक्षा-प्रिया के साथ में लेडी-प्रिया भी मिल गई;
हम मैन इङ्गलिश बन गये बस मुनसफी जब मिल गई! ॥१४७॥

जो पा चुके शिक्षा यहाँ, उनको बुभुक्षा मिल गई!
हा! भाग्य उनके खुल गये, यदि रोटियाँ दो मिल गई!
नीचा किये शिर रात दिन वे काम, श्रम करते रहे;
फिर भी विचारे स्वामियों के झाड़ते जूते रहे ॥ १४८ ॥

आराम में बस प्रथम नम्बर एक ऐड्वोकेट हैं;
दो बन्धु आपस में लड़ा ये भर रहे पाकेट हैं।
ये भी विचारे क्या करें, इसमें न इनके दोष हैं;
जैसी इन्हें शिक्षा मिली, वैसा करें—निर्दोष हैं ॥ १४९ ॥

जैन शिक्षण-संस्थाएँ

विद्याभवन, चटशाल हैं या रोग के आवास हैं;
वैषम्य, मत्सर, द्वेष के या साम्प्रदायिक वास हैं!
पौशाल कारावास हैं; अभियुक्त हैं बालक यहाँ;
ये घूमते हन्टर लिये शिक्षक सभी जेलर यहाँ ॥ १५० ॥

विद्याभवन तो नाम है, विद्या न है पर नाम को!
विद्यार्थियों को मिल रही विद्या यहाँ हरिनाम को!
यदि शिष्य-गणना ठीक है, शिक्षक अधूरे हैं वहाँ!
शिक्षक जहाँ भरपूर हैं तो शिष्य थोड़े हैं वहाँ!! ॥ १५१ ॥

गुरु, शिष्य दोनों की जहाँ गणना उचित मिल जायगी;
पर अर्थ की नित आपदा तुमको वहाँ पर पायगी।
आर्थिक समस्या हो नहीं—ऐसे न गुरुकुल आज हैं;
कुत्सित व्यवस्था देख कर आती हमें भी लाज है! ॥ १५२ ॥

सम्पन्न यदि सद् भाग्य से विद्याभवन हो हा! कहीं;
हा! दुर्व्यवस्थित, पतित उनसा और मिलने का नहीं!
सब कार्य-कर्ता चोर हैं, दल-बंधियों के जोर हैं!
शिक्षक गणों की पट रही, शिक्षक सभी गुण चोर हैं!! ॥ १५३ ॥

वैसे न गुरुकुल आज हैं! वैसे न विद्यावास हैं!
वैसे न कुलपति शिष्य हा! होंगे—न ऐसी आश है!
यदि पास में पैसा नहीं, मिलती न शिक्षा है यहाँ!
निर्धन जनों के भाग्य में तो मूर्ख रहना है यहाँ!! ॥ १५४ ॥

खण्डन, स्वमण्डन के सिवा होती न शिक्षा है यहाँ !
बस साम्प्रदायिक सैन्य ही तैयार होता है यहाँ !
चटशाल, छात्रावास, गुरुकुल फूट के सब बीज हैं !
इनके बदौलत आज रे ! हा ! हम अकिंचन चीज हैं !! ॥ १५५ ॥

आश्चर्य क्या रतिचार का शिक्षण यहाँ संभव मिले !
हा ! क्यों न ऐसे गुरुकुलों में सृष्टि-शिक्षण वर मिलें !
शिक्षक गणो ! तुम धन्य हो; हे तंत्रियो ! तुम धन्य हो !
निर्बोध बच्चों के अहो ! माता-पिता ! तुम धन्य हो ! ॥ १५६ ॥

बालक यहाँ सब मूर्ख हैं, आता न अक्षर एक हा !
यदि अड़ गये—मर जायँगे—देंगे न जाने टेक हा !
इनमें कहीं पर धेनु-से भोले तुम्हें मिल जायँगे !
विश्वास देकर दुष्ट गण उनको अहर्निश खायँगे !! ॥ १५७ ॥

विद्याभवन आये दिवस हर ठौर खुलते जा रहे;
फिर बैठ जाते फेन-से, ये दीप बुझते जा रहे !
यह जैन गुरुकुल सादड़ी का बंद हा ! कैसे हुआ ?
इसको न थी कोई कमी यह भग्न गति कैसे हुआ ? ॥ १५८ ॥

होगा भला इनसे नहीं, हे भाइयो ! खोलो नयन;
हा ! ये न विद्यावास हैं, हैं ये सभी रोगायतन !
जब तक व्यवस्था एक विधि सब की न बनने पायगी;
उत्थान-तरुवर-शाख हा ! तब तक न फलने पायगी ॥ १५९ ॥
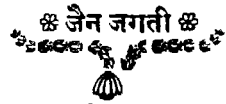
शिक्षा न दीक्षा है यहाँ, आलस्यता उन्माद हैं;
अपखर्च, चौर्य्याचार हैं; स्वच्छंदता, अपवाद हैं!
कितनेक शिक्षण भवन हैं? जो गर्वपूर्वक कह सकें—
हम धर्म सेवी भक्त इतने देश को है भर सकें ॥ १६० ॥

तुमको हमारे गुरुकुलों में यह नयापन पायगा;
बस जैन बालक के सिवा बालक न दूजा पायगा!
नहिं जाति के, नहिं धर्म के, नहिं देश के ये काम के;
ये उदर-पोषक हाट हैं अध्यापकों के काम के!!! १६१॥

आदर्श, पंडित, योग्य शिक्षक यदि कहीं मिल जायगा;
या रह सकेगा वह नहीं, या वह निकाला जायगा।
चारित्र से ये भ्रष्ट उसको हाय! रे! बतलायँगे!
षड़यंत्र ऐसे जैन-शिक्षणशाल में नित पायँगे! ॥ १६२ ॥

विद्वान्

हम विज्ञ प्राकृत के नहीं, विद्वान् संस्कृति के नहीं!
विद्वान् आङ्गल के नहीं, हम विज्ञ हिन्दी के नहीं!
हम में न कोई 'गुप्त'-से 'हरिऔध'-से हैं दीखते!
दीखें कहाँ से! बालपन से हाट करना सीखते!! ॥ १६३ ॥

लिक्खाड़ छोरे हो रहे जिनको न कुछ भी ज्ञान है;
अपवाद, खण्डन रात दिन करना जिन्हों का ध्यान है।
यदि भाग्य से विद्वान कुछ हरिनाम को पा जायँगे;
वे साम्प्रदायिक द्वेष-मत्सर में पगे हा पायँगे! ॥ १६४ ॥

हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा आज होने जा रही;
इसमें न है साहित्य जिसका, जाति वह खल खा रही।
यह काल प्राकृत, देवभाषा के लिये अनुदार है;
हिन्दी न आती हो जिसे, जीवन उसी का भार है॥ १६५॥

पत्रकार

लेखन-कला कुछ आगई, कुछ युक्ति देनी आगई;
प्रारम्भ करने पत्र की अभिलाष मन में आ गई।
संवाद झूठे दे रहे—ये विष-वमन हैं कर रहे;
ये पतन की पाताल में जड़ और दृढ़तर कर रहे!!॥ १६६

ये व्यक्तिगत आक्षेप करने से नहीं है चूकते;
टुकड़ा न कुछ मिल जाय तो ये श्वानवत हैं भूँकते।
छींटे उड़ाना ही रहा अब प्राय इनका काम रे!
झूठी प्रशंसा कर सकें पा जायँ यदि कुछ दाम रे!॥ १६७॥

इनको न जात्युद्धार पर कुछ लेख है लिखना कहीं!
इनका न विज्ञापन-कला बिन काम रे! चलता कहीं।
अपवाद, खण्डन छाप देंगे भग्न करके शान्ति को;
इनको नमन शत बार है, है नमन इनकी क्रान्ति को!!॥ १६८॥

उपदेशक व नेता

आख्यायिका कुछ आगई, कुछ याद जीवन हो गये,
कुछ आपके कुछ दूसरों के ज्ञात अनुभव हो गये,
कुछ सुक्तियों का युक्तिपूर्वक बोलना भी आ गया;
व्याख्यान-दाता हो गये, मुँह फाड़ना जब आ गया॥ १६९॥

चाहे व्यसन के भक्त हैं, पर-नारि में अनुरक्त हैं;
उपदेश करते वक्त तो ये हाय ! पूरे भक्त हैं।
प्रतिकार, मत्सर, द्वेष की जलती उरों में आग है;
वे जाति हित क्या कर सकें जिनके बदन में दाग है !! ॥ १७० ॥

ऐसे अकिंचन जाति का नेतृत्व नेता कर रहे !
हर युक्ति से, हर भाँति से ये कोप अपना भर रहे !
इनके अखाड़े भीम-सैनी भूरि संख्यक लग रहे !
ये तो सहोदर पर चलाने वार अवसर तक रहे !!! ॥ १७१ ॥

विद्वान इन उपदेशकों में एक मिलता है नहीं;
ये सब अधूरे, मूर्ख हैं, इनमें न पंडित है कहीं।
आचार, शिष्टाचार की तो बात है री ! तीसरी;
है श्वान हरदम भूँकता, पर पूँछ कब सीधी करी ॥ १७२ ॥

उपदेश करने का अहो ! लहजा जरा तुम देख लो;
गर्दभ-गले का फाड़ना, कपि-कूदना तुम लेख लो।
भू-कम्प आसन कर रहा, घन गर्जना ये कर रहे;
जन कर्ण-भेदी तालियों के गड़गड़ाहट कर रहे ॥ १७३ ॥

शोले उगलते स्वाँस हैं, मुँह से निकलती आग है;
चिंगारियाँ हैं आंख में, ज्वालामुखी-सा राग है।
तन से पसीना ढल रहा, तन का न इनको भान है;
घटे खिसकते जा रहे, जिनका न कुछ भी ध्यान है ॥ १७४ ॥
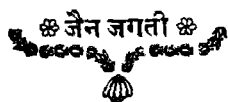
अभिप्राय मेरा यह नहीं—ऐसा न होना चाहिए;
व्याख्यानदाता बस प्रथम आदर्श होना चाहिए।
अभिव्यक्त करने की कला चाहे भले भरपूर हो;
वह क्या करेगा हित किसी का, त्याग जिससे दूर हो ॥ १७५ ॥

संगीतज्ञ

संगीत ज्ञाता आज गायक रंडियों-से रह गये !
गायन सभी हा ! ईश के—गायन मदन के बन गये !
सुनकर उन्हें अब भावना विभु-भक्ति की जगती नहीं !
कामाग्नि उठती भड़क है, मन-आग हा ! बुझती नहीं !!! ॥ १७६ ॥

गायक रिझाने ईश को अब गान हैं गाते नहीं !
ये भक्ति-भावों को जगाने गान हा ! गाते नहीं !
श्रीमन्त इनके ईश हैं ! उनको रिझाना है इन्हें !
दुर्वासना मनमत्थ को उनकी जगाना है इन्हें !!! ॥ १७७ ॥

संगीत अब बाजारु है, हा ! शक्ति हो तो क्रय करो !
हे गायको ! तुम देख ग्राहक गान नित सुन्दर करो !
संगीत अब हा ! रह गये सामान पोषण के अहो !
कविता कवीश्वर कर रहे अनुकूल ग्राहक के अहो !! ॥ १७८ ॥

मृत को जिलाने की अहो ! संगीत में जो शक्ति थी;
हा ! गायकों के कण्ठ से जो फूट पड़ती भक्ति थी;
वह फेर में पड़ पेट के हा ! गायकों के पच गई !
महफिल सजाने की हमारी चीज अब वह बन गई !!! ॥ १७९ ॥

साहित्य-प्रेम

साहित्यिकों का भाव तो हा ! क्यों भला होने लगा;
दो एक हो उनसे हमारा अर्थ क्या सरने लगा !
वे भी अगर होते कहीं शशि, सूर तो संतोष था !
जिनवर्ग कोई काल में हा ! एक कोविद-कोष था !!! ॥ १८० ॥

साहित्यका आनन्द हमको हाट में ही रह गया !
हा ! नव सृजन साहित्य का अब बाट में ही रह गया !
विद्वान कोई हाट पर यदि भाग्य से आ जायगा;
दुत्कार के वह साथ में दो बाट मुँह पर खायगा !!! ॥१८१॥

ऐसी निरक्षर जाति में विद्वान् फिर कैसे बढ़ें !
साहित्य-दुर्गम-शृङ्ग पर हा जाति यह कैसे चढ़े !
लिखना हमें निज नाम भी पूरा अहो ! आता नहीं !
साहित्य से फिर प्रेम करना किस तरह आता कहीं ? ॥१८२॥

साहित्य जीवन-गीत है; साहित्य जीवन-प्राण है,
साहित्य युग का चित्र है, साहित्य युग का त्राण है;
साहित्य ही सर्वस्व है, साहित्य सहचर इष्ट है;
साहित्य जिसका है नहीं, जीवन उसीका क्लिष्ट है ॥ १८३ ॥

साहित्य जैसी वस्तु पर जिसकी उपेक्षा दृष्टि हो;
ऐसा लगे—उस पर हुई अब काल की शुभ दृष्टि हो।
साहित्य जैसी चीज का भी क्या अनादर योग्य है ?
हे बन्धुओ ! अब क्या कहूँ मिलता न अक्षर योग्य है !!! ॥१८४॥

साहित्य

अब आधुनिक साहित्य पर भी ध्यान देना चाहिए;
साहित्य युग का चित्र है—आनयन लखना चाहिए।
साहित्य-सरवर था कभी शुचि पद्म भावों से भरा;
हा! आज वह अश्लील है अपवित्र भावों से भरा॥ १८५॥

युग, जाति का साहित्य ही बस एक सच्चा चित्र है;
जिसका न हो साहित्य वह होती अकिंचन मित्र! है।
साहित्य जीवन-मंत्र है, साहित्य जीवन-प्राण है;
साहित्य ही सर्वस्व है, उत्थान की सोपान है॥ १८६॥

साहित्य में नव वृद्धि तो होती न कुछ भी दीखती;
कुल भ्रष्ट करने की उसे कोशीष अविरल दीखती।
कुछ इधर से, कुछ उधर से हा! अपचयन हैं कर रहे—
विद्वान, हा! निज नाम से पुस्तक प्रकाशित कर रहे॥१८७॥

साहित्य मौलिक आज का कौतुक, कबड्डी खेल है;
निर्बोध बच्चों का तथा यह धर-पकड़ का खेल है।
नहिं शब्द-वैभव श्लिष्ट है, नहिं भाव रोचक हैं यहाँ;
रस, अर्थ का पत्ता कहीं मिलता न हमको है यहाँ॥ १८८॥

मस्तिष्क होते थे हमारे भक्ति-भावों से भरे!
चारित्र, दर्शन, ज्ञान के निर्भर सदा जिनसे झरे!
त्यागी, विरागी, धर्म-ध्वज जिनके सदा आदर्श थे!
आध्यात्म-तृष्णा के लिये रस-स्रोत वे उत्कर्ष थे!!!॥ १८९॥

शृङ्गार के निर्झर प्रवाहित आज पर वे कर रहे !
संसार में सौन्दर्य्य का अश्लील चित्रण कर रहे !
इन मस्तकों को देख कर हमको निराशा हो रही !
ज्ञानेन्द्रियों का कोप होगा रत्न-भृत क्या भी ! नहीं ? ॥ १६० ॥

हा ! भूरि संख्यक ग्रंथ, पुस्तक रात दिन हैं छप रहे;
इनके लिये ही आज कितने छापेखाने चल रहे।
व्यय द्रव्य अगणित हो रहा, पर लाभ कौड़ी का नहीं !
मैले, अरोचक भाव है ! है ग्रन्थ जोड़ी का नहीं ! ॥ १६१ ॥

हो चोर, लम्पट, धृष्ट, वंचक, मूर्ख, खर, मार्गोन्मुखी,
कामी, कुचाली, द्रोह-प्रिय अरु सर्वथा धर्मोन्मुखी।
पर इन नरों के आज जीवन हैं प्रकाशित हो रहे !
साहित्य में हा ! हा ! अपावन ग्रंथ संमिल हो रहे !! ॥१६२॥

आख्यायिकोपन्यास हम भी अन्य सम हैं रच रहे;
लिखना न आता है हमें, प्रतियोग पर हम कर रहे !
यों दुपित संस्कृति कर रहे फैला दुपित वातावरण !
हम काम-पूजन कर रहे रति-भाव का कार अवतरण ॥ १६३ ॥

त्यक्ता, कुचाली, सुन्दरी, रति-रूपसी, मन-मोहिनी,
प्रिय-प्रेयसी, पुर-भामिनि, अभिसारिका, जन-सोहिनी !
कवि, लेखकों की ये सभी उल्लेखनीया नायका !
फिर क्यों न पढ़ कृति आपकी पथ-भ्रष्ट हो कवि शायका !! ॥१६४॥

आख्यायिकोपन्यास अब साहित्य के मुख-अंश हैं !
निःकृष्ट नाटक, रास, चंपू हाय ! अब सवांश है !
उल्लेख कर रति-रूप का कवि काम-रस बतला रहे !
कामी जनों के काम को हा ! रात-दिन भड़का रहे !!! ॥१६५॥

हा ! आधुनिक साहित्य में नहिं शील-वर्णन पायगा;
कुल्टा, कुचाली नारि का आख्यान केवल पायगा !
पढ़ कर जिन्हें हम गिर रहे, हैं गिर रही सुकुमारियाँ।
हा ! जल-पवन जैसा मिले, वैसी खिलेंगी क्यारियाँ ॥ १६६ ॥

आता न अक्षर एक है, तुक-बंध करना जानते;
ग्रामीण रचना का सृजन साहित्य-रचना मानते।
निःकृष्ट ऐसे काव्य भी हा ! काव्य माने जा रहे !
विद्वान कोई भी नहीं सच्चे दृगों में आ रहे ! ॥ १६७ ॥

दौरात्म्य कवि का पात्र है, कथनीय भ्रष्टाचार है !
स्वच्छंदता, दुर्वासना, कुविचार कविता-सार है !
कवि स्वाद अमृत के चखा कर पात्र विष से भर रहे !
कलि काल का आदेश-पालन तो नहीं कवि कर रहे ? ॥१६८॥

अब आत्म-बल, सुविचार पर लेखक न लिखते लेख हैं;
आदर्शता, दृढ़ धैर्य्य के होते नहीं उल्लेख हैं।
प्राचीन आगम, शास्त्र तो इनके लिये नाचीज हैं;
प्रक्षिप्त नभ में पाठको ! होता न पुष्पित बीज है ॥ १६९ ॥

प्रतिकार संकट का नहीं करना सिखाते हैं कहीं;
जब तक न हो पूरा पतन विश्राम इनको है नहीं !
कवि लेखको ! तुम धन्य हो, तुम कर्म अच्छा कर रहे !
अवगुण सिखा कर फिर हमें गरते को तल—च्युत रहे ॥२००॥

आदर्श नर अरु नारि के जीवन लिखे जाते नहीं !
आख्यायिकोपन्यास के ये अब विषय होते नहीं !
नहिं शौर्य के, नहिं धर्म के हमको पढ़ाते पाठ हैं !
हा ! आधुनिक साहित्य के तो और ही कुछ ठाट हैं !! ॥२०१॥

शुचि दान, संयम, शील के, तप, ज्ञान, ब्रह्माचार के—
उल्लेख लेखक क्यों करें अब आज धर्माचार के !
कुल्टा, कुचाली-सा मजा इनमें न है इनको कहीं !
आनन्द जो रति-रास में वैराग्य में इनको नहीं !! ॥ २०२ ॥

सभायें

इतनी सभायें हैं हमारी, और की जितनी नहीं;
ज्यों थे कलह बढ़ते रहे, ये त्यों सदा खुलती रहीं !
लड़ना, जहाँ भिड़ना पड़े, अनिवार्य ये होती वहीं;
करने सुधारा जाति का खोली न हैं जाती कहीं ! ॥ २०३ ॥

इतिहास लेकर आप कोई भी सभा का देख लें;
उनके किये में जो यदि अणु मात्र हित भी लेख लें—
'मैं हार निज जीवन गया;' मुण्डन हमारा हो गया !
हा ! गाँठ का तो धन गया, घर में बखेड़ा हो गया !! ॥ २०४ ॥
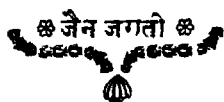
ज्यों अधमरा तलवार का फिर सह न सकता वार है;
ठोकर लगे को फिर लगे धक्का—पतन दुर्वार है।
जितनी सभाएँ खुल रहीं—प्रतिशोध-गह्वर-गड्ढ हैं;
हम नेत्रहीनों के लिये ये हाय ! गहरे खड्ड हैं ॥ २०५ ॥

करना सुधारा है नहीं, इनके दुधारा हाथ में !
करने जिसे हो एक के दो, हैं उसी के साथ में !
प्रख्यात होना है जिसे, अथवा जिसे धन चाहिए;
मिल जायँगी सुविधा सभी उसको यहाँ जो चाहिए ॥ २०६ ॥

मण्डल

अब मण्डलों का काम तो भोजन कराना रह गया;
कर्तव्य, सेवा, धर्म सब जूते उठाना रह गया।
'सब जाति में हो संगठन' ये ध्येय इनके हैं कहाँ !
है ब्रह्मव्रत जिनमें नहीं, उनसे भला आहित है कहाँ ॥ २०७ ॥

स्त्रीजाति व उसकी दुर्दशा

हे मातृ ! भगिनी ! अम्बिके ! जगदम्बिके ! विश्वेश्वरी !
होती न जानी थी अहो ! यह अवदशा मातेश्वरी !
चेरी कहो क्यों हो गई ? तुम अब रमण की चीज हो;
इस अवदशा की आप तुम मेरी समझ में बीज हो ॥ २०८ ॥

तुम में न वे पति-भाव हैं, तुममें न स्त्री के कर्म हैं !
मूर्खा सदा रहना तुम्हारा हो गया अब धर्म है !
गृह-नायिका, गृह-देवियाँ होने न जैसी आज हो !
कुल-चण्डिनी, कुल-खण्डिनी, कुल-भञ्जिका तुम आज हो !! ॥२०९॥

हा ! आज तुमसे वंश की शोभा न बढ़ती है कहीं !
नर-रत्न तुम अब दे सको—वह शक्ति तुम में है नहीं !
बंध्या सभी तुम हो गई—यह बात भी जँचती नहीं;
संतान की उत्पत्ति में लज्जित करो उरगी—सही ॥ २१० ॥

शीला, सुशीला, सुन्दरा मनकी न अब तुम रह गई !
हा ! साध्वियें तो मर गईं, तुम कर्कशायें रह गई !
उजड़े भवन को आज तुम प्रासाद कर सकती नहीं !
टूटे हुए तुम प्रेम-बंधन जोड़ फिर सकती नहीं !! ॥ २११ ॥

लक्ष्मी कहाने योग्य री ! अब हो नहीं तुम रह गई !
सम्पन्न करने की तुम्हारी शक्तियें सब गल गई !
विष-फूट के बोना तुम्हारा बीज का अब काम है !
वामा तुम्हें जग कह रहा—वामा उचित ही नाम है ॥ २१२ ॥

निर्बुद्धिपन अरु नारि-हट नारी ! तुम्हारा पेख्य है !
नव वेष भक्तिन-सा तुम्हारा आज नारी ! लेख्य है !
स्त्रीदक्षता, चातुर्य्यता नारी ! न तुममें दीखती !
सब भाँति से री ! सच कहूँ—फूहड़ हमें हो दीखती !! ॥२१३॥

तुम शील-भूषण भूलकर हा ! नेह भूषण से करो !
प्राणेश अपना छोड़ कर तुम स्नेह दूजे से करो !
धिक्कार तुमको आज है, तुम डूब पानी में मरो !
है जल रही घर में अनल, तुम क्यों न जल उसमें मरो ॥२१४॥

संतान-पोषण भी तुम्हें करना तनिक आता नहीं !
जब मातृ तुमको क्यों कहें, तुम शत्रु हो माता नहीं !
हे नाथ ! माता इस तरह मातृत्व यदि खोने लगें;
सन्तान बोलो किस तरह गुणवान फिर होने लगें ॥ २१५ ॥

नर का नारी पर अत्याचार

नर ! नारियों के इस पतन के आप जिम्मेवार हो;
तुम कोमलांगी नारियों पर हाय ! पर्वत-भार हो।
अधिकार इन पर कर लिया, हा ! स्वत्व इनका हर लिया !
रसचार करने के लिये उद्यत इन्हें फिर कर लिया !! ॥ २१६ ॥

रमणी कहीं हैं महल की, पर्दा-नशीना हैं कहीं,
हैं घालती गोमय कहीं, व्यंजन बनाती हैं कहीं;
व्ययशील इनका गेह में इस भाँति जीवन हो रहा !
मल-मूत्र धोना रात दिन कर्तव्य इनका हो रहा !! ॥ २१७ ॥

कहला रहीं अर्धाङ्गिनी, पर हा ! न पद सम मान है !
दुत्कार; डण्डे मारना तो हा ! इन्हें वरदान है !
कुल्टा, कुचाली, राँड, रण्डी नाम इनके पड़ रहे !
सम भाग था जिनका कभी—यों मान उनके बढ़ रहे !!! ॥२१८॥

श्रुति, नाक इनका काटना ! इनको छड़ी से दागना !
देना न भोजन मास भर ! अनघोर घर से काढ़ना !
माता-पिता को बोलना अपशब्द इनके हाय ! रे !
आसान है ये काम सब ! भारत न अब वह हाय ! रे !! ॥२१९॥

व्यभिचार जैसे कर्म भी होते हमारे क्षम्य हैं !
अपराध अबला के सरल होते नहीं पर क्षम्य हैं !
सम्मान नारी जाति के जिस जाति में होते नहीं !
उस जाति के हा ! शुभ दिवस आये न, आवेंगे नहीं ॥ २२० ॥

विदुषी बनाने के लिये नर यत्न तो करते नहीं;
इनके पतन में हाय ! फिर दोषी मनुज कैसे नहीं !
तुम हो सुता के जन्म पर दुर्भाग्य अपना मानते !
तुम पितृ होकर सुत, सुता में भेद कैसे जानते ? ॥ २२१ ॥

व्यापार

कौशल-कला व्यापार को अब वे न बातें हाय ! हैं !
मस्तिष्क में हम क्या करें उठती न चालें हाय ! हैं !
हा ! देश निर्धन हो रहा, हा ! जाति निर्धन हो रही !
सन्तान पाकर हाय ! हम-सी मातृ-भूमी रो रही ! ॥ २२२ ॥

अब तो न जगडूशाह है, अब तो न जिनदत्त सेठ है !
मक्कार शाहूकार हैं, घर में न बाहर पेठ हैं !
व्यापार जिनका था कभी संसार-भर फैला हुआ !
व्यापार उनका आज हा ! व्यापार गलियों का हुआ !! ॥२२३॥

व्यापार मुक्ता, रत्न का अब स्वप्न की-सी बात है !
चूना-कली में भी नहीं जमती हमारी बात है !
बदला जमाना हाय ! या बदले हुये हम आप हैं !
हम पर भयंकर काल की गहरी लगी मुख-छाप है !! ॥ २२४ ॥

व्यापार में थे अग्रणी, हा ! आज पीछे भी नहीं !
थे विश्व-पोषक एक दिन, अब पेट की पटती नहीं !
व्यापार कौड़ी का हुआ, कौड़ी बने हम साथ में !
अब तेल मिर्चें रह गईं, तकड़ी हमारे हाथ में !! ॥ २२५ ॥

था सत्यमय व्यापार, शाहूकार हम थे एक दिन !
अब हा ! हमारा रह गया है भूठ में व्यापार—घिन !
हमको हमारे धर्म से भी भूठ प्रियतर हो गया !
अब तो कहें क्या, भूठ तो हा ! स्नायु तन का हो गया !! ॥२२६॥

कर भूठ-सञ्चा हाय ! हम निज बन्धुओं को लूटते।
उनके रसीले रक्त-धन को जोंक बन कर चूंसते !
डाकू, लुटेरे, चोर अब हमको सभी कहने लगे !
व्यापार के सम्बन्ध हमसे बन्ध सब करने लगे ॥ २२७ ॥

हम आज भी श्रीमन्त हैं, व्यापार भारी कर सकें;
लाकर विदेशों से तथा धन राशि घर को भर सकें।
जिस चीज की सर्वत्र हो अति माँग—वह पैदा करें;
कल कारखाने खोल दें, पक्का सदा धंधा करें ॥ २२८ ॥

मिलती हमें जब दाल रोटी, कौन यह झंझट करें !
है कौन सी हममें पड़ी ऐसी विपद्—खटपट करें !
सस्ता विदेशी बन्धु को हम माल कच्चा बेचते !
फिर एक के वे पाँचसौ लेकर हमें हैं भेजते !! ॥ २२९ ॥

द्यू, फाटका, सट्टा हमारा मुख्य धंधा रह गया !
शायद जरा है आगई, मस्तिष्क जिससे फिर गया !
जापान, जर्मन, फ्रांस जिनमें अन्न तक भी था नहीं;
सम्पन्न वे अब हो गये, अब शील भारत हा ! नहीं ॥ २३० ॥

सर्वस्व घर का जा रहा, हा ! क्यों न हम हैं देखते !
क्यों हम विदेशी माल में मिलता नफा है देखते !
सामान सारा भर गया घर में विदेशी हाय ! क्यों !
घर से स्वदेशी माल को हमने निकाला हाय ! क्यों ? ॥२३१॥

हे नाथ ! ऐसा लक्ष्मि का कैसा विचित्र स्वभाव है ?
जो देशके प्रति बढ़ रहे कुछ भी नहीं सद्भाव है !
जब तक विदेशी माल का आना न रोका जायगा;
यह उत्तरोत्तर दीन भारतवर्ष होता जायगा !! ॥ २३२ ॥

आत्म-बल व शक्ति

जिस जाति का, जिस धर्म का जग में न कुछ सम्मान है;
वह जाति जी सकती नहीं, जिसका न कुछ भी मान है।
निज जाति का, निज देश का जिसके न उर में मान है;
संतान ऐसी से कभी हा ! बलवती आशा न है ॥ २३३ ॥

हे जैनियो ! तुम सत्य ही बदनाम होने योग्य हो;
संसार के जिन्दा जनों में तुम न रहने योग्य हो।
हर देश के, हर जाति के हैं चरण आगे पड़ रहे;
हो क्या गया ऐसा तुम्हें जो पद तुम्हारे अड़ रहे ? ॥ २३४ ॥

मुझको तुम्हारी इन नसों में बल नहीं है दीखता;
क्या अंत-घड़ियाँ आ गई हैं !—दम निकलता दीखता !
इस मरण से होगी नहीं चिन्ता मुझे किंचित कहीं;
क्या लाभ है उस देह से, है प्राण उसमें जब नहीं ? ॥ २३५ ॥

पर पूर्वजों के नाम पर कालिख कहो क्यों पोत दी ?
कौस्तुभ-मणी को हाय ! तुमने पंक में क्यों छोड़ दी ?
जीना जिसे—मरना उसे, मरना जिसे—जीना उसे;
अवध्वस्त होकर जो मरे, दुर्मौत है मरना उसे ॥ २३६ ॥

कायर तुम्हें बक्काल, बणिया आज जग है कह रहा !
कुछ बोलने के भी लिये तो तल नहीं है मिल रहा !
तुम में न अब वह तेज है, नहिं शक्ति है असिधार में !
नारी सतायी जा रही है आपकी गृहद्वार में !! ॥ २३७ ॥

नहिं देश में, नहिं राज्य में कुछ पूछ भी है आपकी !
हा ! जिधर देखो मिल रही लानत तुम्हें अनमाप की !
तुम चोर गुण्डों के लिये हा ! आज घर की चीज हो !
वे घुस घरों में मौज करते–मौज की तुम चीज हो ! ॥ २३८ ॥

तुमको अहिंसा-तत्त्व ने कायर किया यह झूठ है;
इसको क्षमा कहना तुम्हारा भी हलाहल झूठ है।
इतिहास तुमको पूर्वजों का क्या नहीं कुछ याद है ?
बस आतताई पर चलाना वार—जिन्दाबाद है ॥ २३९ ॥

जिसमें न है कुछ आत्म-बल, वह आत्म जाग्रत है नहीं;
बिन आत्म-बल के बन्धुओ! कुछ काम होता है नहीं।
बस जाग कर के बन्धुओ! तुम प्रथम घर-शोधन करो;
तुम खोद कर जड़ दोष की, दुख जाति के मोचन करो ॥२४०॥

हे बन्धुओ! बस आज से ही कमर कसना चाहिए;
अब हो चुका है बहुत ही, आगे न सहना चाहिये।
मिलकर सभी भाई परस्पर आज अग्रिम आइये;
हैं आप भी कुछ चीज जग में–सिद्ध कर दिखलाइये ॥ २४१ ॥

राष्ट्रीयता

जिसको न अपने देश से कुछ प्रेम है, अनुराग है;
वह व्यक्ति हो या जाति हो, उसका बड़ा दुर्भाग है।
जिसने न जीवन में कभी निज देश-हित सोचा कहीं;
उस जाति की, उस व्यक्ति की संसार में गणना नहीं ॥२४२॥

हममें न श्रद्धा, भक्ति हैं, नहिं देश-हित अनुराग है!
अतिरिक्त हमको स्वार्थ के दूजा न प्रियतर राग है!
स्वातंत्र्य हित ये देश भाई यातनाएँ सह रहे!
कितने हमारे में कहो निज देश हित तन दह रहे? ॥ २४३ ॥

धन की हमारे पास में अब भी कमी कोई नहीं;
पर राष्ट्र के कल्याण में व्यय हो रहा कौड़ी नहीं!
'अविचारणीया क्षति हुई स्वातंत्र्य की इस क्रान्ति से'—
हमने भला यह तो कहा नारी सुलभ मति-भ्रान्ति से !!!॥२४४॥
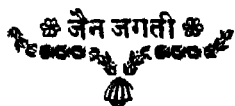
अब वीर भामाशाह-सा हा ! देश-सेवी है नहीं;
बदला हमारा रक्त है या रक्त हम में है नहीं !
हमको हमारे स्वार्थ का चिन्तन प्रथम रहता सदा;
हम देखते हा ! क्यों नहीं आई हुई घर आपदा !!! ॥ २४५ ॥

हिन्दू हमें कहना न, हम हिन्दू भला कब थे हुये !
होकर निवासी हिन्द के हैं हिंद से बदले हुये !
जिनधर्म तुम हो मानते, इस हेतु भाई ! जैन हो;
हिन्दू तुम्हारी जाति है, तुम हिन्दुओं में जैन हो ॥ २४६ ॥

राष्ट्रीय भावों से भरा जिस जाति का मन है नहीं;
उस जाति का तो स्वप्न में उद्धार सम्भव है नहीं ।
जो देशवासी बन्धुओं के रुदन पर रोया नहीं;
उसके हृदय ने सच कहूँ मानवपना पाया नहीं ॥ २४७ ॥

कौलिण्यता

कौलिण्य कुलपति आपका पर्दानशी में रह गया !
गिरि पाप भी इसके सहारे ओट ही में रह गया !
अब मार कर हा ! शेखियें तुम रख रहे कुछ मान हो !
चूहे उदर में कूदते, पर मूंछ पर तो धान हो ! ॥ २४८ ॥

कहदें तुम्हें 'वणिया' 'महाजन', रण वहीं मच जायगा;
उर 'शाहजी साहेब' पर दो बांस पर उठ जायगा ।
महता, मुसद्दी नाम अब सब गोत्रवत हैं हो गये !
पूर्वज मुसद्दी हो गये, पर तुम फिसड्डी हो गये ! ॥ २४९ ॥

व्यापार में व्यवसाय में संकोच है होता तुम्हें !
भूखे उदर तुम सो सको, पर हाट में लज्जा तुम्हें !
हा ! मद्य-सेवन चिह्न तो कौलिण्य का तुम मानते !—
कौलिण्यता-मदिरा-रमण कुल के शरार्थी जानते ! ॥ २५० ॥

स्वास्थ्य

अगणित हमारे रोग हैं, हा ! एक हो तो बात हो !
हे नाथ ! काली रात है, कैसे दिवस का प्रात हो !
मुझको यहाँ पर मानसिक संताप गिनने हैं नहीं;
अवकाश गिनने का कहाँ ! जब स्वास्थ्य अच्छा है नहीं॥२५१॥

ऐसा न कोई रोग है, जिसका न हममें भाव हो !
वह रोग ही कैसा भला जिसका न हम पर दाँव हो !
संख्या हमारी लक्ष तेरह—रोग तेरह कोटि हैं !
सब बाल शिर के उड़ गये—मिलती न शिर पर चोटि है ॥२५२॥

यदि काम कोई आ पड़े, दो कोश जा सकते नहीं !
यदि बोझ कुछ लेना पड़े, दो कदम चल सकते नहीं !
कुछ मसनदों के हैं सहारे, राख में कुछ लोटते !
हैं लोटते इस भाँति—क्या गर्दभ विचारे लोटते ॥ २५३ ॥

हमको कभी निज स्वास्थ्य का होता न कुछ भी ध्यान है !
क्या रोग तन को हो गया—कोई न इसका भान है !
विश्वास तुमको हो नहीं, मृत-तालिका तुम देखलो !
हा ! ब्रह्मव्रत जिसमें न हो, उसका मरण यों लेखलो ! ॥२५४॥

जब ब्रह्मव्रत हममें नहीं, व्यायाम भी करते नहीं !
फिर रोग, तस्कर, दुष्ट के क्यों दाँव चल सकते नहीं ?
हमसे किसी को भय नहीं, हमको डराते हैं सभी !
धन-माल के अतिरिक्त रामा भी चुराते हैं कभी !!! ॥ २५५ ॥

ऐसा पतन हे नाथ ! करना योग्य तुमको था नहीं !
हर भाँति से यों निःस्त्र करना उचित हमको था नहीं !
होगा कहाँ पर छोर ?—अब तो हे विभो ! बतलाइये ;
अब तो अबल हैं भाँति सब हम !—आश तो दिखलाइये !!॥२५६॥

धर्म-निष्ठा

ये हाय ! कैसे जैन हैं, घट में न है इनके दया !
सिद्धान्त इनके हैं दयामय, हाय ! फिर भी बे हया !
बाहर सदाशय भाव हैं, बाहर दयामय भाव हैं ;
अवसर पड़े तुम देखना भीतर कि कैसे दाँव हैं ! ॥२५७ ॥

इन जैनियों ने झूठ में भी रस कला का भर दिया !
मीठे वचन से कर उसे मिश्रित अधिक रुचिकर किया !
व्यापार, कार्याचार, धर्माचार इनके झूठ हैं !
बाहर छलकता प्रेम है, भीतर हलाहल कूट है ! ॥ २५८ ॥

मार्जार-सा इनका तपोबल पर्व पर ही लेख्य है ;
उपवास, पौषध, सामयिक उपतप व्रताखिल पेख्य है !
निन्दा, कलह, अपवाद के व्यवसाय खुलते हैं तभी !
एकत्र होकर क्या यहाँ ये काम हैं करते सभी ? ॥ २५९ ॥

ये हाय ! जितने शाह हैं, उतने समझिये चोर हैं !
'इनसे बचो, इनसे बचो' अब मच रहे ये शोर हैं !
इन मारवाड़ी बन्धुओं के काम सब विकराल हैं !
इनको पिलावे दुग्ध जो घर में उसी के व्याल हैं ॥ २६० ॥

वैसे हमारे बन्धु ये जल छान के ही पीयँगे !
पर दीन का धन-रक्त ये हा ! अनछना ही पीयँगे !
व्यापार माया-जाल है इनका, तनिक तुम लेख लो !
उभरे न पीढ़ी सात वे, जो फँस गये तुम पेख लो !! ॥ २६१ ॥

हा ! जैनियों की स्वार्थ-निष्ठा धर्म-निष्ठा हो गई !
पड़ धर्म-निष्ठा पेट में हा ! हा ! सदा को खो गई !
भीषण पतन इस भाँति का हा ! आज तक किसका हुआ !
हे वीर के अनुयायियो ! देखो तुम्हें यह क्या हुआ ? ॥ २६२ ॥

जातीय विडम्बना

इन जाति-भेदों ने हमारा वर्ण विकृत कर दिया !
आन्तर प्रभेदों ने तथा अवशिष्ट पूरा कर दिया !
क्या-क्या न जाने बन गई ये जातियें इस काल में !
कैसा मनोरम देश था, थे आर्य हम जिस काल में ! ॥ २६३ ॥

करने व्यवस्थित देश को ये वर्ण स्थापित थे किये ;
प्रति वर्ण के कर्तव्य भी निश्चित सभी विध थे किये ।
थे विप्र विद्यादातृ अरु रक्षक सभी क्षत्री हुये ;
पोषक बने हम वैश्य गण, अन्त्यज तथा सेवी हुये ॥ २६४ ॥

पड़ कर समय के फेर में ये वर्ण पैत्रिक धन हुये;
तब वर्ण वर्णान्तर हुये, ये जाति जात्यन्तर हुये।
इस भाँति से वर वर्ण के लाखों विभाजन हो गये!
जितने पिता हम में हुये उपगोत्र उतने हो गये! ॥ २६५ ॥

हर एक मत के नाम पर हैं; जाति-दल कितने हुये?
अब एक नरके देखिये उपगोत्र कुल इतने हुये।
वह आर्य, हिन्दू, जैन हैं, श्वेताम्बरी, श्रीमाल हैं;
गच्छानुगत, वंशानुगत, गोत्रानुगत के जाल हैं॥ २६६ ॥

कुल जैन तेरह लक्ष होंगे, अधिक होने के नहीं;
दस वीस सहस्र गोत्र होंगे—अल्प होने के नहीं।
इस अल्प संख्यक जाति का ऐसा भयावह हाल है!
हा! एक वह भी काल था अरु एक यह भी काल है!॥२६७॥

जात्यन्तरिक फिर रोग बढ़कर साम्प्रदायिक बन गये;
पारस्परिक व्यवहार, प्रेमाचार तक भी रुक गये।
इन दिग्पटों श्वेताम्बरों में अब नहीं होते प्रणय;
संकीर्ण दिन दिन हो रहे क्या शून्य में होने विलय? ॥२६८॥

कितने असर हम पर भयंकर आज इनके घट रहे;
होकर सहोदर हाय! सब हम रण परस्पर कर रहे!
अब वह न हममें प्रेम है, सौहार्द है, वात्सल्य है;
अब प्राणनाशक फूट का चहुँ ओर हा! प्राबल्य है!! ॥२६९॥

हाट-माला

जी ! देखिये ये शाह हैं, ये स्नान है करते नहीं;
इनको बदलने वस्त्र भी अवकाश है मिलते नहीं।
है हाट इनकी शूद्र-सी, दुर्गन्धयुत सामान हैं;
पर शूद्र तो ये है नहीं, ये शाह जी श्रीमान हैं ॥२७०॥

जीरा, मसाला, तेल इनका तोलना ही काम है;
इन शाह जी ने तोलने में ही कमाया नाम है।
जितने तरल, रस, पाक हैं—मिश्रण बिना नहिं एक है;
दूना, तिगूना कर चुके, पर भाव फिर भी एक है ॥२७१॥

व्यापार में बढ़ती इधर ये कुछ दिनों से कर रहे;
दिन रात इनके ग्राहकों से हाट घर हैं भर रहे।
सर्वत्र कन्या-माल की है माँग बढ़ती जा रही;
कन्या-कुमारी मोहरों से आज तोली जा रहीं !!! ॥२७२॥

पुखराज, मानिक, रत्न के व्यापार होते थे यहाँ !—
अब देख लो चूना कली के ढेर हैं बिकते यहाँ !
जीवादियुत धानादि के भण्डार भी मौजूद हैं !
दोगे न यदि तुम दाम, तो दो सैकड़े पर सूद है ॥२७३॥

जी ! यह बड़ा बाजार है—श्रीमान, शाहूकार हैं;
दिनरात सट्टा, फाटका ही आपका व्यापार है।
ये सब विदेशी माल के ऐजेन्ट, ठेकेदार हैं;
इस देश के इनके विदेशी नाथ ही आधार हैं !! ॥२७४॥

बाजार माणिक-कोष था हा ! शाह जी अरबेश थे !
अमरावती थी हाटशाला, शाह जी अमरेश थे !
मखमल, जरी खाशा स्वदेशी हाट के सामान थे !
भर कर स्वदेशी माल को जाते सदा जलयान थे ! ॥२७५॥

अब तो विदेशी माल के ये शाह जो मध्यस्थ हैं !
अपने स्वदेशी माल के रे ! शत्रु ये प्रथमस्थ हैं !
कैसी विदेशी माल से इनकी सजी सब हाट है !
घोषित दिवाले कर चुके, पर हाट में सब ठाट है ॥२७६॥

नेता हमारे देश के नारे लगाते ही रहें !
कारण विदेशी माल के वे जेल जाते ही रहें !
सहता रहे यह देश चाहे यातनाएँ नित कड़ी !
ये तोड़ने हा ! क्यों लगे प्यारी प्रिया सम सुख-घड़ी ॥२७७॥

ये हेम, चाँदी दे रहे, पाषाण लेकर हँस रहे !
नकली विदेशी माल से यों देश अपना भर रहे !
अपने हिताहित का न होता नाथ ! इनको ध्यान क्यों !
इनके उरों में देश पर अनुराग है जगता न क्यों !! ॥२७८॥

मेरे विभो ! इनको घृणा क्यों देश से यों होगई !
अथवा विपद के भाव से मत भ्रष्ट इनकी होगई !
तुम क्यों न चाहे जैन हो, पर देश यह है आपका !--
जिस भाँति से सम्पन्न हो यह, काम वह है आपका ॥२७९॥

बेकारी

कितने युवक, नर प्रौढ़ हा ! बेकार होकर फिर रहे !
हत् धैर्य्य होकर हाय ! क्या अपघात वे नहिं कर रहे !
उनकी अकिंचन प्रार्थनाएँ क्यों नहीं स्वीकार हैं ?
वे योग्य हैं हर भाँति से, फिर क्यों उन्हें धिक्कार है ? ॥२८०॥

भोजन मिला कल प्रात को--चौबीस घंटे हो गये !
दो मास पहिले भेट थे शिशु दो क्षुधा की हो गये !
है मूर्च्छिता माता पड़ी, नव जात शिशु मूर्च्छित पड़ा !
स्तम्भित खड़े पति पाश में, ज्यों हो कहीं पत्थर गड़ा ! ॥२८१॥

वह जाति जिसके नर, युवक बेकार हैं, क्षयशील है;
उस जाति के तन में पतन के बीज ही गतिशील हैं ।
यह आग ऐसी आग है, इस-सी न दूजी आग है;
यह जल उठी जिस भाग में, वह भस्म ही भूभाग है ॥ २८२ ॥

यह भी पतन के कारणों में एक कारण मुख्य है;
तुम जानते हो जाति की आत्मा युवकजन मुख्य है;
इनके पतन में पतन है, उत्थान में उत्थान है;
यह प्रौढ़ बल जिसमें नहीं, वह जाति भी निष्प्राण है ॥ २८३ ॥

हा ! बहुत कुछ अब भी हमारे पाश में अवशिष्ट है;
हम हैं, युवक है, काम हैं, धन भी प्रचुर उच्छिष्ट है !
इस हिंद के प्रत्येक जन को काम मिलना चाहिए;
यह आग कोई युक्ति से उपशाम करना चाहिए ॥ २८४ ॥
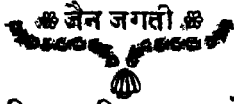
जिस जाति का यह ध्येय है, उसके न दुर्दिन आयँगे;
उसके विगत सुख के दिवस भी लौट कर फिर आयँगे,
जिस दिन हमारी जाति का सिद्धान्त यह बन जायगा;—
सोया हुआ यह देश भारतवर्ष फिर उठ जायगा ॥ २८५ ॥

अन्ध-परंपरा

अब भक्ति में भी गंध कुत्सित काम की बढ़ने लगी !
दुर्लभ जहाँ पर दर्श थे अब नारियाँ चढ़ने लगीं !
पथभ्रष्ट गुरुजन हो गये श्रद्धा न पर किंचित घटी !
पथभ्रष्ट अनुचर हो गये, अतएव है अब तक पटी ॥ २८६ ॥

हा ! पितृ, धर्माचार्य रे ! सब दोष-आकर हो गये !
मंदिर हमारे पूज्य भी हा ! मदन-मन्दिर हो गये;
जिस ओर देखो उधर ही सब भाव विकृत हो गए !
हत् धैर्य हा ! हत् ब्रह्म-व्रत, हत् धर्म हम हा ! हो गये ॥२८७॥

त्यागी बने जो छोड़ कर संसार, माया, मोह को !—
अपना रहे क्यों हाय ! वे फिर मान, ममता, कोह को !
माता, पिता, जाया, सुता, सुत, शिष्य, गुरु संशोध्य हैं;
बढ़ती हुई इनमें हमारी अंध ममता रोध्य है ॥ २८८ ॥

गृह-कलह

पति पत्नि से नहिं बोलता, पति से न भार्या बोलती !
सुत तात से नहिं बोलता, माता न सुत से बोलती !
श्वश्रू बहू लड़तीं परस्पर कुत्तियों-सी आज हैं !
भाभी ननद लड़तीं यहाँ हा ! धर्षिणी-सी आज हैं !! ॥२८९॥
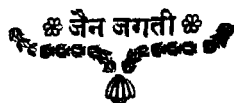
ऐसा पतित गार्हस्थ्य-जीवन आज विभुवर ! हो गया !
हा ! स्वर्ग-सा गार्हस्थ्य सुख कर अब तपन-सा हो गया !
अब पुत्र की निज तात में श्रद्धा न है, वह भक्ति है !
माता-पिता की सुत, सुता पर भी न वह अनुरक्ति है !॥२६०॥

घर में न जब हा ! प्रेम है, बाहर भला कैसे बने !
हे नाथ ! ये कंटक-सदन चिर सुख-सदन कैसे बने !
फैला दिया अपना कलह ने एक विध साम्राज्य है !
शुचि प्रेम, श्रद्धा, भक्ति का अब हा ! न वह सुर-राज्य है ॥२६१॥

फूट

छाया सघन तरु फूट की कच सघन हम पर छा गई !
पाताल में, ऐसा लगे जड़ हो सुधारस पा गई।
तम तोम में आलोक की आछन्न किरणें हो गईं !
ये मिल गए भू-व्योम ऐकाकार जगती हो गई ॥ २६२ ॥

इस फूट में वह जोर है, जो जोर निधि में है नहीं;
माता कहीं तो सुत कहीं, पत्ता पिता का है नहीं !
घर, राष्ट्र इसने आज तक कितने उजड़ हैं कर दिये !
इसको जहाँ अवसर मिला वृश्चिक वहीं हैं भर दिए ॥ २६३ ॥

ये बन्धुओ ! कलिराज के शस्त्रास्त्र के अभ्यास हैं !
तुमको हिताहित सोचने का पर न हा ! अवकाश है !
तुम संगठन के सार से मायाविनी को खोद दो;
जड़ फूट की तुम खोद कर जड़ प्रेम की तुम रोप दो ॥२६४॥

आतिथ्य-सेवा

आतिथ्य, सेवा-धर्म को तुमने न जाना आज तक !
सत्कार अपना ही किया है हाय ! तुमने आज तक !
अपने उदर की भरण-विधि तो श्वान भी सब जानते !
जो भी नरानाहूत* हो भिक्षुक उसे तुम मानते ॥ २६५ ॥

जिस जाति में आतिथ्य-सेवा भावनायें हैं नहीं;
मानवपना कहते किसे, उसने न देखा है कहीं !
आये हुए का द्वार पर जब मान तुम नहिं कर रहे;
कंजूस, निर्मम, बेहया अतएव तुमको कह रहे !! ॥ २६६ ॥

तुम खा रहे हो सामने, सुख ऐश तुम हा ! कर रहे;
मारे क्षुधा के रो रहा वह, पर न तुम हा ! लख रहे !
अभ्यर्थना, आतिथ्य तुम अपने जनों की कर रहे !
कोई अपरिचित आगया मनुहार तक नहीं कर रहे !! २६७ ॥

दान

भूपेन्द्र नरपति मेघरथ कैसे सुदानी हो गये !
हरने क्षुधा वे श्येन की भी थे तुलास्थित हो गये !
देते हुये अन्न दान कौड़ी निकल जाते प्राण हैं !
क्या काम रे ! धन आयगा, तन में न जिस दिन प्राण हैं!॥२६८॥

सिगरेट, माचिस, पान में तुम हो करोड़ों खो रहे !
पर दीन, दुखिया बन्धु को देते हुये हो रो रहे !
तुम जैन हो या वर्णशंकर जैन के, तुम कौन हो ?
उन पूर्वजों की तो प्रजा नहिं दीखते, तुम कौन हो ? ॥२६९॥

* नर + अनाहूत = अनिमंत्रित अतिथि ।

कोटीश हो, लक्षेश हो, चाहे भले अलकेश हो;
सकता न कर तुलना तुम्हारी आप यदि अमरेश हो;
पर बन्धु ! वह नर काम का क्या हित न जिसने हो किया?
धन भी गया,वह भी गया,उपकृत न दीनों को किया ! ॥२००॥

संयम

तुम जैन हो, तुम हो बताओ, हम किसे जैनी कहें ?
जो राग-प्रेमी, द्वेष-सेवी हो उसे जैनी कहें ?
मन में तुम्हारे काम है, तन में तुम्हारे ऐश है !--
क्या जैन होने के तुम्हारे चिह्न ये ही शेष हैं ? ॥२०१॥

मन पर तुम्हारा वश नहीं, वश चक्षु पर रहता नहीं;
जिह्वा तुम्हारी पर तुम्हारा वश कहीं चलता नहीं !
ये कर्ण भी स्वच्छन्द हैं, यह गन्ध-कामी नाक है;
उर में तुम्हारे स्पर्श की रहती जगी अभिलाष है ! ॥२०२॥

जब तक न संयम भावनाएँ आप में जग जायगी;
कल्याण की तब तक न कोई आश भी दिखलायगी ।
संयम-नियम तुम खो चुके, शैथिल्य-प्राण हो चुके;
तुम पूर्व अपने मरण के चित्यास्थ सब विधि हो चुके ॥२०३॥

शील

हा ! शील का तो क्या कहें ? हा ! शील शर्दी खा गया !
वत्सर अनेकों हो गये, पर स्वस्थ नहिं पाया गया ।
अब तो तुम्हारा दोष क्या, जब बीज भी अब है नहीं !
क्या नाथां कोई चीज हा ! बिन बीज होती है नहीं ? ॥२०४॥

जिस शील के तुम शैल पर ऊँचे कभी थे यों चढ़े;
चढ़ कर उसी शैलेश पर थे मोक्ष जाने को बढ़े !—
गिर कर उसी शैलेश से तुम आज चूर्णित हो गये !
संसार के तुम रज-कणों में चूर्ण होकर खो गये ॥२०५॥

पूर्वजों में संदेह

जिन पूर्वजों की देह से सम्भव हुई यह देह है,
उन पूर्वजों के वाक्य में होता हमें संदेह है !
मति-भ्रम हुआ अथवा हमारी बुद्धि कुंठित हो गई !—
प्रस्थान की तैयारियें अथवा अनैच्छिक हो गई ! ॥२०६॥

इतिहास अनुभव का किसी भी जाति का साहित्य है;
अनुभव किसी का खोगया, उसका विगत आदित्य है।
हमको न जाने क्या हुआ, क्यों मत हमारी खोगई !
साहित्य ऐसे आप्त में शंका हमें क्यों हो गई ! ॥२०७॥

नव कूप कोई खोद कर तत्काल क्या जल भर सका ?
तत्काल कर कोई कृषी नहिं है क्षुधा को हर सका।
क्या सम्पदा पैतृक कभी होती किसी को त्याज्य है ?
कुलपूत-भाजक के लिये तो भाज्य यह अभिभाज्य है ॥२०८॥

आडम्बर

वैसा न अनुभव आज है, वैसी न कोई बात है !
वैसी न अब है चन्द्रिका, श्यामा अमा कुहुरात है !
फिर भी उजाला दीप का कर तोम तम हैं हर रहे;
है प्राण तो तन में नहीं, पर शव उठा कर चल रहे ! ॥२०९॥

कैत्रिम्य ऐसे से कभी संमान बढ़ सकते नहीं;
शव को भले पकड़े रहें, पर प्राण आ सकते नहीं।
आडम्बरों के शव जलाओ, तब कहीं जीवन रहे;
है नीर तो सर में नहीं, पंकज वहाँ पर उड़ रहे? ॥३१०॥

दम्भ-पाखण्ड

हम जैन हैं, जैनत्व तो हम में नहीं हरिनाम को!—
हम खोजते हैं रात दिन रति-पार्श्व में आराम को!
जल छान पीने में अहो! जैनत्व सारा रह गया!
काँदे, लषुन के त्याग में बस त्याग समुचित रह गया ॥३११॥

अभिमान सच्चे जैन होने का न फिर भी छोड़ते!
मिथ्यावरण को तोड़ कर हम आँख तक नहिं खोलते!
इस दम्भ में, पाखण्ड में, बस दम हमारा जायगा!
पाखण्ड-कालीरात में जैनत्व शशि छिप जायगा!!! ॥ ३१२ ॥

हममें न अब वह तेज है, विभुवर! नहीं वह शक्ति है!
हममें न वह व्यक्तित्व है, हम अब नहीं वे व्यक्ति हैं!
श्रीमन्त अब वैसे नहीं, वैसे न पंडित योग्य हैं!
पर दम्भ तो सूखा हमारा लेखने ही योग्य है!!! ॥ ३१३ ॥

आवेदन

कितने दया के पात्र हैं, देखा दयासागर प्रभो!
कैसी दुराशागत दशा हा! हो गई जिनवर विभो!
हे नाथ! तुम सर्वज्ञ हो, मैं क्या तुम्हें नूतन कहूँ?
पर आँह तो तुम ही कहो, किसको भला तुम बिन कहूँ ॥३१४॥

हे नाथ ! पंकिल यों रहेंगे भक्त होकर आपके ?
सब कुछ हमारे आप हैं, हे नाथ ! हम हैं आपके।
क्या नाथ ! दुर्दिन देश के शुभतर न हो अब पायँगे ?
तो नाथ ! अब तुम ही कहो, जीने अधिक हम पायँगे ?॥३१५॥

हे नाथ ! भारत हीन है ! संतान इसकी दीन हैं !
बल हीन हैं, मति हीन हैं ! हा ! घोर विषयालीन हैं !
सद्बुद्धि देकर नाथ ! अब हमको सजग कर दीजिये;
यह सन्तमस विपदावरण का नाथ ! अब हर लीजिये ॥३१६॥

होकर पिता क्या सुध तुम्हें लेनी नहीं है पुत्र की ?
अपयश तुम्हारा क्या नहीं, अपकीर्ति हो जब गोत्र की ?
हम हैं सनातन भक्त तेरे, आज भी हम भक्त हैं;
सब भाँति विषयासक्त होकर भी तुम्हीं में रक्त हैं ॥३१७॥

जब जब बढ़ा अतिचार जग में, जन्म तुम धरते रहे;
निज भक्तजन के दौख्य को तुम हो सदा हरते रहे।
अब नाथ ! बन कर वीर जग में जन्म धारण कीजिये;
पुष्पित हुये इस दैन्य-वन को भस्म अब कर दीजिये ॥३१८॥

परतंत्र भारतवर्ष को स्वाधीन अब कर जाइये;
हम भक्त होकर आपके किसको भजें बतलाइये ?
बढ़ता हुआ गौवध तुम्हें कैसे विभो ! सहनीय है !
दयहीन दयनिधि ! हो रहे क्यों, जब कि हम दयनीय हैं ?॥३१९॥

फिर से दयामय ! मानसों में प्रेम-रस भर जाइये;
हम पतित होकर हो रहे पशु, मनुज फिर कर जाइये ।
गोपाल बनकर नाथ ! कब होगा तुम्हारा अवतरण ?
अब दुख अधिक नहिं दीजिये, हर लीजिये अब तम तरुण ॥३२०॥

स्वाधीन भारतवर्ष हो, इसके सभी दुख नष्ट हो;
यह सह चुका है दुःख अति इसको न आगे कष्ट हो ।
हम भी हमारी ओर से करते यहाँ सदुपाय हैं;
पर आपके बल के बिना तो यत्न सब निरुपाय हैं ॥३२१॥

कैसे कहूँ भावी यहाँ ? कैसे सजग परिजन करूँ ?
मैं आप तिमिराभूत हूँ, कैसे तिमिर में पद धरूँ ?
जिस युक्ति से भावी कहूँ, वह युक्ति तो बतलाइये;
दैवज्ञ मैं तो हूँ नहीं, यह आप ही लिखवाइये ॥३२२॥

भविष्यत् खण्ड

लेखनी

हा ! गा चुकी है लेखनी ! तू भूत, सम्प्रति रो चुकी !
कर ध्यान भावी का अभी से हीन संज्ञा हो चुकी ?
विस्मृत न कर व्रत लेखनी ! तुझको न व्रत क्या स्मृत रहा ?
मैं क्या लिखूँ ! कैसे लिखूँ ! मुझसे न लिखते बन रहा !!! ॥१॥

लेखनी के उद्गार—

दिनकर दिवसहर हो गया ! रजनीश कुहुकर हो गया !
जलधर अनलसर हो गया ! मृदु वायु विषधर हो गया !
रातें दुरातें हो गईं ! भाई विभो ! रिपु हो गये !
आशा दुराशा हो गई ! अब धर्म पातक हो गये !!! ॥२॥

राजा प्रजारिपु हो चुके ! श्रोहंत धनपति हो चुके !
जोगी कुभोगी हो चुके ! रोगी निरोगी हो चुके !
हत् शील हा ! हत् धर्म हा ! हत् कर्म भारत हो चुका ।
हो जायगा जाने न क्या, जब आज ऐसा हो चुका !!! ॥३॥

अवसर कुअवसर आज है ! हा ! बुद्धि भी सविकार है !
वैशम्य, विषया-भोग, मत्सर, राग के व्यापार हैं !
सर्वत्र अंधाचार, हिंसाचार, अधमाचार हैं !
तुममें समाकर हो गये अवशेष पापाचार हैं !!! ॥४॥
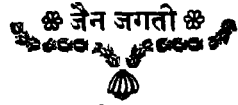
अब भी समय है चेतने का यत्न अब भी कर सको;
अब भी नसों में शक्ति है, जीवन मरण को कर सको।
जो हो चुका, सो हो चुका अब ध्यान उसका मत करो;
पापी अनागत के लिए सब मन्त्रणा मिलकर करो ॥५॥

उद्बोधन

मेरे दिगम्बर भाइयो! श्वेताम्बरो! मेरी सुनो;
मैं भी सहोदर आपका हूँ, आज तो मेरी सुनो।
पारस्परिक रणद्वन्द्व को हम रोक दें बस एक दम;
कंधे मिलाकर साथ में आगे बढ़ा दें रे! कदम ॥६॥

हम पुरुष हैं, पुरुषार्थ करना ही हमारा धर्म है;
पुरुषार्थ करने पर न हो, वह कौन ऐसा कर्म है?
होकर मनुज नैराश्य को नहिं पाश लाना चाहिए;
नर हैं नहीं नारित्व का कुछ भाव होना चाहिए ॥ ७ ॥

हम ही ऋषभ, अरनाथ हैं, भुजबल, भरत, बलराम हैं;
हम ही युधिष्ठिर भीम हैं, घनश्याम, अर्जुन, राम हैं।
कंधे भिड़ाकर हम चलें, फिर क्या नहीं हम कर सकें?
कलिराज के काले शिविर उन्मूल जड़ से कर सकें ॥ ८ ॥

पारस्परिक इस द्वेष के ये तीर्थ, आगम मूल हैं;
अमृत गरल है हो रहा!—इसमें हमारी भूल है।
मति-भ्रष्ट हम सब हो रहे, हम द्वेष में हैं सन रहे!
इस हेतु आगम, तीर्थ भी सब प्राण-नाशक बन रहे!!! ॥ ९ ॥

'जिन राज वाङ्मय' नाम की संस्था प्रथम स्थापित करें;
दोनों दलों के ग्रन्थ जिन-साहित्य में परिणित करें।
संमोह, पक्षापक्ष का कोई नहीं फिर काम हो;
ऊपर किसी भी ग्रन्थ के नहिं साम्प्रदायिक नाम हो ॥ १० ॥

ये साम्प्रदायिक नाम यों कुछ काल में उड़ जायँगे ;
संतान भावी को खटकने ये नहीं कुछ पायँगे।
यों एक दिन जाकर कभी क्रम एक विध बन, जायगा;
सर्वत्र विद्याभ्यास में यह भाव ही लहरायगा ॥ ११ ॥

हैं भिन्न पुस्तक, भिन्न शिक्षक, भिन्न हैं सब श्रेणियें ;
होती न क्या पर स्कूल में हैं एक भाषा, शैलियें ?
विद्यार्थियों में किस तरह होता परस्पर मेल है ?
हो भिन्न भी यदि श्रेणियें, बढ़ता न मन में मैल है ॥ १२ ॥

यदि साम्प्रदायिक मोह हम इन मंदिरों से तोड़ दें;
सब साम्प्रदायिक स्वत्व को हम तीर्थ में भी छोड़ दें—
फिर देखिये कृतयुग यही कलियुग अचिर बन जायगा ;
यह साम्प्रदायिक रोग फिर क्षण मात्र में उड़ जायगा ॥ १३ ॥

यह काम यदि हो जाय तो बस जय-विजय सब होगई !
भ्रातृत्व हममें आगया, जड़ फूट की बस खो गई !
कवि, शेष वर्णन भाग्य का फिर क्या हमारे कर सके ?
हम-सा सुखी संसार में फिर कौन बोलो रह सकें ! ॥ १४ ॥

हाँ, देखने ऐसा दिवस दृढ़ यत्न होना चाहिए;
बलिदान तक के भी लिये कटिबद्ध होना चाहिए।
हे नाथ ! दो सद्बुद्धि, जिससे सहज ही यह काम हो;
फिर से हमारा जैन-जग अभिराम, शोभाधाम हो ॥ १५ ॥

आओ समस्यायें विचारें आज मिलकर हम सभी;
हम दो नहीं, हम शत नहीं, हैं लक्ष तेरह हम अभी।
इतना बड़ा समुदाय बोलो क्या नहीं कुछ कर सकें ?
डट जायँ तो गिरिराज का समतल धरातल कर सकें ॥ १६ ॥

अनुचर सभी हो वीर के, तुम वीर की संतान हो;
जिसके पिता, गुरु वीर हों, फिर क्यों न वह बलवान हो ?
विभुवीर के अनुयायियो ! लज्जित न पुरखों को करो;
नर हो, न आशा को तजो, होकर न पशु तुम यों मरो ॥ १७ ॥

सब के चरण हैं, हाथ हैं, अवशेष कुछ बल-बुद्धि है;
कुछ दो चरण आगे बढ़ो, पुरुषार्थ में धन-रिद्धि है !
पूर्वज तुम्हारे वीर थे, तुम भीत, कायर हो गये !
नर के न तुम अब रूप हो, तुम रूप पशु के हो गये !!! ॥ १८ ॥

अवसर पड़े पूर्वज तुम्हारे देखलें तुम्हें कहीं !
मैं सत्य कहता हूँ सखे ! पहिचान वे सकते नहीं !
तन, मन, वचन, व्यवहार में वर्त्तन तुम्हारे आ गया !
मनुष्यत्व के अब स्थान में दनुजत्व तुममें आ गया !!! ॥१९॥

देखो न विधवायें घरों में किस तरह हैं सड़ रहीं !
सब ठौर तुममें धूम कैसी शिशु-प्रणय की बढ़ रही !
खलु ब्रह्मव्रत ही नीम है उत्थान की वैसे अरे !
जब नीम ही दृढ़ है नहीं, मंजिल नहीं कैसे गिरे ? ॥ २० ॥

आत्म-संवेदन

हे देव ! अनुचित प्रणय के सहते कुफल अब तक रहे !
यों मूल अपनी जाति का हम खोदते अब तक रहे !
हा ! इस अमंगल कार्य से हम स्वाह, आधे* बन चुके !
जो रह गये आधे अभी, यम बन्ध उन पर कस चुके !!! ॥ २१ ॥

शिशु पत्नि का कैसे भला पति साठ के से प्रेम हो !
सोचो जरा तुम ही भला, उस ठौर कैसे क्षेम हो !
व्यभिचार, अनुचित प्रेम का विस्तार फिर हा ! क्यो न हो !
हा ! अपहरण, अपघात हा ! हा ! भ्रूण-हत्या क्यों न हो !!!॥२२॥

नारी निरंकुश हो रही, पति भाग्य अपना रो रहे !
विष पत्नि पति को दे रही, पति-देव मूर्छित हो रहे !
आये दिवस ऐसे कथन सुनते ही हैं रहते प्रभो !
जब तक न हो तेरी दया, होगा न कुछ हमसे विभो !!! ॥ २३ ॥

तुममें सुशिक्षा की कमी का भाव जो होता नहीं—
यों आज हमको देखने यह दुर्दिवस मिलता नहीं !
कारण हमारे पतन के सब हैं निहित इस दोष में !
हे आत्मियो ! मैं कह रहा हूँ सोचकर, नहि रोष में !!! ॥ २४ ॥

---

* निर्बल,

होता तनिक भी ज्ञान यदि तुममें, न होती यह दशा !
इस हेतु तुम भी मूर्ख हो, नारी तुम्हारी कर्कशा !
शिक्षा बिना मतिधर मनुज उल्लू, निशाचर, यक्ष है !
हम इस कथन की पुष्टि में खर लेख लो—प्रत्यक्ष है !!! ॥ २५ ॥

मिलकर सभी क्या अज्ञता का भार हर सकते नहीं ?
दीपक जला तम तोमका क्या नाश कर सकते नहीं ?
साहस करें—सब हो सके—हमको असंभव कुछ नहीं;
नरवर नपोलिन वीर को क्या था असंभव कुछ कहीं ? ॥ २६ ॥

भेद-भाव-कुभाव को अब भूल जाना चाहिए,
सब साम्प्रदायिक मोह-माया त्याग देना चाहिए,
फैली हुई दुष्फूट का सिर तोड़ देना चाहिए,
सबको सहोदर मानकर मन को मिलाना चाहिए ॥ २७ ॥

करना हमें सब से प्रथम विस्तार शिक्षाचार का;
होता यहीं पर जन्म है सद्ज्ञान, शिष्टाचार का।
धमार्थ, शिवपद, काम का हरिद्वार शिक्षाचार है;
दैन्यादि रोगों के लिये यह एक ही उपचार है ॥ २८ ॥

शिक्षा बिना उत्थान संभव हो नहीं सकता सखे !
शिक्षा बिना नहिं कर्म कोई पुण्य हो सकता सखे !
हा ! देव ! कुत्सित कर्म कैसे बढ़ रहे हैं नित नये !
आदर्शता में क्या विभो ! होंगे न हम विश्रुत नये ? ॥ २९ ॥

क्या बन्धुओ ! अब भी तुम्हें संचेतना नहिं आयगी ?
तुम खो चुके सर्वस्व, अब बाज़ी बदन पर आयगी !
हे बन्धुओ ! अब तो जगो, अब तो सहा जाता नहीं !
संबोध करता हूँ तुम्हें, मुझसे रहा जाता नहीं !!! ॥ ३० ॥

आचार्य—साधु—मुनि

गुरुराज ! तुम संसार के परित्यक्त नाते कर चुके,
तुम मोह-माया कामिनी के कक्ष को भी तज चुके,
ऐसी दशा में आपको झंझाल जब कुछ है नहीं—
काठिन्य जिसमें हो तुम्हें ऐसा न फिर कुछ है कहीं ॥ ३१ ॥

जगसे प्रयोजन है नहीं, जग से न कोई अर्थ है;
परिवार, नाते, गौत्र के सम्बन्ध सब निःअर्थ हैं।
निर्धन बने कोटीश चाहे, भूप कोई रंक हो;
तुमको किसी से कुछ नहीं—सब ओर से निःशंक हो ॥ ३२ ॥

गुरुदेव ! चाहो आप तो सब कुछ अभी भी कर सको;
तुममें अभी भी तेज है, तुम तम अभी भी हर सको।
सम्राट् हो कोई पुरुष, कोई भला अलकेश हो;
अवधूत हो तुम, क्या करे वह भूप हो, अमरेश हो ? ॥ ३३ ॥

पर साधुपन जब तक न सच्चा आपका गुरु होयगा;
जो तेज तुममें है, नहीं कुछ भी प्रदीपक होयगा !
गुरु ! आपको भी राग-मत्सर, मोह-माया लग गई !
पड़कर प्रपंचों में तुम्हारी साधुता सब दब गई !! ॥ ३४ ॥

जब तज चुके तुम विश्वको—अपमान, आदर कुछ नहीं;
उन्मुख सभी हो जायँ तुमसे—कर सकेंगे कुछ नहीं।
त्यागी-विरागी-साधु हो, अवधूत हो, तप-प्राण हो;
संभव असंभव कर सको तुम कर्म-प्राणा-प्राण हो॥ ३५॥

कर में तुम्हारे आज भी गुरुराज! यह जिन जाति है;
सकती न हिल इस ओर से उस ओर कोई भाँति है!
तुम हो पिता, यह है सुता—विच्छेद कैसे घट सकें?
शाखा भला निज वृक्ष से क्या भिन्न होकर फल सकें॥ ३६॥

जिन जाति-जीवन-प्राण के तुम मर्म हो, तुम धर्म हो,
तुम योग हो, तुम ऐश हो, तुम ज्ञान हो, तुम कर्म हो,
आमग-निगम हो, शास्त्र हो, साहित्य के तुम मूल हो,
आध्यात्म-जीवन के लिये जलवायु तुम अनुकूल हो॥ ३७॥

हा! हंत! हे भगवंत! कैसे आज हो तुम, क्या कहूँ?
मैं बहुत कुछ हूँ कह चुका, इससे अधिक अब क्या कहूँ?
मैं नम्रता से कर रहा हूँ प्रार्थना गुरु! आपसे;—
गुरुदेव! अपगति आपकी अज्ञात है क्या आपसे?॥ ३८॥

मुनिवर्ग में सर्वत्र ही हैं रण परस्पर हो रहे!
इस रण-थली में धर्म के सब तत्त्व मुर्दे हो रहे!
तन, मन, वचन अरु कर्म में पहिले तुम्हारे योग था!
आचार में, व्यवहार में नहि लेश भर भी रोग था॥ ३९॥

जब साम्प्रदायिक द्वेष, मत्सर से तुम्हें भी द्वेष था;
उन सद्उरों में आपके जब क्लेश का नहिं लेश था,
जिन जाति का उत्थान भी संभव तभी था हो सका!
जब गिर गये गुरु! आप, पतनारंभ इसका हो सका॥ ४०॥

जिन धर्म के कल्याण की यदि है उरों में कामना,
जिन जाति के उत्थान की यदि है उरों में चाहना,
इस वेषपन को छोड़कर सम्यक्त्व-व्रत तुम दृढ़ करो;
यों साम्प्रदायिक व्याधियों का मूल उच्छेदन करो॥ ४१॥

कंचन तुम्हें नहिं चाहिए, नहिं चाहिए तुमको प्रिया;
फिर किस तरह गुरु! आपमें यों चल रही है अनुशाया?
आत्माभिसाधन के लिये संसार तुमने है तजा;
फिर प्रेम कर संसार से क्यों आप पाते हैं सजा?॥ ४२॥

बदला हुआ है अब जमाना, काल अब वह है नहीं;
उस काल की बातें सभी अनुकूल घटती हैं नहीं।
युग-धर्म को समझो विभो! तुम से यही अनुरोध है;
कर्तव्य क्या है आपका करना प्रथम यह शोध है?॥ ४३॥

इसमें न कोई झूठ है, अब मोक्ष मिलने का नहीं;
तुम तो भला क्या सिद्ध को भी मोक्ष होने का नहीं!
तिस पर तुम्हें तो राग, माया, कोह से अति प्रेम है;
श्रावक, श्रमण मिलकर उठो, अब तो इसी में क्षेम है॥ ४४॥

गुरु ! आप मुनिपन छोड़कर श्रावकपना धारण करें—
ऐसा कथन मेरा नहीं, शिव ! शिव ! हरे ! शिव ! शिव ! हरे !
जब तक नहीं गुरु ! साधुगण सम्यक्त्व-पद तक जा सकें,
उपयुक्त तब तक के लिये यह कथन माना जा सकें ॥ ४५ ॥

तुम पीटते हो ढोल अपने साधुपन का विश्व में;
आदर्श क्या वह साधुपन अब है तुम्हारे पार्श्व में ?
इस नग्नपन से नग्नपन अब तो नहीं गुरु ! पा सको;
यदि आज मत्सर छोड़ दो, कल को उसे तुम पा सको ॥ ४६ ॥

तब ढोंग, आडम्बर तुम्हें मिथ्या न करना चाहिए;
वैसे न हो जब आज, नहिं वैसा दिखाना चाहिए।
शास्त्रोक्त साध्वाचार तुम जब पाल सकते हो नहीं;
आचार में वर्तन करो ऐसा कि कुछ तो हो सही ॥ ४७ ॥

ये गच्छ, स्तुति अरु पंथ गुरुवर ! आप के ही पंथ हैं;
ये थे कभी सुन्दर, मनोहर—आज विकृत पंथ हैं।
इन गच्छ, स्तुति अरु पंथ के जब तक न झगड़े अंत हो—
तब तक नहीं संभव कहीं उत्थान—तुम धीमन्त हो ॥ ४८ ॥

तुमको पड़ी पर गर्ज क्या, तुम ध्यान क्यों देने लगे !
मरते हुये का बाप रे ! तुम क्यों भला करने लगे !
गिरते हुये पर आप गुरुवर ! टूट विद्युत-से गिरे !
ऐसी दशा में आश है क्या हाय ! जीवन की हरे ! ॥ ४९ ॥

अतिचार, शिथिलाचार गुरुवर ! आपका अब लेख्य हैं !
घृत-दुग्ध की बहती हुई सरिता तुम्हारी पेय्य है !
मिष्ठान्न बिन अब एक दिन होता तुम्हें गुरु ! भार है !
मेवे, मसाले उड़ रहे—अंगूर बस रसदार हैं !!! ॥ ५० ॥

गुरु ! पड़ गये तुम स्वाद में,—उपवास, व्रत सब उड़ गये !
अतएव गुरुवर ! श्रावकों के दास, भिक्षुक बन गये !
अब प्रेमियों के दोष गुरु ! यदि आप जो कहने लगे;—
घृत-दुग्ध, रस-मिष्ठान्न में गुरु ! दुख तुम्हें होने लगे ॥ ५१ ॥

उपवास दो-दो माह के भी आज तुम में कर रहे;—
हा ! हंत ! ये सब मान-वर्धन के लिये हो कर रहे !
पाखण्ड-प्राणा साधुओं का राज्य है फैला हुआ !
सहवास इनका प्राप्तकर सद्साधु भी मैला हुआ !! ॥ ५२ ॥

गुरु ! वेष-धारी साधुओं की क्यों भला बढ़ती न हो;
जब है इधर पड़ती दशा, फिर क्यों उधर चढ़ती न हो !
शिशु क्रीत करने की प्रथा तुम में विनाशी चल गई !
वे क्रीत दीक्षित क्या करें, जिनके हृदय की मर गई !! ॥ ५३ ॥

निःरक्त होकर विश्व से नर साधु-व्रत धारण करे,—
कल्याण वह अपना करे, त्रय ताप वह दारुण हरे।
गुरुदेव ! पर यह बात तो है आपके वश की नहीं;
अब आप इसमें क्या करें, जब भावना जगती नहीं ? ॥ ५४ ॥

अब एक मेरी प्रार्थना है आप यदि गुरु! मानलें—
यह वेष पावन भूलकर यह वेष भिक्षुक जानलें।
गुरुदेव! भिक्षुक से अधिक अब मान तो है आपका?
तुम पूज्य अपने को कहो, नहिं पूज्य-पद है आपका!! ॥ ५५ ॥

जिस क्षेत्र में तुम फूट के हो बीज गुरुवर! बो चुके,
उस क्षेत्रतल में आप भी आराम से बस सो चुके!
निष्कर्ष अन्तिम यह हुआ इस अवदशा पर ध्यान दो;
गुरु! काटकर यह शष्य कुत्सित आज जीवन दान दो ॥ ५६ ॥

गुरुदेव! पूर्वाचार्यवत् आदर्श जीवन तुम करो;
पंचेन्द्रियों का संवरण कर शीलमय संयम करो।
त्रयगुप्ति, पंचाचार का, व्यवहार का पालन करो,
जीवन करो तुम समितिमय—आचार्य-पद सार्थक करो ॥ ५७ ॥

दुःशीलता से बैर हो, तुमको घृणा हो रूप से;
तुमको न कोई अर्थ हो श्रीमंत, निर्धन, भूप से।
गौरव-भरी प्राचीनता की ज्योति फिर वह जग उठे;
यह रवि-उदय के आगमन पर तम तिलामिल जल उठे ॥ ५८ ॥

चारित्र-दर्शन-ज्ञानमय वातावरण जलवायु हो;
ऐसा सुखद वातावरण हो—क्यों न हम दीर्घायु हों?
गुरुवर! अहिंसावाद का जग को पढ़ा दो पाठ तुम;
हम रह गये पीछे अधिक—आगे बढ़ा दो आज तुम ॥ ५९ ॥

इस साम्प्रदायिक द्वेष-मत्सर-राग को तुम छोड़ दो;
खण्डित हुये इस धर्म के तुम खण्ड फिर से जोड़ दो।
अब भी तुम्हारा तेज है—इतने पतित तो हो नहीं;
आज्ञानुलंघन हम करें गुरु!—धृष्ट इतने तो नहीं ॥ ६० ॥

साध्वियें

हे साध्वियो ! स्त्र्युद्धार का अब भार तुम संभाल लो;
जिसके लिये तुम थीं चली पति-गेह तजकर-सार लो।
नारीत्व में शृङ्गार के जो भाव घर कर घुस गये—
उनके अखाड़े तोड़ दो-सद् भाग्य जग के जग गये ॥ ६१ ॥

स्त्रीवर्ग का सिंहावलोकन आज तुम आचख करो;
स्त्रीवर्ग को पूज्ये ! उठाने का अचल व्रत तुम करो।
आदर्श होंगी आप तो—आदर्श होंगी नारियें;
यदि बढ़ रही हैं आप कुछ, तो बढ़ सकेंगी गृहणियें ॥ ६२ ॥

हे साध्वियो ! फिर आप भी तो साधुओं के तुल्य हैं;
इनसे न कुछ हैं आप कम-इनसे न कुछ कम मूल्य है।
आत्मार्थ साधन के लिये तुमने तजा पतिगेह को;
समझो न कोई चीज फिर इस निज विनश्वर देह को ॥ ६३ ॥

नेता

नेता जनो ! यदि धर्म है कुछ आपके इस प्राण में,
सर्वस्व यदि तुम दे रहे हो जाति के कल्याण में;
फिर क्यों नहीं जूना नया तुम आज तक कुछ कर सके ?
हमको परस्पर या लड़ाकर उदर अपना भर सके ? ॥ ६४ ॥
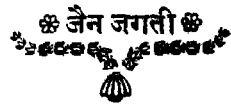
तुम साम्प्रदायिकता तजो, तुमको न इससे नेह हो;
हमको मिलाने में तुम्हारे एक मन, धन, देह हो।
करते रहोगे इस तरह दृढ़ हाय! क्या दल-बंदियाँ?
कब आयगी वह भावना, जब खोल दोगे ग्रंथियाँ? ॥ ६५ ॥

व्याख्यान की नेता जनो! इस काल में नहिं माँग है;
खर-रेंगना, कपि-कूदना तो मसखरों का स्वांग है।
व्याख्यान के ही साथ में कुछ काम भी करते रहो;
बस कार्य में जो तुम कहो परिणित उसे करते रहो ॥ ६६ ॥

होते तुम्हारे स्वागतों को रोकते हैं हम नहीं;
पर ईश के समतुल तुम्हें हम मानले—संभव नहीं।
स्वागत तुम्हारे स्टेशनों पर शौक से होते रहें—
अपखर्च जब तुम रोकते, फिर खर्च यों होते रहें? ॥ ६७ ॥

नेताजनो! तुम स्वागतों की चीज़ केवल हो नहीं;
व्याख्यान देने मात्र से बन जायगा सब–सो नहीं।
कर से करो अब काम तुम—यह काम का ही काल है;
दुर्गुण हमारे हैं अधिक, दुर्दैन्य-सैन्य विशाल है!! ॥ ६८ ॥

अतिचार, पापाचार दिन-दिन लेख लो हैं बढ़ रहे!
अनमेल, अनुचित पाणि-पीड़न रात-दिन हैं बढ़ रहे!
इस साम्प्रदायिक भूत से ही भूत वैभव खो चुके!
जिनके घरों में भूत हो—उनके जगे घर सो चुके!! ॥ ६९ ॥

नेताजनो ! अब जाति-जीवन है तुम्हारे हाथ में;
जीवन-मरण-भवितव्यता सब कुछ तुम्हारे हाथ में।
यह जाति आशागीर है, तुम आप आशागार हो;
तुम यत्न कुछ ऐसे करो बस अचिर जात्युद्धार हो !! ॥ ७० ॥

उपदेशक

करके दया उपदेशको ! अब ऐक्यता पर जोर दो;
बिखरे हुए हैं रत्न मालाके—उन्हें फिर जोड़ दो।
अपवाद-खंडन-चोट से चक-चूर अब करना नहीं;
गिरते हुए पर बज्र का आघात फिर करना नहीं ॥ ७१ ॥

हमको जगाने के लिये तुम यत्न उर भरकर करो;
तुम अब नहीं पर साम्प्रदायिक रोग को वर्धित करो !
सहयोग दो गिरते हुए को फिर उठाने में हमें;
उसको लगादो मार्ग में, पथ-भ्रष्ट जो दीखे तुम्हें ॥ ७२ ॥

श्रीमन्त

श्रीमन्त ! बोलो, कब तलक तुम यों न चेतोगे अभी ?
क्या अवदशा में और भी अवशिष्ट देखोगे अभी ?
तुम कर्म से, तुम धर्म से हो पतित पूरे हो चुके;
आलस्य, विषयाभोग के आवास, अड्डे हो चुके !!! ॥ ७३ ॥

है अज्ञता तुमको प्रिया सम, विषय-रस निज बन्धु हैं।
है रोग तुमको पुत्र सम, कलदार करुणासिन्धु है !
तुम भोग में तो श्वान हो, तुम स्वार्थ में रण-शूर हो !
परमार्थ में तुम हो बधिर, अपने लिये तुम सूर हो !!! ॥ ७४ ॥

नहिं ध्यान तुमको जाति का, चिंता नहीं कुछ धर्म की;
उन्मूल चाहे देश हो,—सोचो नहीं तुम मर्म की।
रोते हुए निज बन्धु पर तुमको दया नहिं आ रही;
उनके घरों में शोक है, लीला तुम्हें है भा रही! ॥ ७५ ॥

रसचार श्रीधर! आपका अब लेखने ही योग्य है!
क्रंदन तुम्हारे बन्धु का भी श्रवण करने योग्य है!
श्रीमन्त! देखो तो तुम्हारा वृत्त कैसा हो रहा!
दयनीय हालत देखकर यह जन तुम्हारा रो रहा! ॥ ७६ ॥

अब रह गये कुल आपके ये चार जीवन-सार हैं—
रतिचार है, रसचार है, श्रृङ्गार है, रसदार है।
तुमको कहाँ अवकाश है 'रतिजान' के तनहार से!—
क्या तार उर के हिल उठेंगे दीन की चित्कार से? ॥ ७७ ॥

तुमको पड़ी क्या दीन से? क्यों दीन का चिन्तन करो!
नानी मरी है आपकी जो आप यों झंझट करो!
रसचार पीछे क्या छिपा है आपको कुछ भान है?
कृतकाम कौशल हो रहा यमराज का कुछ ध्यान है? ॥ ७८ ॥

तुम जाति का, तुम देश का दारिद्र्य चाहो हर सको;
यह कारखाने खोलकर तुम निमिष भर में कर सको।
धनराशि कुछ कमती नहीं अब भी तुम्हारे पास में;
कैसे सकोगे सोच पर सोते हुये रतिवास में!! ॥ ७९ ॥

श्रीमन्त हो, पर वस्तुतः श्रीमंतता तुममें नहीं;
लक्षण कहीं भी आपमें श्रीमन्त के मिलते नहीं!
श्रीमन्त भामाशाह थे, श्रीमन्त जगडूशाह थे;—
वे देश के, निज जाति के थे भक्तवर, वरशाह थे!! ॥ ८० ॥

उन मस्तकों में शक्ति थी, उनको रसों से मुक्ति थी;
निज जाति प्रति, निज धर्म प्रति उनके उरों में भक्ति थी।
श्रीमन्त वे भी एक थे, श्रीमन्त तुम भी एक हो—
कंजूस, मक्खीचूस तुम श्रीमन्त! नम्बर एक हो!! ॥ ८१ ॥

नहि धर्म से कुछ प्रेम है, साहित्य से अनुराग है!
अतिरिक्त रति-रस-रास के किसमें तुम्हारा राग है?
जब आठ की तुमको प्रिया वय साठ में भी मिल सके;
ऐसे भला रसरास में तुम ही कहो-चख खुल सके? ॥८२॥

तुमको कहो क्या जाति का दुर्दैन्य खलता है नहीं?
पड़ती उधर यदि है दशा, चढ़ती इधर तो है सही?
हैं आप भी तो जाति के ही स्तंभ अथवा अंश रे!
भूचाल से शायद अचल होते न होंगे ध्वंश रे! ॥ ८३ ॥

अवहेलना कर जाति की तुम स्वर्ग चढ़ सकते नहीं;
रहना उसी में है तुम्हें, हो भिन्न जी सकते नहीं!
श्रीमन्त! चाहो आप तो सम्पन्न भारत कर सको;
आर्थिक समस्या देश की सुन्दर अभी भी कर सको ॥ ८४ ॥

तुमने किया क्या आज तक ? क्या कर रहे तुम हो अभी ?
अधिकांश लेखा दे चुका; अवशिष्ट भी सुनलो अभी।
पर चेतना से हाय ! तुम कब तक रहोगे दूर यों ?
मूर्च्छा कहो कब तक तुम्हारे से न होगी दूर यों ? ॥ ८५ ॥

पैसा तुम्हारे पास है जब, क्या तुम्हें दुख हो सके ?
नव नव तुम्हारे पाणि-पीडन सरलता से हो सके !
झगड़े-बखेड़े जाति में दिन-रात तुम फैला रहे;—
क्या जाति के हरने नहीं तुम प्राण जीवन पा रहे ? ॥ ८६ ॥

तुम बिन कहीं हम हैं नहीं, हम बिन नहीं कुछ आप हो;
हम हैं अनुग सब आपके, अग्रग हमारे आप हो।
अतिरिक्त हमको आपके फिर कौन जन सुखकंद है ?
हम,—आपमें शिव प्रेम हो—आनंद ही आनंद है ॥ ८७ ॥

अब छोड़कर यह रास-रस कुछ जाति का चिंतन करो;
मजबूत कर निज जाति को तुम जाति में सुख-धन भरो।
समझो धरोहर जाति की, निज राष्ट्र की निज कोष को;
कौशल,-कला,-व्यापार से सम्पन्न करदो देश को ॥ ८८ ॥

निज देश को, निज राष्ट्र की, निज धर्म की, निज जाति की,
श्रीमन्त ! पहिले देख लो, है अब दशा किस भाँति की।—
दुर्भिक्ष, संकट, शोक हैं, दारिद्र्य, भिक्षा, रोग हैं !
दो एक हो तो जोड़ दें,—कोटी करोड़ों योग हैं !! ॥ ८९ ॥

श्रीमन्त ! केवल आप ही बस एक ऐसे वैद्य हैं;
ये रोग जिनसे देशके सुन्दर, सरलतम छेद्य हैं।
अधिकांश रोगों के तथा फिर पितृ भी तो आप हैं;
श्रीमन्त ! जिम्मेदार इस बिगड़ी दशा के आप हैं ॥ ९० ॥

सबसे प्रथम श्रीमन्त ! तुम इन, इन्द्रियों को वश करो;
तन, मन, वचन पर योग हो, धन धर्म के अधिकृत करो।
तन, मन, वचन, धन आपका हो देश भारत के लिये;
रस, रास, छोड़ो आज तुम निज जाति-जीवन के लिये ॥ ९१ ॥

अपखर्च को अब रोक दो, अब दीन भूमी हो चुकी !
धन, धर्म, पत, विश्वास की सब भाँति से इति हो चुकी !
अनमेल, अनुचित पाणि-पीड़नसे तुम्हें वैराग्य हो,
वह कर्म—संयम,—शीलमय-फिरसे जगा सद्भाग्य हो ॥९२॥

अब, मूर्खता से आपको धनधर ! नहीं अनुराग हो;
मूर्ख ! तुम्हारी राह लो इनमें न तेरा राग हो।
दल साम्प्रदायिक तोड़कर घरको सुधारो आज तुम;
इस दीन भारत के लिये दो हाथ देदो आज तुम ॥ ९३ ॥

निर्धन

तुम हो पुरुष, पुरुषार्थ के नरदेह से अवतार हो;
पुरुषार्थ ही प्रारब्ध है, फिर क्यों न दलितोद्धार हो।
पुरुषार्थ तो करते नहीं, तुम दैव को रोते रहो;
क्या दिन भले आजायँगे दिन में कि जब सोते रहो ? ॥ ९४ ॥

व्यापार कन्या का करो, जिसमें न पड़ता श्रम तुम्हें !
मुद्रा हजारों मिल रही हैं एक कन्या पर तुम्हें !
जिसके सुता है कक्ष में, कर में उसीके शक्ति है ?
उसके सुता है कक्ष में; जिसके करों में शक्ति है ॥ ९५ ॥

विद्या पढ़ो तुम, ज्ञान सीखो, बुद्धि, करसे काम लो ;
करके रहो उस काम को जो काम उर में धाम लो ।
कैसे अहो ! धनवान तुम देखूँ भला बनते नहीं ;
क्या एक कण के लाख कण निर्धन कृषक करते नहीं ? ॥ ९६ ॥

तुम तुच्छतर-सी बात पर हो ग्राहकों से ऐंठते ;
तुम एक पाई के लिये पद-त्राण-रण कर बैठते ;
व्यापार धन्धे आपके फिर किस तरह से बढ़ सकें ?
घाटा न फिर कैसे रहे ? हम इस तरह जब कर सकें ॥ ९७ ॥

धन प्राप्त करने की कला जाने कलाकर भी नहीं ;
पर झूठ में तुमने कला वह समझ है रक्खी सही ।
यदि बन्धुओ ! सम्पन्नता अंतिम तुम्हारा ध्येय है ;
बल, बुद्धि सत्तम सत्य से पुरुषार्थ करना श्रेय है ॥ ९८ ॥

श्री पूज्य

श्रीपूज्य ! यतिपति आप भी आदर्शता धारण करो ;
सुख-ऐश-वैभव-जाल को पाताल में जाकर धरो ।
है आगया शैथिल्य जो, उसको भगादो पुरुष-धन !
शुचि शील, संयम, त्यागमय हो आपका तन, मन, वचन ॥९९॥
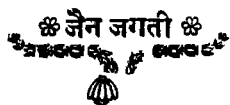
फिर पूर्ववत ही आपका सम्मान नित बढ़ने लगे;
शासन तुम्हारा जाति पर निर्बाध फिर चलने लगे।
सम्राट माने आपको अरु हम प्रजा बन कर रहें;
उड़ती रहें नित धर्म-ध्वज, परमार्थ में हम रत रहें ॥१००॥

यति

आस्वाद, रस, रति छोड़ दो, अब नेह जग से तोड़ दो;
तन,मन,वचन पर योग कर अब अर्थ-संचय छोड़ दो।
हो पठन-पाठन शास्त्र का कर्तव्य निशिदिन आपका;
धोरी धुरंधर धर्म का प्रत्येक हो जन आपका ॥१०१॥

युवक

युवको ! तुम्हारे स्कंध पर सब जाति का गिरि-भार है;
पोषण-भरण, जीवन-मरण युवको ! तुम्हारी लार हैं।
पौरुष दिखाओ आज तुम, तुम से अड़ा दुर्दैव है;
तुम देख लो माता तुम्हारी रो रही अतएव है ॥१०२॥

युवको ! तुम्हारे प्राण में रतिभाव आकर सो गया;
सुकुमार रति सम हो गये तुम, वेष रति का हो गया।
रतिभाव जब तुम में भरा, नरभाव तब रति में भरा;
पहिचान भी अब है कठिन,—तुम युवक हो या अप्सरा॥१०३॥

रस,-रास,-आनंद,-भोग से सम्बन्ध सत्वर तोड़ दो;
व्यवसाय सारे व्यसन के करके दया अब छोड़ दो।
दुर्दैव से तुम भिड़ पड़ो,—भूकम्प भूमी कर उठे;
बस शत्रु या तो झुक पड़े या फिर पलायन कर उठे ॥१०४॥

अवयव तुम्हारे पक गये, यौवन विकच जब हो गया ;
तब शक्ति,बल,मन चरमतम विकसित तुम्हारा होगया ।
तम-पक्ष में तुम आज तक बल, शक्ति, मन खोते रहे;
शशि-पक्ष में तो क्या कहूँ, बस तुम सदा रोते रहे !! ॥१०५॥

उस ओर से इस ओर को बल, शक्ति युवको ! मोड़ दो;
आस्वाद इसका भी चखो, कुछ काल को वह छोड़ दो ।
ये दिवस दुखिया जाति के पल मारते फिर जायँगे;
बस सजल होते पंक के, पंकज अचिर खिल जायँगे ॥१०६॥

संसार-भर की दृष्टि है युवको ! तुम्हारे पर लगी;
तुम हो जगे जिस भाग में, उस भाग में जागृति जगी ।
अब ऐक्यता, सौहार्द को तुम भी यहाँ वर्धित करो;
इसके लिये तन, मन, वचन सर्वस्व तुम अर्पित करो ॥१०७॥

बस आपके उत्थान पर सम्भव सभी उत्थान हैं;
होते युवक सर्वत्र ही निज जाति के चिद् प्राण हैं ।
दायित्व कितना आपका; क्या आपने सोचा कभी ?
चाहो, अभी भी सोचलो,—अवकाश है इतना अभी ॥१०८॥

चलते तुम्हारे चरण हैं, हैं काम कर भी कर रहे;
तुम देखते हो आँख से, तुम बात मुँह से कर रहे ।
फिर भी तुम्हारे में मुझे क्यों प्राण नहिं हैं दीखते ?
विज्ञान-युग में शव कहीं चलना नहीं हैं सीखते ? ॥१०९॥

तुम में न कोई जोश है, उत्साह है, बल-स्फूर्ति है;
चलती हुई बल वाष्प के मानों उपल की मूर्ति है।
या विश्व में सब से अधिक जब वृद्ध भारतवर्ष है;
वृद्धत्व में होते किसी के क्या कहीं उत्कर्ष है ?॥११०॥

अपवाद, निन्दावाद में खोते रहोगे वक्त तुम ?
कब तक रहोगे यों प्रिया में हाय ! रे ! अनुरक्त तुम ?
पहिचान तुम अब तक सके नहिं हाय ! अपने आपको;
तुममें अतुल बल,-शौर्य है,—दुष्कर न कुछ भी आपको ॥१११॥

नहिं जाति के, नहिं धर्म के, नहिं देश के तुम काम के;
अपनी प्रिया के काम के, आराम के तुम काम के।
लड़ना अकारण हो कहीं तुम हो वहाँ पर काम के;
तुम मसखरों के काम के;—क्या हो किसी के काम के ? ॥११२॥

पुरुषत्व तो होता फलित बस पूर्ण यौवन-काल में;
प्रतिभा, कला, बल, शक्ति होते प्रौढ़तम इस काल में।
तुम सब गुणों में प्रौढ़ हो—नहिं ज्ञात है शायद तुम्हें ?
आगे बढ़ो यदि दो चरण देरी लगे क्या कुछ तुम्हें ? ॥११३॥

तुमको तुम्हारे काम के अतिरिक्त है अवसर कहाँ !
निंदा, अनर्गल, झूठ, मिथ्यावाद से अवसर कहाँ !
अधिकांश की मन्दाग्नि से बिगड़ी दशा है पेट की !
अवशिष्ट की, मैं क्या कहूँ ? बिगड़ी दशा पाकेट की !! ॥११४॥

हा पितृ-धन ! हा जाति-धन ! हा धर्म-धन ! हा देश-धन !
हा ! नाथ ! यों है मिट रहा यह राष्ट्र-धन हर एक-क्षण !
युवको ! तुम्हें आती नहीं होगी कभी भी शर्म हा !
आती न होगी याद तक—है चीज कोई धर्म हा ! ॥११५॥

तुमको न जब यह ध्यान है क्या हो रही निज की दशा ?
आने लगी क्यों ध्यान में तब दीन, निर्धन की दशा ?
युवको ! तुम्हारे प्राण-बल को शीत कैसा लग गया ?
करते हुए भेषज अलं वह गर्म क्यों नहिं बन गया ? ॥११६॥

युवको ! उठो, आगे बढ़ो, विपदावरण को चीर दो;
सन्तप्त आर्यावर्त्त को करके दया कुछ नीर दो।
युवको ! तुम्हारा यह बसंती काल शाश्वत है नहीं !
संसार में क्या एण-तृष्णा के सिवा कुछ है नहीं ? ॥११७॥

पंचायतन

पंचो ! तुम्हारी शक्ति का अनुमान लग सकता नहीं;
तुम दण्ड ऐसे दे सको, जो भूप कर सकता नहीं।
सम्राट से, खुद ईश से चाहे मनुज डरता न हो;
है कौन जो पशुवत तुम्हारे सामने रहता न हो ? ॥११८॥

पंचायतन में ईश का जो भान हम लखते नहीं;
सम्राट से भी अधिक तुमसे आज हम डरते नहीं।
पंचायतन में आज पर गुण्डत्व आकर भर गया !
अन्याय करने में अभी पंचायतन बस बढ़ गया !! ॥११९॥

जिस जाति की पंचायतन में ईश का यदि अंश है;
वह जाति जग की जातियों में एक ही अवतंश है।
जिस जाति की पंचायतन में न्याय है अरु स्वत्व है;
वह जाति गौरवयुक्त है, उसका अचल अमरत्व है ॥१२०॥

पंचायतन में फिर वही ईशत्व यदि भरजाय तो,-
पंचायतन में ज्ञान की रे! ज्योति यदि जग जाय तो—
क्या देर फिर हमको लगे जगते हुए, उठते हुए?
कैसे भला स्थिर रह सके तम भोर के फटते हुये? ॥१२१॥

पंचायतन में ईश का आवास पंचो! अब करो;
तुम न्याय,-संयम,-शीलसंगत वृत्त का सेवन करो।
अन्याय, अत्याचार जो पंचायतन में भर गया—
है, जाति का नैतिक पतन वह मूलतः ही कर गया! ॥१२२॥

अपखर्च पंचो! रोक दो, विक्रय सुता का रोक दो,
अनुचित प्रथायें रोक दो, शिशु-पाणि-पीड़न रोक दो,
तुम पाप-खग के पक्ष दोनों वज्र बन कर तोड़ दो;
अब जाति के अवयव विकल, बन कर सुधारस जोड़ दो ॥१२३॥

कवि

हमको जगादो आज कविवर! तान मीठी छेड़ कर;
आलोक करदो भानु का तमसावरण को छेद कर।
मुर्दे जनों के श्रुत-पटों में काव्य-अमृत डाल दो;
सकते उठा नहिं मर्त्यको तो काव्य कर से डाल दो ॥१२४॥

इस साम्प्रदायिक जाल को कविता तुम्हारी तोड़ दें,
पारस्परिक रण-द्वेष का सम्पूर्ण ढाँचा तोड़ दें,
बल,-ज्ञान,-बुद्धि; विवेक दे, तन में अनूठा प्राण दें;—
अवसर पड़े पर मर्त्य जिससे प्राण तक का दान दें ॥१२५॥

लेखक

अब उदर-पोषण के लिये लेखक! लिखो नहिं लेख तुम;
सब की निगाहें आप पर, दो रूप तृष्णा पेख तुम।
तुमको विदित है जाति की जो हो रही हाँ दुर्दशा;
कर दें न उसको ओट में कुत्सा बुभुक्षा कर्कशा ॥१२६॥

लेखक गणों ने क्या किया, तुम जानते हो रूष में?
था बोलसेविक कर दिया सब रूष भर को निमिष में।
तुम भी लिखो अब लेख ऐसे—तन-पलट हो पलक में;
उत्थान लेखों से तुम्हारे अचिरतम हो खलक में ॥१२७॥

तुम साम्प्रदायिक भाव से लिखना न कोई लेख अब;
मृत को जिलाने के लिये अब चाहिए उल्लेख सब।
है कार्य लेखक का कठिन, अनबूझ इसको छोड़ दें;
लेखक-कला उसको मिलें जो प्राण व्रत में छोड़ दें ॥१२८॥

ऐसे लिखो अब लेख तुम जिनका असर तत्काल हो;
आलस्य,विषया भोग हित जो सप्तफणिधर व्याल हो।
अवसर पड़े डस जाय चाहे आपको ये व्याल भी;
यदि बढ़ चुके हो अग्र तुम, पीछे हटो नहिं बाल भी ॥१२९॥

ग्रन्थकर्ता

हे ग्रन्थकर्ता मनिषियो ! नव शास्त्र-रचना मत करो;
अनुचित प्रथाएँ रश्म पर अब ग्रन्थ निर्मापित करो।
करने लगेंगे यदि भला पर्याप्त ये ही शास्त्र हैं;
शास्त्रानुशीलन फिर सिखा दो, हम दया के पात्र हैं ॥१३०॥

स्वाध्याय पूर्वक तुम लिखो इस आधुनिक विज्ञान पर;
तुम ग्रन्थ कितने भी लिखो यूरोप अरु जापान पर।
यह आधुनिक कौशल-कला भर दो सभी तुम ग्रन्थ में;
बाधा न होवे फिर हमें बढ़ते हुए को पन्थ में ॥१३१॥

अनूदित प्राकृत का सभी साहित्य होना चाहिए;
जिसमें न हो अनूदित भाषा वह न बचनी चाहिए।
उन्मूल होते वाक्कलन की इस तरह जड़ दृढ़ करो;
आधार सब कुछ आप पर साहित्य को विश्रुत करो ॥१३२॥

शिक्षक

शिक्षक ! तुम्हारे हाथ में सब राष्ट्र की शुभ आश है;
निज देश का, निज जाति का शिव धन तुम्हारे पास है।
कितना बड़ा दायित्व है, अब आप ही तुम लेख लो ?
बनते हुए आदर्श तुम आदर्श शिक्षा दे चलो ॥१३३॥

शिक्षित अभी कुछ भी नहीं इनको बढ़ाओ रात दिन;
इसके लिये हो आपका तन, मन, वचन, सर्वस्व धन।
हे शिक्षको ! तुम शिशु गणों की अज्ञता अपहृत करो;
शिक्षित इन्हें करते हुए तुम जाति को उपकृत करो ॥१३४॥

पत्रकार

अपवाद,-कुत्सा,-झूठ-लेखन से तुम्हें वैराग्य हो;
बिगड़ी बनाने का तुम्हें उपलब्ध अब सौभाग्य हो।
हमको जगाने के लिये तुम युक्तियों से काम लो;
सोये हुओं को मृत बना दे जो, न उसका नाम लो ॥१३५॥

हे पत्रकारो ! पत्र में सुन्दर सुधाकर लेख दो;
मन देखते ही खिल उठे, पंकिल न तुम अब लेख दो।
यदि व्यक्तिगत–अपवाद भी तुमको कहीं करना पड़े;
ऐसा लिखो बस युक्तिगत वृथा न श्रम करना पड़े ॥१३६॥

उठते हुए कवि, लेखकों को कर पकड़ उत्थित करो;
है पत्रकारों की कमी, सो इस तरह समुचित करो।
फिर से नया मण्डन करो इस जाति मर्त्यागार का;
जड़, मूल उच्छेदन करो बढ़ते हुए अतिचार का ॥१३७॥

अब राग, मत्सर, द्वेष के विष-झर बहाना छोड़ दो;
इस ओर से उस ओर को अब गति बढ़ाना तोड़ दो।
हर पत्र हो नर मात्र का, हो साम्प्रदायिक वह भले;
बस साम्प्रदायिक गंध से नहिं पत्र प्लावित वह मिले ॥१३८॥

शिक्षण-संस्थाओं के संचालक

संचालको ! विद्याभवन सब आपके आदर्श हों;
सर्वत्र विध्याभ्यास का अतिशय बढ़ा उत्कर्ष हो।
शिक्षक सभी गुणवान हो, सब छात्र प्रतिभाशील हो;
वातावरण चटशाल का सुन्दर शिवं सुखशील हो ॥१३९॥

विद्याभवन में नाम को नहिं साम्प्रदायिक भाव हो;
ऐसे न शिक्षण हों वहाँ जिनसे सबल पर दाँव हो।
सौजन्यता का ऐक्यता का प्रेमपूर्वक पाठ हो;
विनयादि सत्तम शुभ गुणों का पाठगृह वह हाट हो ॥१४०॥

गुरुकुल व्यवस्थित हों सभी, बालक सभी गुणवान हो;
जातीय झगड़े हों नहीं, निर्भेद विद्यादान हो।
संचालको ! ये छात्रगण सब जाति की सम्पत्ति हैं;
इनको अगर कुछ हो गया सब ओर से आपत्ति है ॥१४१॥

सबकी लगी है दृष्टि इन सब गुरुकुलों के ओर ही;
एकत्र भी तो हो रहा धन जाति का इस ओर ही।
संचालको ! हे शिक्षको ! कितना बड़ा यह कोष है ?
फिर भी तुम्हें सब सौंप कर वे कर रहे संतोष हैं ॥१४२॥

नारी

नारी कला अब हाय ! रे ! विग्रह, कलह में रह गई !
मरते हुए हम मर्त्य पर भरकम शिला-सी गिर गई।
जब लड़ रहीं हों ये नहीं, जाता निमिष ईदृश नहीं;
इस दृष्टि से बहनो ! तुम्हारे नाम है अनुचित नहीं ॥१४३॥

बहनो ! तुम्हारे पतन में अपराध है सब पुरुष का;—
ऐसा नहीं तुम कह सको; कुछ आपका, कुछ पुरुष का।
तुमको नचाते हैं पुरुष—उनका यही व्यभिचार है;
संफुल्ल होकर नाचती हो तुम, यही रसचार है ॥१४४॥

घर में तुम्हारा राज्य हो, पति से तुम्हारा प्रेम हो,
बाहर सदा सहयोग हो, संतान तुमको हेम हो ;
इस भाँति से पतिदेव को सहयोग यदि देने लगो;—
सुख के दिवस आ जायँगे, सुख लूटने लेने लगो ॥१४५॥

नारी-कला से आज भी यदि प्रेम जो रहता तुम्हें,
ऐसा निखिल दारिद्र्य तो नहिं देखने मिलता हमें !
तुम जिन दिनों में हाथ से चर्खा चलाती नित्य थीं;
सुख से भरे वे दिवस थे, करती सभी तुम कृत्य थीं ॥१४६॥

जब से बनी तुम कामिनी, मूर्खा, परायी भामिनी;
दुर्भाग्य की तब से हमारे पड़ गई कच यामिनी !
ये आपके बिन नर नराधम भी न जी सकते कभी !
सम हों जहाँ दोनों, वहाँ कोई कमी कहते कभी ? ॥१४७॥

हे मातृ ! भगिनी ! आप अपनी इस दशा का हेतु हैं;
अपने पतन के कारणों में आप कारण केतु हैं।
आदर्श, साध्वी आप थीं जब, देश भी आदर्श था;
संतान थीं सब सद्गुणाकर, शिव सुखं, उत्कर्ष था !! ॥१४८॥

इतिहास बहनो ! आज तक का यह हमें बतला रहा—
संसार पीछे आपके मरता हुआ है आ रहा।
वह राम-रावण युद्ध भी था आपके कारण हुआ;
विध्वंश कौरव-पाण्डवों का आपके कारण हुआ ॥१४९॥
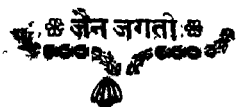
पीछे तुम्हारे भूप कितने रंक निर्धन हो गये?
पाकर तुम्हें योगी, ऋषी पथ-भ्रष्ट कितने हो गये?
इस काल के ये मनुज तो फिर क्या विचारे चीज हैं;
यह मोहिनी बहनो! तुम्हारी काम का हो बीज है!! ॥१५०॥

वैसे जगत में काम की जगती सदा ही आग है;
अनुकूल यदि तुम मिल गई, दूनी भड़कती आग है।
कलिकाल द्वापर में तुम्हारी जाति में भी शक्ति थी;
अतएव कामी मनुज की चलती न कोई युक्ति थी ॥१५१॥

तुम हाय! बहिनो आज तो इतनी पतित हा! होगई!
रसराज-क्रीड़ा की अहो साकार प्रतिमा हो गई!
संयम-भरा वह स्त्रैण-बल जब तक न तुम में आयगा;
तब तक न कोई अन्त हा! इस दुर्दशा का आयगा! ॥१५२॥

बहिनो! तुम्हारे हाथ में कितना अतुल बल-वीर्य्य है!
क्या बादशाही काल में कुछ कम दिखाया शौर्य्य है?
वह बल तुम्हारे में अभी यदि क्रान्ति करके जग उठें;
बहिनो! तुम्हारी अवदशा यह निमिष भरमें जल उठें ॥१५३॥

पर आज तो बहनो! तुम्हें कटु शील है लगने लगा;
बालायु में ही आपका अब काम मन हरने लगा।
यह मनुज कामी श्वान है, कामी शुनी तुम बन गई;
अब नाश की तैय्यारियों में क्या कमी है रह गई? ॥१५४॥

बहिनो ! बढ़ो तुम चीर कर संकोच,-लज्जा-चीर को;
कामी जनों से भिड़ पड़ो तुम खींचकर शमशीर को।
अन्यायियों ने आज तक तुम पर किया अन्याय है;
अन्यायियों के तो लिये तलवार अन्तिम न्याय है ॥१५५॥

मूर्खा न तुम अब यों रहो ! पर्दा-नशीना नहिं रहो ?
अपना हिताहित सोच लो दासी अधिक अब नहिं रहो।
सम भाग पाने के लिये अब तुम लड़ो जी खोल कर;
अर्धाङ्गिनी है आप तो, आधा उठालो तोल कर ॥१५६॥

बहिनो ! तुम्हारे जब उरों में क्रान्ति लहरा जायगी;
इस वृद्ध भारतवर्ष में गत शक्ति फिर आजायगी।
असमेल, अनुचित पाणि-पीड़न बंद सब हो जायँगे;
नर रत्न फिर देने लगोगी, फिर धनी हों जायँगे ॥१५७॥

विधवाओ—

भवितव्यता तो फलवती होये बिना रहती नहीं;
प्रारब्ध के अनुसार ही भवितव्यता बनती सही।
पुरुषार्थ से प्रारब्ध का निर्माण होता है सदा;
जिस भाँति का पुरुषार्थ है, प्रारब्ध वैसा है सदा ॥१५८॥

पुरुषार्थ तुम करती नहीं, फिर भाग्य को तुम दोष दो;
सब कुछ तुम्हारा दोष है, क्यों दूसरों को दोष दो।
स्वाधीन होने जा रहे स्वैरिन तुम्हें तो नर करें;
वैधव्य-वर्द्धक साधनों को तोड़कर निःजड़ करें ॥१५९॥
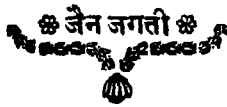
विदुषी बनो तुम एक दम, अतिचार होता रोक दो;
कामी जनों के बदन पर शत लात-मुक्के ठोक दो।
फलती हुई निज कामना नर छोड़ दें—सम्भव नहीं;
इस हेतु शायद है न कन्या-पाठशाला-गृह कहीं ॥१६०॥

सभा

अब ऐक्यता-सौहार्दशीलन हर सभा का ध्येय हो,
मत्सर-गरल के स्थान पर अब प्रेम-रस ही पेय हो।
अब व्यक्तिगत कल्याण की सब कामनाएँ तोड़ दो;
बढ़ते हुए वैशम्य की ग्रीवा पकड़ कर मोड़ दो ॥१६१॥

कु-प्रपंच करना छोड़ दो, गाँठें हृदय की खोल दो;
सब में परस्पर प्रेम हो, मिश्री मनों में घोल दो।
सब हो सभाएँ एकविध हो सूत्र सब का एक सा;
कोई सभा में हो नहीं वह साम्प्रदायिक कर्कशा ॥१६२॥

मण्डल

अब मण्डलो! नहिं साम्प्रदायिक बंधियाँ करते रहो;
हो ध्येय-च्युत निज वर्ग का मण्डन नहीं करते रहो।
उपकार जात्युद्धार ही अब मण्डलों का ध्येय हो;
उत्थान के छोटे बड़े सब मार्ग तुमको ज्ञेय हो ॥१६३॥

यदि मण्डलो! तुम पूछते हो सच मुझे तो अब कहूँ—
धन्वी सभा, मण्डल इषु, दल दण्ड, लक्षित हम-कहूँ।
तुम दीन हो, दीना तुम्हारी जाति, भारत दीन है;
मण्डन करो हे मण्डलो! अब तो रही कोपीन है ॥१६४॥

जिन मण्डलों का काम खलु भोजन कराना मात्र है;
सर्वत्र वे लेखे गये उपहास के ही पात्र हैं!
आज्ञा दलाधिप की नहीं उनके लिये कुछ चीज है;
विग्रह, वितण्डावाद के लेखे गये वे बीज हैं! ॥१६५॥

ये एक विगलित पेटिका हित तोड़ने पेखे गये—
उन मण्डलों को जो कि जिनवर नाम से लेखे गये!
पदत्राण ये पहिने हुए भोजन परोसेंगे तुम्हें!
परिचय उचित निज इस तरह देते रहेंगे ये तुम्हें ॥१६६॥

ऐसे विषम वातावरण में सभ्य मण्डल चाहिए;
दम्भी लवण-तस्कर, हटी नहिं सभ्य❀,-दल,-बल चाहिए।
जो ब्रह्म-वर्त्ती है सदा आदर्श वह ही सभ्य है;
अभिजात मण्डल है वही अभिजात जिसके सभ्य हैं ॥१६७॥

संख्या अधिक गुण्डे जनों की हाय! इनमें पायगी!
तुम देख लेना मण्डली अपध्वस्त होकर आयगी।
अतएव ऐसे मण्डलों को तुम कुचल दो एक दम;
अभिजात तुम आगे बढ़ो, आगे बढ़ो तुम दो क़दम ॥१६८॥

उद्योग धन्धों के लिये तुम जाति से जगड़ा करो;
उन्मूल करती हो प्रथा-माया, उसे भेदा करो।
सौहार्द हो, हो प्रेम शुचि, सुन्दर परस्पर भाव हो;
हो शिक्षिता नारी यहाँ—मंण्डल! तुम्हारे दाँव हो ॥१६९॥

❀ सदस्य।

तीर्थ

ये तीर्थ पावन धाम हैं, मात्सर्य्य का क्या काम है;
द्विज, शूद्र दोनों के लिये ये तीर्थ सम सुखदाम हैं।
द्विज ! साम्प्रदायिक पंक से पंकिल इन्हें तुम मत करो;
दर्शन निमित आये हुए नहि शूद्र को वर्जित करो ॥१७०॥
एकत्र अगणित कोष का करना यहाँ अब व्यर्थ है;
इनमें करोड़ों हैं जमा, उपयोग क्या ? क्या अर्थ है ?
हे बन्धुओ ! तुम कोर्ट में इनके लिये अब मत बढ़ो;
अब लड़ चुके तुम बहुत ही, आगे कृपा कर मत बढ़ो ॥१७१॥

मन्दिर

पण्डे पुजारी अब विधर्मी वैतनिक रहने न दो;
गणना तुम्हारे मंदरों की अब अधिक बढ़ने न दो।
यों पतित होकर भक्त-जन हैं भृत्य-पद पर आगये;
हा ! घन-घटा-से भृत्यगण सर्वत्र देखो छागये ॥१७२॥

विद्या-प्रेम

यों शिक्षणालय खोलने की धुन तुम्हारी योग्य है;
शिक्षा-प्रणाली पर तुम्हारी ध्यान देने योग्य है।
शिक्षापरायण शिक्षणालय एक इनमें हैं नहीं;
सब साम्प्रदायिक अड्डे हैं, विद्या-परायण हैं नहीं ॥१७३॥
विद्या-भवन में विष भरा शिक्षण न विद्यादान दो;
विद्यार्थियों को अब नहीं ऐसा अपावन ज्ञान दो।
बालक अधूरा ज्ञान में घर का न कोई घाट का;
वह हाट में भी क्या करें, नहिं ज्ञान जिसको बाट का ?॥१७४॥

यों दुर्व्यवस्थित शिक्षणालय आज से रक्खो न तुम;
अतिरिक्त विद्याभाव के कुछ दूसरा रक्खो न तुम।
शिक्षक अधूरे हो नहीं, सब ज्ञान-गरिमागार हो;
कौशल-कला-विज्ञान का विद्याभवन भण्डार हो ॥१७५॥

हर ग्राम में चटशाल हो, गुरुकुल तथा पठशाल हो;
ऐसा न कोई ग्राम हो, जिसमें न विद्याशाल हो।
शुचि पुण्य भावों से भरा संचालकों का वर्ग हो;
आदर्श विद्याप्रेम हो तो क्यों न भारत स्वर्ग हो ॥१७६॥

स्त्री-शिक्षा

अब नारी-शिक्षण आज से अनिवार्य्य तुम नरवर ! करो;
अमराज्ञता को आज इनकी नरवरो ! नश्वर करो।
नररत्नगर्भाकुन्तला की जाड्यता अप-हृत करो;
नर सस्यपूर्णा श्यामला का मनुज हो, रक्षण करो ॥१७७॥

जब से करी अवहेलना यों आपने स्त्री-जाति की;
दुर्दैव की चालें तभी से फल रहीं हर भाँति की।
सुत सूर मूर्खा नारियें किस भाँति से फिर दे सकें,
जब धार कुण्ठित हो गई, तलवार क्या भक् ले सके ? १७८॥

कर दो हमारी देवियों को शिक्षिता वर पंडिता;
फिर जाति आपोंआप ही हो जायगी चिर मण्डिता।
संसार-जीवन-शकट के नर, नारि ये दो चक्र हैं;
हो एक दृढ़ दूजा अबल, अवरुद्धगति रथ-चक्र हैं ॥१७९॥

सुत-पत्र की जैसी तुम्हें चिन्ता, सुता की भी करो;
दोनों शकट के चक्र हैं, सुत तुल सुता को भी करो।
जीवित रहो वह देखने दिन जब सुता पढ़ने लगे;
तब देखना मृतवर्ग ही अपवर्ग-सा लगने लगे॥१८०॥

साहित्य-सेवा

साहित्य-सेवा शब्द मुझको तो अपरिचित-सा लगे;
साहित्य के प्रति प्रेम कितना—कुछ पता इससे लगे।
मूर्खे ! सदा जीती रहो, हाँमी तुम्हारे हैं हमीं;
सीखे न लिखना नाम हम, कोई न हम में है कमी॥१८१॥

साहित्य के प्रति प्रेम उर में बन्धुओ ! जाग्रत करो;
साहित्य जीवन-मंत्र है तुम जाप इसका नित करो।
साहित्य-स्रष्टा मनिषियों को हर तरह सहयोग दो;
स्वाध्याय-शाला खोल दो सुविधा तथा मनयोग दो॥१८२॥

चाहे जिनेन्द्र गुलाब का तुम मान-वर्धन मत करो;
करके दया श्रीमंत ! पर तुम मान-मर्दन मत करो।
संतोष तुम इतना करो, उत्साहयुत बढ़ जायँगे;
भण्डार पहिले ही भरे, भण्डार फिर भर जायँगे॥१८३॥

योजना

श्री निखिल–जिनमत-बृहद्-परिषद् आज हम कायम करें;
छोटे बड़े अधिकार सब उसको समर्पित हम करें।
वह जैन-जगती में हमारी सार्वभौमिक शक्ति हो;
हम पर उसे अनुराग हो, उसमें हमारी भक्ति हो॥१८४॥

सब हो सभासद वैतनिक मिलता उचित निष्क्रय रहे;
उनके करों में डोर हो, उनके करों में बल रहें।
प्रत्येक तीजे वर्ष पर ये सब सभासद हों नये;
वे हो सकेंगे सभ्य, जिनके अधिक अभिमत हो गये ॥१८५॥

इसकी अनेकों शाख हों सर्वत्र फिर फैली हुई;
सबकी व्यवस्था एक से ही ढंग पर हो की हुई।
सबकी प्रणाली एक हो, कर्तव्य सब का एक हो;
हो भिन्न सबके कार्य-गुण, पर केन्द्र सब का एक हो ॥१८६॥

विद्वद्-सभा, विद्या-सभा, कौशल-सभा, शिल्पी-सभा,
छात्र-परिषद्, युवक-परिषद, युवती-सभा, नारी-सभा।
शिक्षण-सभा, साहित्य-परिषद, बाल-विधवादल-सभा;
विज्ञान-परिषद, धर्म-परिषद, राजनैतिक-दल-सभा ॥१८७॥

श्रीसाधु-परिषद, कुँवर दल-कन्या-कुमारी परिषदा;
दीक्षा-सभा, मन्दिर-सभा श्री तीर्थ-रक्षण-परिषदा।
इदृश सभाश्रम, समिति, दल, मण्डल अहो ! स्थापित करें;
बीते हमारे दिवस वे पीछे नहीं क्यों फिर फिरें ॥१८८॥

बिन राज्य के भी राज्य की हम नींव ऐसे गड़ सकें;
उत्थान की सोपान पर हम दौड़ ऊँचे चढ़ सकें।
हो ऐक्यता जिस ठौर क्या होती नहीं साफल्यता ?
बढ़ने लगें धन, धर्म, यश, घटने लगें वैफल्यता ॥१८९॥

कुछ भी न चिन्ता साम्प्रतिक हम अवदशा की यदि करें;
रोगी हुए जन के लिये उपचार यदि हम नहिं करें—
परिणाम होगा क्या वहाँ—क्या हो नहीं तुम जानते ?
फिर क्यों न मेरे बन्धुओ! हो बात मेरी मानते ॥१६०॥

जब तक नहीं ये जाति के सब रोग खोये जायँगे;
तब तक न जीवन के दिवस चिर स्वस्थ होने पायँगे।
ये रोग हैं या व्याल हैं, साकार तन में; काल हैं;
फिर भी नहीं उपचार है—ऐसा भयावह हाल है !!! ॥१६१॥

लेखिनी

तू भूत भारत गा चुकी, तू रो चुकी इह काल को;
हे लेखिनी ! बतला चुकी भावी अनागत काल को।
अब वेग अपना थाम ले, विश्राम ले, संतोष कर;
इतना अलं होगा प्रिये ! यदि हो गया कुछ भी असर ॥१६२॥

मेरा ध्येय—

गाना प्रथम था ध्येय मेरा भूत भारत की मही;
फिर साम्प्रतिक, भावी दशा भी वर्ण्य थीं खलु ही यहीं।
अतएव कोई शब्द मुझसे हो लिखा कटुतर गया;
क्षन्तव्य हूँ मैं-जाति का निर्बोध बच्चा रह गया ॥१६३॥

गुरु-देव-भारती

कहना मुझे जो था, उसे मैं सभ्यता से कह चुका;
हे भारती ! तेरी कृपा से ग्रन्थ पूरा कर चुका।
अपशब्द, मिथ्या, झूठ कोई लेखिनी हो लिख गई;
गुरुदेव हे ! जिनराज हे ! अबला विचारी रह गई ॥१६४॥

रुकती हुई हे लेखिनी ! आशा मना ले आज तू;
जाती हुई जिनराज से कुछ विनय कर ले आज तू।
तू छोड़ कर कर जा रही, कर कंप मेरा कर रहा;
जाने न दूंगा मैं प्रिये ! प्रस्ताव दूजा रख रहा ॥१६५॥

महावीर-गीति काव्य की प्रारम्भ रचना कर चुकी;
त्रयपठ-शलाका-नृप-चरित की नींव गहरी कर चुकी।
अतिरिक्त इनके भी मुझे तू भक्त अपना कह चुकी;
मैं भक्त तेरा हूँ वरे ! मुझसे अभिन्ना बन चुकी ॥१६६॥

आशे !

आशे ! अहो ! तुम धन्य हो, आराध्य देवी हो सदा;
आशे ! तुम्हारा विश्व में अस्तित्व नहिं यदि हो कदा—
दुखभूत इस संसार में होवे शरणतल फिर कहाँ ?
असहाय, निर्बल, दीन को आशे ! शरण हो तुम यहाँ ॥१६७॥

कितने न जाने प्राणियों का कर चुकी हो तुम भला;
जब जब विपद् जन पर पड़ी, आशे ! तुम्हारा बल मिला।
आशे ! तुम्हारी भक्ति कर बदजात भी स्वामी बने;
निर्जन विपिन, गिरिदेश भी आशे ! सजन नामी बने ॥१६८॥

बल,-शक्ति, मति,-धीवाहिनी आशे ! सदा हो दाहिनी;
हो आर्तजन को तू सुलभ धृति,-सुमति,-रति,-गतिदायिनी।
आशे ! तुम्हारे ही भरोसे जैन-जगती आज है;
आशे ! हमारे में रहो, तेरे करों में लाज है ॥१६९॥

शुभ कामना

हो दग्ध सारे शूल, निःजड़ हो हमारी जाड्यता;
हो भस्म यह विषया-लता, उन्मूल हो आलस्यता।
यह फूट कुत्सा हो रसागत, द्वेष, मत्सर नष्ट हो;
सम्फुल्ल हो शुचि प्रेम-तरु, भ्रातृत्व हम में पुष्ट हो ॥२००॥

स्वाधीन भारतवर्ष हो, स्वातन्त्र्ययुत हो जातियें;
सर्वत्र सुख-साम्राज्य हो, हो नष्ट अवमा व्याधियें।
तन में मनुज के स्फूर्ति हो, नस में प्रवाहित रक्त हो;
मस्तिष्क ध्याकर हो सभी के, ईश के सब भक्त हो ॥२०१॥

सब में परस्पर प्रेम हो, मत के न पीछे द्वेष हो;
सौहार्द सब में हो भरा, रसभृत हमारा देश हो।
प्रत्येक जन आगार हो विज्ञान, विद्या, ज्ञान का;
हो भक्त वह निज राष्ट्र का, हो भक्त हिन्दुस्तान का ॥२०२॥

सब हो महाशय, हृष्ट मानस, हो प्रसित अत्युद्यमी;
कौशल-कला-निष्णात हो,हो विज्ञ, शिक्षित सब क्षमी।
अभिजात हो, प्रतीद्य हो हम, हो सभी कृतलक्षणा;
सब हों प्रियंवद, वाक्कुशल, चित में न हो अमर्षणा ॥२०३॥

वाचाल, दुर्मुख हों नहीं, हम गर्ह्यवादिन हों नहीं;
दुष्कर्म से हो दुर्मनस, लोभी कुचर हम हों नहीं।
सर्वान्न भोजिन भी न हों, अरु हों न परपिण्डाद भी;
कोई न हम में हो बुभुक्षित, हों न हम सोन्माद भी ॥२०४॥

श्रीमन्त हो दक्षिण, सुकल, हो भक्त भारतवर्ष के;
सब श्रील हो, सब हो धनी, सब हो निमिष उत्कर्ष के।
सब हो अपावृत, जाल्म, -तिर्यक-दीर्घसूत्री हो नहीं;
हो ऊर्ध्वरेता, क्षान्त हम अति, संकसुक हम हों नहीं ॥२०५॥

हम में न कोई हो मलीमस, बीध्र हम होवें सभी;
शठ, जड़, पिशुन हम हों नहीं, आदर्श नर होवें सभी।
वंचक, अणक हम हों नहीं, निर्णिक्त हों, हम पूत हों;
हम दान्त हों, हम शान्त हों, गुणभूत हों, अवधूत हों ॥२०६॥

सुकुमार कोई हो नहीं, पृथु, पीन भी हों हम नहीं;
हम स्वस्थ, पुष्कल हों बली, हों कर्म में अमनस नहीं।
कोई न मार्गण, निःस्व हो, सब स्वावलम्बी धीर हों;
स्वप्नक, परांमुख हों नहीं, हम पुरुष पुङ्गम, वीर हो ॥२०७॥

सर्वत्र हो विद्या-कला प्रसरित हुई इस देश में,
हिन्दी यहाँ हो राष्ट्र-भाषा हिन्दु हों हम वेष में।
द्विज शूद्र में अति प्रेम हो; पति-पत्नि में जाम्पत्य हो;
गृहस्थ सभी का हो सुखद, गुणवान सब अपत्य हो ॥२०८॥

वह भूत भारतवर्ष अब यह वृद्ध भारतवर्ष हो;
समृद्धि हो वह भूत-सी, वह भूत-सा उत्कर्ष हो।
भारत हमारा इष्ट हो, राष्ट्रीयता से राग हो;
हम धर्म-वर्ती हों अचल, नव जन्म हो, नव जाग हो ॥२०९॥

विनय

हम पुण्य-शाली अब नहीं, भारत महाशय अब नहीं !
हे पतितपावन वृषभ-ध्वज ! पावन हमें कर दीजिये।
हम दृढ़ हृदय वैसे नहीं, वैसे महोत्साही नहीं !
वारण-पते ! करुणा-निधे ! अवलम्ब सत्वर दीजिये ॥

हम पददलित हैं, अज्ञ हैं, दाक्षिण्य हम सब भाँति हैं !
हे अश्व-ध्वज ! करके दया हमको अचिर अपनाइये।
बहुप्रद हमारा देश था, दीर्घायु थे हम भी यहाँ !
निःस्वत्व हमको देखकर, कुछ कीश-ध्वज ! दिलवाइये ॥

होते यहाँ थे हृष्ट मानस, भोग से थे दुर्मनस !
अब हाय ! विषयासक्त हैं, हे क्रौंचकेत ! बचाइये।
दक्षिण, सुकल थे, श्रील थे, अब कुंठ मानस हो गये !
मायावरण हमसे कृपालो ! कंजकेत ! हटाइये ॥

विश्रुत रहे हम आज तक, हम थे सभी कृतलक्षणा !
स्वस्तिक-पते ! अब हैं दुखी, श्रीमन्त फिर कर दीजिये।
स्वामी रहे हम विश्व के, अब-ध्वस्त हम हा ! आज हैं !
हे चन्द्र-ध्वज ! दुर्गत हमारी यह अभी हर लीजिये ॥

हम थे अपावृत एक दिन, हम विश्व के विश्वेश थे !
परतंत्र्य के इस दुर्ग से हे मच्छ-ध्वज ! छुड़वाइये।
आपन्न भारतवर्ष है, अब अन्न का भी कष्ट है !
श्रीवच्छकेतो ! कर दया कुछ अन्न तो दिखलाइये ॥

हम भूत गौरव खो चुके, अपना चुके खलपूपना!
गण्डकपते! दुर्दैव से रक्षा हमारी कीजिये।
सब भाँति भारत दीन है, इससा न दूजा हीन है!
हे महिष-ध्वज! इस दैन्यता का अपहरण कर लीजिये॥

करते न कर अब काम हैं, तन में न अब कुछ राम है!
हे घृष्टि-ध्वज! कुछ भूल कर चितवन इधर भी कीजिये।
संतप्त हैं, हम प्लुष्ट है, अवरीण हैं, हम रुग्ण हैं;
हे श्येन-ध्वज! इस दुख-विहग को ग्लस्त अब कर लीजिये॥

सर्वत्र हिंसावाद है, रसवाद है, रतिवाद है।
इस प्रेत पामर से हमें हे वज्र-ध्वज छुड़वाइये।
हम थे दिवौकस एक दिन, हम प्रेत अब हैं हो गये!
करके दया मृग-ध्वज! हमें अब तन पलट करवाइये॥

न्यग्रोध-सी दुर्भेद की शाखा प्रसारित हो रही!
हे मेष-ध्वज! दुर्भेद-वट उन्मूल कर बतलाइये।
हम लुब्ध हैं, सोन्माद हैं अरु हैं समुद्धत भी तथा!
भगवान नंद्यावर्त-केतो! धर्म-पथ दिखलाइये॥

भ्रातृत्व हम में है नहीं, हम द्वेष-मत्सर-प्राण हैं!
सम्यक्त्व भारत वर्ष में फिर कुम्भ-ध्वज! प्रगटाइये।
वह त्याग हम में है नहीं, वह ब्रह्म-व्रत हममें नहीं!
कच्छप-पते! वह ब्रह्मव्रत फिर से हमें सिखलाइये॥

सौहार्द हम में है नहीं, सब स्वार्थ का ही राग है!
हे नील सरसिज-ध्वज! हमें मानवपना दिखलाइये।

अभिभूत हम सर्वत्र हैं; आधून हैं, हम न्यस्त हैं !
हे कंबु-ध्वज, जग-शृंग पर फिर से हमें पहुँचाइये ।।

बढ़ते रहे गोकुल जहाँ, गोबध वहाँ अब बढ़ रहे !
हे नाग-ध्वज ! जग को अहिंसावाद फिर बतलाइये ।
हम भीत हैं, कायर, नपुंसक, स्त्रैणता में हैं सने ।
हे सिंह-ध्वज ! नशमें हमारे सिंह-बल प्रगटाइये ।।

हे अम्बिके ! हे कालिके ! उल्बण इन्हें कह दीजिये;
भगवान भारत वर्ष को द्रुत दौड़ कर अपनाइये ।।
भगवान भक्तोद्धार में हैं ! अब न देर लगाइये ।
अवसर नहीं है सोचने का मा ! इन्हें समझाइये ।।

यों पतित होकर नाथ ! तुमको भज सकेंगे हम, कहो ?
भगवान अपने भक्त को यों दीन लख सकते, कहो ?
तुम हो दिवौकस, हम अधोमुख, क्या उचित यह है तुम्हें ?
जिस स्थान से हम लख सकें तुमको वहाँ रखदो हमें ।।

तुम मोड़ दो चाहे गला अपने सुकोमल हाथ से;
इसमें न हमको है हिचक करुणानिधे ! हे श्रीपते !
पर स्पर्श तक करने न दो हमको किसीके हाथ से;
मुक्तीपते ! मुक्तीपते !! शिवश्रीपते ! शिवश्रीपते !!

फाल्गुन शुक्ला ६,
शनिश्चर १९९८
२१-२-४२.

बागरा (मारवाड़)

परिशिष्ट

[काग़ज़ की मँहगाई तथा छपाई-व्यय के बढ़ जाने से टिप्पणियें संक्षेप में दी जाती हैं, क्षमा करें। स्वर्गीय श्रीमद् विजयभूपेन्द्रसूरीश्वर जी के सुशिष्य मुनिराज श्री कल्याणविजयजी के सौजन्य से प्राप्त ग्रन्थोंके आधार पर टिप्पणियें दी गई हैं। लेखक इन मुनिराज का अपार आभारी है।]

१—गिरिराज हिमालय भूगोल-प्रसिद्ध पर्वत है और विश्व में सब पर्वतों से उच्चतम पर्वत है।

२—भगवान ऋषभदेव—ये इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न नाभि कुलकर के पुत्र थे। ये जैन धर्म के इस अवसर्पिणी कालमें आदि प्रर्वतक हुये हैं। असि (शस्त्रास्त्र), मसि (लेखन) और कसि (कृषी) ये तीनों कर्म सर्वप्रथम मानव-समाज में प्रचलित करने वाले भगवान् ऋषभ ही है। वेदों की रचना भी आप ही के काल में हुई। ७२ नर-कला, ६४ नारी-कला तथा १४ विद्याओं की रचना भी आप ही ने की। भगवान ऋषभ देव की आयु ८४ लाख पूर्व की थी। राजोपाधि सर्व प्रथम जगत में आपने ही धारण की थी।

३—विमलवाहन—ये प्रायः श्वेतगज की सवारी करते थे इस लिये इनका नाम विमलवाहन विश्रुत हो गया। ये प्रथम

कुलकर थे। भगवान् ऋषभ से ये ७ पीढ़ी पूर्व हो चुके थे।

४—रामचन्द्र—भगवान् रामचन्द्र को हिन्दू अवतार मानते हैं। ये सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। शायद ही ऐसा व्यक्ति विश्व में होगा जो पुरुषोत्तम राम को और उनके जीवन को भली भाँति न जानता हो। ये जैन धर्म के आठवें बलदेव थे। अपने जीवन के शेष भाग में इन्होंने संयम-व्रत ग्रहण कर मोक्ष-साधन किया था। रामके सदृश पितृ-आज्ञा पालक आज तक विश्व में अन्य नहीं हुआ।

५—रावण—रावण भी जग-विश्रुत है। इसने सीता का अपहरण किया था, अतः भगवान् रामचन्द्र को लंका पर आक्रमण करना पड़ा। रावण और उसके वंशज युद्ध में मारे गये और लंका का राज्य विभीषण को दिया गया। रावण दृढ़ जैन था! शास्त्रों का प्रगाढ़ पंडित था। विशेष के लिये देखो जैन रामायण।

६—भूमी-विलोड़न—कृषि-क्रिया भगवान् ऋषभदेवने सर्व प्रथम मनुष्यों को सिखाई थी और फलतः विश्व में सर्वत्र कृषि कर्म शनैः शनैः प्रसारित हो गया।

७—नं० ५ को देखिये।

८—देव-रण—हिन्दू-ग्रन्थों के अनुसार देवरण सृष्टि के बहुत आदिमें हो चुके हैं।

९—भगवान् ऋषभ देव ने वेद, शास्त्र, श्रुति की प्ररूपणा की थी। इन्होंने १८ प्रकार की लीपियें प्रचलित की थीं।

१०—भगवान् महावीर के समय में जैन, बौद्ध एवं वैदिकमत

इन तीनों में प्रतियोगिता एवं कालान्तर में मालिन्यता चल पड़ी थी। बौद्धमत आगे बढ़कर चीन, जापान, ब्रह्मा, पूर्वी यूरोप तक पहुँच गया था। इस धार्मिक-क्रान्ति ने यूरोप में भी धार्मिक क्रान्ति उत्पन्न करदी थी।

११-१२—बिना परिश्रम जहाँ भोगोपकरण उपलब्ध हो उसे भोग-भूमी कहते हैं। जैसे स्वर्ग आदि।

भारतवर्ष कर्म-भूमी है, क्योंकि यहाँ भोगोपकरण कर्म करने से उपलब्ध हो सकते हैं।

१३—१ भरतक्षेत्र (भारतवर्ष), २ हेमवंत, ३, हरिवास, ४ ऐरण्यवंत, ५ ऐरवंत युगल क्षेत्र, ६ रम्यक्युगलक्षेत्र, ७ महाविदेह क्षेत्र, ये सात क्षेत्र मिलकर जम्बू द्वीप के नाम से विश्रुत हैं।

१४—भगवान ऋषभदेव के पूर्व भरतक्षेत्र में कल्प-वृक्ष होते थे, जिनसे प्राणियों को इच्छानुसार भक्ष्य और अलंकारादि उपलब्ध हो सकते थे।

१५—२५ तक

चक्रवर्त्ती

सं०	नाम	माता	पिता	नगरी	वंश	आयु	शरीर मान	गति
१	भरत	सुमंगला	ऋषभदेव	विनीता	इक्ष्वाकुवंश	८४०००००० पूर्व	५०० धनुष	मोक्ष
२	सागर	यशोमति	सुमित्र	अयोध्या	,,	७२०००००० ,,	४५० ,,	,,
३	मघवा	भद्रा देवी	समुद्र विजय	सावत्थी	,,	५००००० वर्ष	४२॥ ,,	तृतीय देवलोक
४	सनत्कुमार	सहदेवी	अश्वसेन	हस्तिनापुर	,,	३००००० ,,	४१॥ ,,	,,
५	शान्ति	अचिरा	विश्वसेन	गजपुर	,,	१००००० ,,	४० ,,	मोक्ष
६	कुंथु	श्रीराणी	शूर राजा	,,	,,	९५००० ,,	३५ ,,	,,
७	अर	श्रीदेवी	सुदर्शन	,,	,,	८४००० ,,	३० ,,	,,
८	सुभूम	तारा	कृतवीर्य्य	हस्तिनापुर	,,	६०००० ,,	२८ ,,	सप्तम नरक
९	महापद्म	ज्वाला	पद्मोत्तर	वाणारसी	,,	३०००० ,,	२० ,,	मोक्ष
१०	हरिषेन	मेरादेवी	महाहरि	कंपिलपुर	,,	१०००० ,,	१५ ,,	,,
११	जयनाम	वप्रादेवी	विजय	राजगृह	,,	३००० ,,	१२ ,,	,,
१२	ब्रह्मदत्त	चुलनी	ब्रह्मराज	कंपिलपुर	,,	७०० ,,	७ ,,	सप्तम नरक

वासुदेव

सं०	नाम	माता	पिता	नगर	आयु	शरीर मान	गति
१	त्रिपृष्ठ	मृगावती	प्रजापति	पोतनपुर	८४००००० वर्ष	८० धनुष	७ पृथ्वीलोक
२	द्विपृष्ठ	पद्मादेवी	ब्रह्मराजा	द्वारका	७२००००० ,,	७० ,,	६ ,,
३	स्वयंभू	पृथ्वीदेवी	भद्रराजा	,,	६०००००० ,,	६० ,,	६ ,,
४	पुरुषोत्तम	सीतादेवी	सोमराजा	,,	३०००००० ,,	५० ,,	६ ,,
५	पुरुषसिंह	अमृतादेवी	शिवराजा	अंबपुर	१०००००० ,,	४५ ,,	६ ,,
६	पुरुष पुंडरीक	लक्ष्मीदेवी	महाशिर	चक्रपुरी	६५००० ,,	२९ ,,	६ ,,
७	दत्तनामा	शेषवती	अग्निसिंह	कासीनगर	५५००० ,,	२६ ,,	५ ,,
८	लक्ष्मण	सुमित्रा	दशरथ	अयोध्या	१२००० ,,	१६ ,,	४ ,,
९	श्रीकृष्ण	देवकी	वसुदेव	मथुरा	१००० ,,	१० ,,	३ ,,

बलदेव

सं०	नाम	माता	पिता	नगर	आयु	शरीर मान	गति	प्रति वासुदेव
१	अचल	भद्रा देवी	प्रजापति	पोतनपुर	८५०००००० वर्ष	८० धनुष	मोक्ष	अश्वगिरि
२	विजय	सुभद्रा	ब्रह्मराजा	द्वारका	७५००००० ,,	७० ,,	,,	तारक
३	भद्र	सुप्रभा	भद्रराजा	,,	६५००००० ,,	६० ,,	,,	मेरक
४	सुप्रभ	सुदर्शना	सोमराजा	,,	५५००००० ,,	५० ,,	,,	मधु
५	सुदर्शन	विजया	शिवराजा	अंबपुर	१७००००० ,,	४५ ,,	,,	निस्कुम्भ
६	आनन्द	विजयंती	महासिंह	चक्रपुरी	८५००० ,,	२९ ,,	,,	बली
७	नन्दन	जयंती	अग्निसिंह	कासीनगर	५०००० ,,	२६ ,,	,,	प्रह्लाद
८	रामचंद्र	अपराजिता	दशरथ	अयोध्या	१५००० ,,	१६ ,,	,,	रावण
९	बलभद्र	रोहिणी	वसुदेव	मथुरा	१२००० ,,	१० ,,	ब्रह्मदेवलोक	जरासिन्ध

तीर्थंकर

सं०	नाम	पिता	माता	नगर	लंछन	शरीर वर्ण	शरीर मान	आयु
१	ऋषभदेव	नाभिराजा	मरुदेवा	अयोध्या	वृषभ	स्वर्ण	५०० धनुष	८४ लक्ष पूर्व
२	अजितनाथ	जितशत्रु	विजया	,,	हस्ति	,,	४५० ,,	७२ ,,
३	संभवनाथ	जितारी	सेनाराणी	श्रावस्ति	अश्व	,,	४०० ,,	६० ,,
४	अभिनंदन	संवर राजा	सिद्धार्था	अयोध्या	कपि	,,	३५० ,,	५० ,,
५	सुमतिनाथ	मेघभूप	सुमंगला	,,	क्रौंच	,,	३०० ,,	४० ,,
६	पद्मप्रभ	श्रीधर	सुसीमा	कौशांबी	पद्म	रक्त	२५० ,,	३० ,,
७	सुपार्श्वनाथ	सुप्रतिष्ठ	पृथ्वी	काशी	स्वस्तिक	स्वर्ण	२०० ,,	२० ,,
८	चन्द्रप्रभ	महासेन	लक्ष्मणा	चन्द्रपुरी	चन्द्र	श्वेत	१५० ,,	१० ,,
९	सुविधिनाथ	सुग्रीव	रामा	काकंदी	मकर	,,	१०० ,,	२ ,,
१०	शीतलनाथ	दृढ़रथ	नन्दा	भद्दिलपुर	श्रीवत्स	स्वर्ण	९० ,,	१ ,,
११	श्रेयांसनाथ	विष्णुनृप	विष्णुमाता	सिंहपुर	गण्डक	,,	८० ,,	८४ लक्ष वर्ष

१२	वासुपूज्य	वसुपूज्य	जया	चम्पा	महिष	रक्त	७० धनुष	७२ लाख वर्ष
१३	विमलनाथ	कृतवर्मा	श्यामा	कांपिल्यपुर	सूकर	स्वर्ण	६० ,,	६० ,,
१४	अनंतनाथ	सिंहसेन	सुयशा	अयोध्या	श्येन	,,	५० ,,	३० ,,
१५	धर्मनाथ	भानू	सुव्रता	रत्नपुर	वज्र	,,	४५ ,,	१० ,,
१६	शान्तिनाथ	विश्वसेन	अचिरा	हस्तिनापुर	मृग	,,	४० ,,	१ ,,
१७	कुंथुनाथ	सुरराजा	श्रीदेवी	,,	मेष	,,	३५ ,,	९५००० वर्ष
१८	अरनाथ	सुदर्शन	देवी	,,	नंदावर्त्त	,,	३० ,,	८४००० ,,
१९	मल्लिनाथ	कुम्भ नृप	प्रभावती	मिथिला	कुम्भ	नील	२५ ,,	५५००० ,,
२०	मुनिसुव्रत	सुमित्र	पद्मावती	राजगृह	कच्छप	कृष्ण	२० ,,	३०००० ,,
२१	नमिनाथ	विजय	वप्रा	मिथिला	नीलकमल	स्वर्ण	१५ ,,	१०००० ,,
२२	नेमिनाथ	समुद्रविजय	शिवा	शौरीपुर	शंख	कृष्ण	१० ,,	१००० ,,
२३	पार्श्वनाथ	अश्वसेन	वामा	बनारस	सर्प	नील	९ हाथ	१०० ,,
२४	महावीर	सिद्धार्थ	त्रिसला	क्षत्रीकुण्ड	सिंह	स्वर्ण	७ ,,	७२ ,,

२७—राजा मयूरध्वज—ये बड़े धर्मिष्ठ, दृढ़व्रती एवं दृढ़ वचनी थे। इनकी कथा सर्वत्र विश्रुत है। वचनबद्ध होकर ये अपने प्रिय पुत्र ताम्रध्वज की देह को भी चीर कर दो करने में नहीं हिचकाये थे।

२८—शालिभद्र—ये पूर्व भव में अहीर थे। इनकी माता बड़ी कठिनाई से उदर-भरण करती थी। प्रायः माता-बेटे को निरन्न रह कर कितने ही दिन निकालने पड़ते थे। एक दिन इनकी माता ने बड़ा श्रम करके इनके लिये क्षीर बनाई। माता कार्यवशात् कहीं थोड़ी देर के लिये इधर उधर चली गई। पीछे से एक मुनिराज आहारार्थ इनके द्वार पर आये और इन्होंने वह समस्त क्षीर मुनिराज को बहरा दी। जब माता लौट कर आई और देखा कि क्षीर बूंद भर भी अवशिष्ट नहीं बची है; उसने सोचा लड़का क्षुधातुर था अतएव इतनी क्षीर खा सका। शाली-भद्र को दृष्टि बैठ गई और पञ्चत्व को प्राप्त हुए।

२९—भगवान शान्तिनाथ—ये पूर्वभव में राजा मेघरथ थे। एक दिन ये राजसभा में सिंहासनस्थ थे कि अचानक उनके अंग में आकर एक संतप्त कपोत गिर पड़ा और शरण शोधने लगा। मेघरथ ने देखा कि एक बाज उसका पीछा किये हुए है। इतने में बाज भी राजा के संनिकट आगया और बोला, 'राजन्! मेरा भक्ष्य मुझे दीजिये। मुझे क्षुधा से पीड़ित रखकर आप कपोत की रक्षा करते हैं, एक पर स्नेह और एक से द्वेष—यह न्याय-संगत नहीं। अगर आप अपनी देह से आमिष काटकर इस कपोत के तोल के बराबर मुझे दें तो मैं इस कपोत को छोड़

सकता हूँ।' राजा ने तुला मंगवाई और एक ओर कपोत को रक्खा और एक ओर अपनी देह से आमिष काटकर रक्खा। परन्तु कपोत के भार के बराबर वह न हो सका। राजा ने फिर मांस काटकर रक्खा लेकिन फिर भी कपोत के तोल के सम न हो सका; तब राजा मेघरथ स्वयं तुला पर चढ़ गये। कपोत एवं बाज दोनों प्रकट होकर कहने लगे; 'राजन्! हम देव हैं, और आपके धर्म की परीक्षा लेने आये थे। क्षमा कीजिये।' राजा की देह पूर्ववत् हो गई और वे दोनों देव अपने-अपने स्थान को गये। हिन्दू समाज में यह कथा राजा शिवि के नाम से प्रसिद्ध है।

३०—राजा हरिश्चन्द्र सत्यव्रती—ये दृढ़ सत्य-व्रत के लिये सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। ये भगवान शान्तिनाथ के समय में हुए थे। इन्होंने सत्य की रक्षा के लिये श्मशान की प्रहरी भी की थी। प्यारी प्रिया तारा को तथा प्यारे पुत्र रोहीताश्व को भी सत्य के लिये ये बेचते हुए व्याकुल नहीं हुए थे। अन्त में भगवान शान्तिनाथ से इन्होंने संयम-दीक्षा ग्रहण की और मोक्षाराधन किया।

३१—नं० ४ देखिये।

३२—नं० १५ से २५ देखिये।

३३—लक्ष्मण—राजा दशरथ की रानी सुमित्रा के लड़के थे और रामचन्द्र के अनुज थे। ये ८ वें वासुदेव थे। इन्होंने रावण को मारा था।

३४—भरत—कैकेयी के पुत्र थे और रामचन्द्र के वैमात्रेय

भाई थे। रामचन्द्र के वनवास चले जाने पर भी भरत ने अयोध्या का राज्य रामचन्द्र ही के नाम से किया था। भरत से भाई आज तक फिर नहीं हुए।

३५-३६—अर्जुन, भीम—ये कुन्ती के पुत्र और धर्मराज युधिष्ठिर के छोटे भाई थे। इनका शौर्य्य जग-विख्यात है। ये पाँच भाई थे। अन्त में पाँचों भाई संयम-व्रत ग्रहण कर सिद्धाचल पर चले गये थे। विशेष के लिये देखो 'जैन महाभारत' (गुजराती में)।

३७—युधिष्ठिर—नं० ३६ को देखो। इनके धर्म-तेज से इनका रथ चलते समय भूमि से एक बालिस्त ऊपर रहता था।

३८—नं० ४ को देखिये।

३९—कर्ण—ये कुमारी कुन्ती के पुत्र थे। ये बड़े वीर व दानी थे। मृत्यु-शैय्या पर पड़े हुए भी इन्होंने भिक्षुक को रिक्तकर नहीं लौटने दिया और अपने मुँह से चूप निकाल कर उसे प्रदान की।

४०—राजर्षि बली—चक्रवर्ती महापद्मकुमार ही हिन्दू-ग्रन्थों में राजा बली के नाम से प्रसिद्ध है। शेष दोनों ओर के ग्रन्थों की घटना एक है। देखो 'त्रिषष्टि शलाका पुरुष-चरित्र भाग ६ वाँ' (गुजराती में)।

४१—श्री कृष्ण—ये ९ वें वासुदेव थे। देखो त्रि० श० पु० चरित्र भाग ८ वाँ०।

४२—लव-कुश—ये रामचन्द्र जी के पुत्र थे। रामचन्द्र जी के

अश्वमेध-यज्ञ के अवसर पर जो इन दोनों भाईयों ने शौर्य दिखाया वह सर्वत्र प्रसिद्ध है।

४३—अभिमन्यु—यह अर्जुन का पुत्र था। इसके पराक्रम को कौन मनुष्य ऐसा है जो नहीं जानता है। कुरुक्षेत्र के महासमर में इस षोड़श वर्षीय कुमार ने सप्त महारथियों के भी दाँत खट्टे कर दिये थे। फिर अन्त में यह अधर्म नीति से मारा गया था।

४४—भगवान नेमिनाथ—ये समुद्रविजय के पुत्र और श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे। ये २२ वें तीर्थंकर थे। जब आप अश्वारूढ़ होकर उग्रसेन की पुत्री राजीमती से पाणी-पीड़न करने के लिये श्वशुर-गृह को तोरण-बध हित जा रहे थे कि आपने बीच में से ही अश्व को पशु-गृह में अगणित पशुओं को बन्धी देखकर और यह जानकर कि इन्हीं पशुओं के आमिष का वरातिथियों को भोजन दिया जायगा, मोड़ दिया और आप सीधे गिरनार पर्वत पर चढ़ गये और संसार छोड़ कर दीक्षा ग्रहण कर ली। ऐसे उदाहरण संसार में बहुत कम हैं। विशेष वर्णन के लिये देखो त्रि० श० पु० चरित्र भाग ८ वाँ।

४५—भगवान महावीर—ये हमारे अन्तिम तीर्थंकर हैं। जितने उपसर्ग भगवान वीर ने सहन किये, उतने संसार में शायद ही किसी महात्मा ने सहन किये हों। चण्ड कोशिक सर्प ने इन्हें कायोत्सर्ग में काटा, कायोत्सर्ग में ही आप के कानों में ग्वालों ने तीक्ष्ण कीलें ठोके; अनार्य देश में असंख्य आपको कष्ट सहन करने पड़े, दुष्ट गोशाला ने आपको सर्वायुभर दुःख

दिया। उपसर्गों का नाम मात्र गिनाने के लिये भी एक दस्ता कागज चाहिए। देखो त्रि० श० पु० चरित्र भाग १० वाँ।

४६—भगवान पार्श्वनाथ—तक जो हमारे २३ वें तीर्थंकर हैं जैन-इतिहास सरलता से उपलब्ध है। कठिनतया अब अब ऐतिहासिक शोध भगवान् नेमिनाथ तक जाती है। इसके पूर्व का समस्त इतिहास अन्धकार में है। संभव है आगे जाकर पता आगे जा सके।

४७—गजसुकुमाल—ये ९ वें वासुदेव श्रीकृष्ण के छोटे भाई थे। इनके श्वशुर शोमशर्मा ने इनके शिर पर जब कि ये ध्यानस्थ कायोत्सर्ग में श्मशान क्षेत्र में खड़े थे, सजग अंगारे रख दिये थे। फिर भी आप ध्यानस्थ रहे और अन्त में अन्तकृत-केवली होकर आप मोक्ष-पद को प्राप्त हुए।

४८—मेतार्यमुनि—ये परम दयालु थे। आपने अपने प्राण देकर भी सुवर्ण जौ चुगने वाले क्रौंच पक्षी की प्राण-रक्षा की थी।

४९—अर्णिका पुत्र—ये बड़े समता भावी थे। एक नाविक ने आपको गङ्गा की जल-धारा में फैंक दिया था जब कि आप नाव में बैठे हुए गंगा पार कर रहे थे। परन्तु आपने उस पर तनिक भी आक्रोष नहीं किया। अन्त में अन्तकृत-केवली होकर आप मोक्ष गये।

५०—खन्दकऋषि—ये बड़े समताप्राण थे। राजाज्ञा से आपकी चर्म उतारी गई थी, लेकिन आपने समताभाव नहीं

छोड़ा और अन्त में आप भी अन्तकृत-केवली होकर शिवपद को प्राप्त हुए।

५१—सुदर्शन श्रेष्ठी—ये बड़े शीलवन्त थे। चंपापति राजा दधिवाहन की अभया राणी ने आप पर मिथ्या कलंकारोपण किया था और राजा ने आपको शूली पर चढ़ाये जाने की आज्ञा दी थी। लेकिन सुदर्शन श्रेष्ठी के शील के प्रताप से शूली भी पुष्पासन हो गई।

५२—स्थूलभद्र—ये राजा नन्द के मन्त्री शकटाल के पुत्र थे। आपने संसार से ऊबकर दीक्षा ग्रहण कर ली थी। आप शुद्ध संयम-व्रती थे। आपने एक बार कोशा गणिका के घर जो गृहस्थावस्था में आपकी प्रेमिका रह चुकी थी चतुर्मास किया था और उसके अनेक लोभन-प्रलोभन दिखाने पर भी आप शील में बड़े ही अडिग रहे थे।

५३—पंचपरमेष्ठि-नमस्कार मन्त्र—यह जैन धर्म का सर्वश्रेष्ठ मंगल मन्त्र है। इसमें अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पाँचों परम महात्माओं को नमस्कार किया गया है।

५४—अरिहंत—द्वेषादि अभ्यंतर दोषों को जीतने वाले को अरिहंत कहते हैं। इनके अष्ट प्रातिहार्य, चार मूल अतिशय होते हैं। इनकी वाणी पैंतीस गुणयुक्त होती है।

५५—सिद्ध—सिद्ध भगवान के अष्ट गुण होते हैं।

५६—आचार्य—छत्तीस गुणधारी को आचार्य कहते हैं। देखो पंचिंदिय सूत्र।

५७—खपुटाचार्य—ये प्रखर तेजवन्त आचार्य थे। आपने अनेक बौद्ध विद्वानो को शास्त्रार्थ में निस्तेज किया था। आपने प्रवर बौद्ध विद्वान् बहुकर को शास्त्रार्थ में हराया था। भृगुकच्छ नगर में अब भी एक गौतम बुद्ध की अर्धनमित मूर्ति है। कहते हैं कि इस बुद्ध मूर्ति ने खपुटाचार्य के आदेश पर उन्हें वंदन किया था।

५८—स्वयंप्रभसूरि—ये श्रुतज्ञान के धारी महा तेजस्वी आचार्य थे। आपने लाखों हिंसकों को अहिंसक बनाया था। मरूप्रान्त के अन्तरगत आया हुआ श्रीमालपुर एक समय परम-हिंसक था। आप श्री ने ही उस समस्त नगर को तथा वहाँ के राजा जयसेन को जैन बनाया था। श्रीमाल (एक जैन जाति) श्रीमाल-पुर से ही जैन बने थे। प्राग्वट वंश को भी आपने ही जैन बनाया था, जो अब जैन पोरवाल जाति के नाम से विद्यमान है।

५९—रत्नप्रभसूरि—आपने मरुधर प्रान्त अन्तर्गत आई हुई ओसिया नगरी के निवासियोंको जिसका पूर्व नाम उपकेशपुर था जैन बनाया था। तभी से ओसिया नगरी के निवासी ओस-वाल कहलाते हैं।

६०—समिताचार्य—ये वज्रस्वामी के मामा थे, परम तपस्वी आचार्य थे। इन्हें आते हुए देखकर जलपूर्ण नदी, सर भी इनके लिये मार्ग कर देते थे।

६१—वज्रसेनाचार्य—ये परम तेजस्वी आचार्य थे। इनके समय में बारह वर्ष का भयंकर दुष्काल पड़ा था। आपने सोपारक नगर के निवासी श्रेष्ठी जिनदत्त की स्त्री ईश्वरी को

उसके घर आहार ग्रहण करते हुए कहा कि अब कल से सुकाल होगा और ऐसा ही हुआ।

६२—रत्नशेखरसूरि—प्रबल जैन विद्वान थे। आपने 'श्री-पाल-चरित्र' तथा गुणस्थानकक्रमारोह' नामक अनेक उत्तम ग्रन्थ लिखे हैं। बादशाह फिरोज तुगलक आपका बड़ा सम्मान करता था।

६३—चन्द्रसूरि—ये आचार्य मागधी भाषा के प्रगाढ़ पण्डित थे। इन्होंने मागधी में संग्रहणी नाम का ग्रन्थ लिखा है। आपने 'निर्यावली सूत्र' पर भी टीका लिखी है। ये आचार्य तेरहवीं शताब्दी में हुए हैं।

६४—प्रसन्नचन्द्र राजर्षि—ये महान आचार्य हो चुके हैं। इन्होंने अपना राज्य अपने छोटे भाई को देकर दीक्षा ली थी।

६५-६६—कालिकाचार्य व राजा गर्दभिल्ल—राजा गर्दभिल्ल उज्जैन का राजा और प्रसिद्ध विक्रमादित्य का पिता था। इसने सरस्वती नाम की साध्वी को जो अति सुन्दर थी और तृतीय कालिकाचार्य की बहन थी पकड़ कर अंतःपुर में डाल दी। निदान कालिकाचार्य ने आचार्य वेष को परित्यक्त कर अनार्य देश में से सेना संग्रहीत की। राजा को परास्त कर साध्वी के शील की रक्षा की और उसे राजा के चंगुल से मुक्त की।

६७—इन्द्राचार्य—इन आचार्य ने 'योगविधि' नामक अद्भुत ग्रन्थ लिखा है।

६८—तिलकाचार्य—ये महान प्रसिद्ध आचार्य थे। इन्होंने
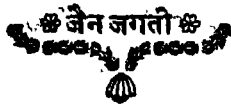
'आवश्यकलघुवृत्ति' नाम का ग्रन्थ लिखा है। 'दशवैकालिक-सूत्र' पर भी टीका लिखी है।

६९—द्रोणाचार्य—इन्होंने 'ओघनियुक्ति' पर टीका लिखी है।

७०—मल्लवादी आचार्य—इन्होंने पद्म चरित्र (जैन रामायण) चौबीस हज़ार श्लोकों में लिखा है। ये विक्रम चतुर्थ शती में विद्यमान थे। भृगुकच्छ में आपने बौद्धाचार्यों को शास्त्रार्थ में परास्त किया था अतएव आपको 'वादी' पद दिया गया।

७१—सूराचार्य—ये महान पण्डित थे। इन्होंने प्रसिद्ध भोजराजा की विद्वद्-मण्डली को भी दर्शन-शास्त्रार्थ में परास्त किया था।

७२—वीराचार्य—ये भी प्रखर शास्त्र पारंगत थे। इन्होंने अणहिलपुर में सिद्धराज की राजसभा में बौद्धाचार्यों को शास्त्रार्थ में परास्त किया था।

७३—जिनेश्वरसूरि—ये महान विद्वान् थे। ये ११ वीं शती में हुए हैं। इन्होंने पंचलिंगीप्रकरण, वीरचरित्र, लीलावती-कथा, कथारत्न कोष आदि अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

७४—जीवदेव आचार्य—ये महान् प्रभावक साधु थे। इन्होंने देह-त्याग करते समय अपने अन्तेवासियों को अपना शिर चूर्ण करने की आज्ञा दी थी। क्यों कि इनको भय था कि कोई योगी इनका शिर लेकर उत्पात मचावेगा।

७५—दुर्गाचार्य—ये विक्रम सं० ६०० में विद्यमान थे। इन्होंने अगणित धन-द्रव्य को परित्यक्त कर दीक्षा ली थी।

७६—मानतुंगाचार्य—इनका नाम अधिक प्रसिद्ध है। ये

महान् विद्वान थे। प्रसिद्ध भक्तामर-स्तोत्र इन्हीं की रचना है। कहते हैं कि आपने अपनी ४४ (चौमालीस) बेड़ियें चौमालीस श्लोकों की रचना करते हुए काटी थीं।

७७—आर्य सुहस्ति—ये महान तेजस्वी आचार्य थे। प्रसिद्ध जैन सम्राट् संप्रति के गुरु थे। ये भूत, भविष्यत, वर्तमान के ज्ञाता थे।

७८—सम्प्रति—सम्राट अशोक के प्रपौत्र थे। ये दृढ़ जैन-धर्मी थे। इन्होंने अपने शासन-काल में सवा लक्ष नूतन जिन मन्दिर बनवाए, सवा क्रोड़ नूतन जिनबिंब करवाये, तेरह सहस्र प्राचीन जिनमन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया और सप्त शत दान-शालायें बनवाई। देखो 'सम्राट सम्प्रति' नामकी पुस्तक। आज भी सम्राट सम्प्रति के बनवाये हुए कितने ही मन्दिर, स्तूप हजारों संकट सहन करके भी सम्प्रति के नाम को अमर रक्खे हुए हैं।

७९—मानदेवाचार्य—ये परमहंस थे। एक समय तक्षशीला नगरी में भयंकर उपद्रव प्रारम्भ हो गया। आप उस समय नादोलपुर में विराजमान थे। आपने नादोलपुर में 'शान्ति-स्तोत्र' बनाया और उसे तक्षशीला को भेजा। ज्योंहि वहाँ 'शान्ति-स्तोत्र' का पाठ किया गया कि एक दम सारा उपद्रव शान्त हो गया।

८०—अभयदेवाचार्य—इस नाम के छः प्रसिद्ध आचार्य हो चुके हैं। इन छः में भी अधिक प्रभावक जिनेश्वरसूरि के शिष्य अभयदेवसूरि हैं। आपने ग्यारह अङ्गों की टीकायें लिखी हैं। आप नागार्जुन के समकालीन थे।

८१—शान्तिसूरि—ये आचार्य धनपाल और सूराचार्य के

समकालीन है। आपने भी राजा भोज के विद्वद्गणों को निष्प्रभ कर दिया था। अतएव राजा भोज ने आपको 'वादी वेताल' की उपाधि प्रदान की थी।

८२—खप्पभट्टाचार्य—इन्होंने मथुरा के राजा आम को जैन-धर्मी बनाया था। आम राजा दुराचारी और स्त्रीलंपट था। आम राजा ने ज्योंहि जैनधर्म स्वीकार किया कि सारी मथुरा नगरी जो शैव थी जैन धर्मानुयायी बन गई।

८३—जिनदत्तसूरि—ये खरतरगच्छ के महा प्रसिद्ध आचार्य हो चुके हैं। आज भी स्थान २ पर आपके नाम से दादा-बाड़ियें मौजूद हैं। आपने जैनधर्म का अतिशय विस्तार-प्रचार किया था। ये आचार्य १२ वीं शती में हुए हैं।

८४—जिनकुशलसूरि—ये खरतरगच्छ के आचार्य थे। आपने 'चैत्यवंदनकुलकवृत्ति' नाम का ग्रंथ लिखा है।

८५—जिनप्रभसूरि—ये प्रगाढ़ विद्वान थे। इनका ऐसा नियम था कि प्रत्येक दिन कोई नव स्तोत्र, सूत्र रच कर ही अन्न-जल ग्रहण करना। इन्होंने 'द्वयाश्रय महाकाव्य' लिखा है। इनका काल १४ वीं शती है।

८६—चन्द्रकीर्तिसूरि—इन्होंने 'सारस्वतव्याकरण' पर 'चन्द्रकीर्ति' नाम की टीका लिखी है।

८७—प्रभाचन्द्रसूरि—ये आचार्य १४ वीं शती में हुये हैं। इन्होंने 'प्रभाविक चरित्र' नामका ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा है।

८८—आर्य आशाधर—ये संस्कृत के प्रख्यात पण्डित थे। इन्होंने 'कुवलयानन्दकारिका' नामक अलङ्कार का ग्रन्थ लिखा है।
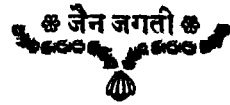
८६—आचार्य अमितिगति—ये आचार्य भी बड़े विद्वान थे। इन्होंने 'सुभाषितरत्नसंदोह', 'धर्मपरीक्षा' आदि कितने ही सुन्दर ग्रन्थ लिखे हैं।

९०—श्री हेमचन्द्राचार्य—ये सौराष्ट्रपति कुमारपाल के गुरु थे। असम विद्वान थे। इन्होंने संस्कृत, प्राकृत में सैकड़ों ग्रन्थ लिखे। वैयाकरण अद्वितीय थे। 'हेमचन्द्रव्याकरण' इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इनकी लेखनी की शक्ति को समस्त साहित्य-संसार स्वीकार करता है। इन्होंने साढ़े तीन करोड़ से भी ऊपर श्लोकों की रचना की है।

९१—सीता—महासती सीता को कौन नहीं जानता। अग्नि-परीक्षा के समय सीता के शील-प्रभाव से अग्नि भी शीतल जल बन गई थी। अग्नि-परीक्षा हो लेने के पश्चात् सीता ने दीक्षा ग्रहण कर ली और चारित्र पालन किया।

९२—द्रोपती—द्रोपती के चीरापकर्षण की कथा सर्वत्र प्रसिद्ध है। उसके शील के प्रभाव से चीर का भी अंत न आया और दुशासन स्वयं लज्जित एवं थकित होकर बैठ गया।

९३—मैना सुन्दरी—यह श्रीपाल कोटीभट की राणी थी। जब मैना का श्रीपाल के साथ प्रणय हुआ था उस समय श्रीपाल कुष्ट रोग से अतिशय पीड़ित था। मैना ने प्रथम दर्शन पर ही श्री सिद्धचक्र की पूजा करके चरणोदक लेकर श्रीपाल पर छिड़का कि श्रीपाल पूर्ववत् रूपजीव हो गया। देखो 'श्रीपालरासो।'

९४—शैव्या—रानी शैव्या को तारा भी कहते हैं। राजा हरिश्चन्द्र ने तारा को एक पुरोहित के हाथ बेची थी, लेकिन शैव्या

अहिचक बिक गई और अपने पति को ऋण-मुक्त किया। देखो 'हरिश्चन्द्ररास'।

९५—तारा—यह राजकुमार कनक की बहिन थी। यह बचपन में ही अपने परिवार से बिछुड़ गई थी। इसने अनेक संकट सहन किये थे।

९६—कुसुमबाला—यह भी महा सती थी। इसने अपने शील की रक्षा करने के लिये बड़े-बड़े संकटों को सहन किया था।

९७—सुभद्रा—अपने शील के प्रभाव से इसने चलनी से कुएँ में से पानी निकाल कर बढ़ते हुये जल-प्रवाह को छिटक कर शान्त किया था। यह चंपानगरी—निवासी श्रेष्ठि सुत बुद्धदास की स्त्री थी।

९८—शिवा—चण्डप्रद्योत की राणी और चेटक राष्ट्रपति की पुत्री थी। इसने नगरी में लगती हुई प्रबल अग्नि को अपने शील के प्रभाव से शमन की थी।

९९—कलावती—शंख नृपति की राणी थी। एक समय राजा ने मिथ्या शंका से कलावती के दोनों हाथ कटवा दिये। लेकिन अवसर आये शील के प्रभाव से कलावती के दोनों हाथ पूर्ववत हो गये।

१००—वासुमति—इसका अपर नाम चंदनबाला है। यह राजा दधिवाहन की पुत्री थी। आजन्म ब्रह्मचारिणी थी और भगवान महावीर की सुयोग्या शिष्या थी। भगवान् का कठिन अभिग्रह चंदनबाला के ही हाथ पूर्ण हुआ था। इसने जीवन में जितने संकट सहन किये उतने दुःख शायद ही किसी अन्य सती

ने सहन किये होंगे। एक रथवान इसे और इसकी माता धारिणी को पकड़ कर जंगल की ओर भागा। माता ने विपिन में हो जिह्वा खींचकर प्राण-त्याग किया। गणिकाने इसे क्रय करी, श्रेष्ठि की ने इसे बंदी बनायी। लेकिन अंत में इसके सब उपसर्ग शमन हो गये।

१०१—दमयन्ती—राजा नल की राणी दमयन्ती की भी कथा सर्वत्र विश्रुत है। इसने बड़ी चतुराई से अपने पति को पुनः शोधा था।

१०२—ब्राह्मी—भगवान ऋषभदेव की पुत्री थी। यह आजन्म ब्रह्मचारिणी रही थी। अंत में इसने दीक्षा लेकर चारित्र पाला।

१०३—सुज्येष्ठा—यह राष्ट्रपति चेटक की पुत्री थी। यह भी आजन्म अखण्ड ब्रह्मचारिणी रही थी। इसने भी चारित्र-व्रत ग्रहण किया था।

१०४—सुन्दरी—यह बाहुबल की बहिन और भगवान ऋषभ देव की पुत्री थी। यह भी अखण्ड ब्रह्मचारिणी रही थी।

१०५—पुष्पचूला—यह अन्निकापुत्र आचार्य की परम सुयोग्या शिष्या थी और अद्वितीया सेवापरायणा थी।

१०६—धारिणी—इस नाम की अनेक वराङ्गनायें हो गई हैं। यहाँ हमारा अर्थ चम्पानरेश दधिवाहन की शीलवती राणी धारिणी से है जो चन्दनबाला की माता थी। इसने अपने शील की रक्षा करने के लिये अनेक प्रयत्न किये थे अन्त में कोई उपाय

न चलता देखकर यह जिह्वा खींच कर पंचत्वगति को प्राप्त हुई थी।

१०७—मदनरेखा-यह राजा युगबाहु की पतिपरायणा राणी थी। युगबाहु को इसके देवर मणीरथ ने मार डाला था और इसे उसकी प्रिया बनने के लिये अनेक प्रलोभन व संकट दिये थे। अन्त में यह प्रासाद छोड़कर भाग निकली थी और दीक्षा ग्रहण कर चारित्र पालने लगी थी।

१०८—नर्मदा-यह महेश्वरदत्त की पतिव्रता स्त्री थी। इसने आचार्य सुहस्ति के पास दीक्षा ग्रहण की थी।

१०९—सुलसा-यह परमहंसा महिला थी। इसके बत्तीस पुत्रों का मरण एक साथ हुआ था, लेकिन यह उनके मरण पर तनिक भी शोकातुर नहीं हुई थी। और अपने पति को धर्म का प्रतिबोध देकर उसे इसने शोक-सागर में डूबने से उबारा। अन्त में इसने भी दीक्षा लेकर चारित्र-व्रत का पालन किया।

११०—सुसीमा-यह श्रीकृष्ण वासुदेव की पतिपरायणा राणी थी। इसके शील की परीक्षा देवों ने अनेक प्रकार से ली, लेकिन यह परीक्षा में सदा खरी उतरी। अन्त में इसने भी दीक्षा लेकर चारित्र-धर्म का पालन किया।

१११—अंजना-यह हनुमान की माता और पवनकुमार की पतिव्रता राणी थी। अंजना की कथा प्रायः सर्वत्र प्रसिद्ध है।

११२—पद्मावती-यह राष्ट्रपति चेटक की पुत्री चम्पानरेश दधिवाहन की पतिपरायणा राणी और करकंडू की माता थी। इसने भी दीक्षा लेकर चारित्र-व्रत ग्रहण किया था।

११३—राजीमती–इसका पाणि-ग्रहण कुमार नेमनाथ के साथ होना निश्चित हुआ था; लेकिन कुमार नेमनाथ तो दीन पशुओं का जो बध किये जाने को पशु-गृह में बन्ध किये गये थे, करुण रुदन श्रवण कर तोरण पर से लौट गये थे। इसने अपने देवर रथनेमी को जो इसे अपनी स्त्री बनाना चाहता था धर्म का प्रतिबोध देकर धर्म में दृढ़ किया और यह अखण्ड ब्रह्मचारिणी रहकर चारित्र-व्रत में दृढ़ रही।

११४—जयन्ती–यह शतानिक नरेश की बहिन थी। यह बड़ी पंडिता थी। इसने भगवान महावीर से अनेक प्रश्न किये थे। इसने भी दीक्षा ग्रहण कर चारित्र-धर्म पाला।

११५—भूतदत्ता–यह नन्द राजा के मंत्री शकटाल की पुत्री और स्थूलभद्र की बहिन थी। ये सात बहिने थीं। सातों ही बहिने स्मरण-शक्ति में अद्वितीया थीं।

११६—जमदग्नि—ये परशुराम के पिता थे। और रेणुका के साथ इन्होंने एकदिन का रात्रिप्रेम किया था।

११७—कौशिक—महर्षि विश्वामित्र को ही कौशिक कहते हैं। ये मेनका के प्रसंग से शीलभ्रष्ट हो गये थे।

११८—मथुरा के कंकाली टीलों की खुदाई में अनेक स्तूप, मूर्तियें और शिलालेख निकले हैं। जिनसे हमारी प्राचीनता सिद्ध होती है! देखिये वी० स्मिथ क्या लिखते हैं—

The Original erection of the stupa in brick in

the time of Paraswanath, the predecessor of maha-vir would fall a date not later than 600 B. C.

V. Smith

Mutra Antiquities.

अभी हाल में जो मोहन जाडोरा की खुदाई हुई है, उसमें एक ध्यानस्थ मूर्ति मिली है। उसे सब विज्ञजन ५००० वर्ष से भी प्राचीन बताते हैं। कायोत्सर्गस्थ एवं ध्यानस्थ मूर्ति अतिरिक्त जैन और बौद्ध के अन्य कोई नहीं हो सकती है। सर्व जग यह स्वीकार कर चुका है कि बौद्धमत के आदि प्रवर्तक भगवान बुद्ध ही थे जो भगवान महावीर के समय में ही हुए हैं। अतः अब उक्त मूर्ति सब प्रकार से जैनमूर्ति सिद्ध होती है। इस प्रकार हमारी प्राचीनता के अनेक चिन्ह अब उपलब्ध हो चुके हैं और हो रहे हैं। सबका यहाँ स्थानाभाव से उल्लेख अशक्य है। देखिये 'मूर्तिपूजा का प्राचीन इतिहास' प्र० पंचम (मुनि ज्ञानसुन्दरजी विलिखित)।

११६—४ अगस्त सन् १६३४ को प्रकाशित हुए 'बम्बई समाचार' में एक यूरोपयात्री ने लिखा है कि अमेरिका और मंगोलिया में एक समय जैनियों की घनी आबादी थी। आज इन उक्त देशों में भूगर्भ से ऐसी जैन-मूर्तियों के खण्डहर उपलब्ध होते हैं कि जिनसे इस बात की पुष्टि होती है। देखिये 'मूर्तिपूजा का प्राचीन इतिहास प्र० पंचम।

१२०—आज संसार के सर्वश्रेष्ठ पुरुष भारत के सपूत महात्मा गांधी हैं। आपने विश्वव्यापी चिरशान्ति के दर्शन

'सत्य' और 'अहिंसा' में ही किये हैं और समस्त संसार को भी आपका यही उपदेश है। संसार भले प्रकार जानता है कि जैन-धर्म के भी मुख्य सिद्धान्त सत्य और अहिंसा ही हैं।

१२१—'यह निर्विवाद सिद्ध है कि बौद्धधर्म के प्रवर्तक गौतमबुद्ध से पहिले जैनियों के तेवीस तीर्थंकर हो चुके हैं।' यह प्रसिद्ध विद्वान् डेविड साहब ने एनसाईक्लोपीडिया व्याल्यूम २६ में लिखा है। ऐसा ही अनेक यूरोपीय विद्वानों का मत है। अब तो हमारे देशभाई भी ऐसा मानने लगे हैं।

१२२—देखो 'जैन जातिमहोदय' प्रथम प्रकरण (मुनि ज्ञानसुन्दरजी विलिखित)

(अ) यजुर्वेद—ॐनमोऽर्हन्तो ऋषभो।

(ब) यजुर्वेद—ॐ रक्ष रक्ष *अरिष्टनेमि* स्वाहा।

(अध्याय २६)

(स) श्री ब्रह्माण्डपुराण—

नाभिस्तु जनयेत्पुत्रं. मरुदेव्यां मनोहरम्।
ऋषभं क्षत्रियश्रेष्ठं. सर्वक्षत्रस्यपूर्वकम्॥

(द) मनुस्मृति—कुलादि बीजं सर्वेषां प्रथमो *विमलवाहनः*
चक्षुष्मांश्च यशस्वी वाभिचन्द्रोथ प्रसनेजित॥

(इ)—महाभारत में श्रीकृष्ण भगवान् क्या कहते हैं—

'आरोहस्व रथे पार्थ गांडीवंच करे गुरु।
निर्जिता मेदिनी मन्ये निग्रन्था यादि सन्मुखे॥'

१२३......'परन्तु इस घोर हिंसा का ब्राह्मण धर्म से विदाई ले आने का श्रेय जैनधर्म ही के हिस्से में है।' उक्त वाक्य पं०

बालगङ्गाधर तिलक ने ३० नवम्बर सन् १८९४ को बड़ौदा में व्याख्यान देते हुए कहा था। जैन जाति महोदय प्र० प्रकरण से उद्धृत।

१२४—पौष शुक्ला १ स० १९६२ को काशी में व्याख्यान देते हुये पं० स्वामीराममिश्रजी शास्त्री, भूतपूर्व प्रोफेसर सं० कालेज बनारस ने कहा, "मुझे तो इसमें किसी प्रकार का उज्र नहीं है कि जैनदर्शन वेदान्तादि दर्शनों से भी पूर्व का है।" जै० जा० महोदय प्र० प्रकरण।

१२५—पं० बालगंगाधर तिलक का भी यही मत था कि जैन-धर्म अनादि है। जै० जा० महोदय प्र० प्रकरण।

१२६—(अ)—"ऋषभ देव जैनधर्म के संस्थापक थे यह सिद्धान्त अपनी भागवत से भी सिद्ध होता है।........महावीर जैनधर्म के संस्थापक नहीं हैं। वे २४ तीर्थंकरों में से एक प्रचारक थे।" ये वाक्य गोविन्द आप्टे बी० ए० इन्दोर निवासी ने अपने एक व्याख्यान में कहे थे।

(ब)—"लोगों का भ्रम-पूर्ण विश्वास है कि पार्श्वनाथ जैन-धर्म के संस्थापक थे। किन्तु इसका प्रथम प्रचार ऋषभदेव ने किया था। इसकी पुष्टि के प्रमाणों का अभाव नहीं है।" ये वाक्य श्री० वरदाकान्त मुख्योपाध्याय एम० ए० ने अपने बंगला लेख में लिखे थे, जिसका हिन्दी-अनुवाद नाथूराम प्रेमी ने किया है। जै० जा० महोदय प्र० प्रकरण।

१२७—"सबसे पहिले इस भारतवर्ष में "ऋषभदेवजी" नाम के महर्षि उत्पन्न हुए।.....इनके पश्चात् अजितनाथ से

लेकर महावीर तक २३ तीर्थंकर अपने-अपने समय में अज्ञानी जीवों का मोहान्धकार नाश करते थे।" ये वाक्य तुकारामकृष्ण शर्मा लट्टू बी० ए० पी० ऐच० डी० इत्यादि प्रोफेसर क्वींस कालेज बनारस ने 'स्याद्वाद महाविद्यालय काशी के दशम वार्षिकोत्सव के अवसर पर अपने व्याख्यान में कहे थे। जै० जा० महोदय प्र० प्रकरण।

१२८—"पार्श्वनाथ एक ऐतिहासिक व्यक्ति हो गये हैं। इसमें कोई शंका नहीं है। जैन मान्यतानुसार उनकी आयु १०० वर्ष की थी और महावीर से २५० वर्ष पूर्व उनका निर्वाण हुआ है। इस प्रकार पार्श्वनाथ ईसा से आठ शताब्दि पूर्व उत्पन्न हुए सिद्ध होते हैं। महावीर के माता पिता पार्श्वनाथ के धर्मानुयायी थे।" ऐसा गिरिनोट का मन्तव्य है। 'उत्तर हिन्दुस्तान में जैनधर्म' नामक इतिहास पृ० ११ से उद्धृत (ले० चिमनलाल के० चन्द शाह)।

१२९—"ज्यों-ज्यों मैं जैन धर्म और उसके साहित्य को समझता हूँ त्यों-त्यों मैं उसे अधिक पसन्द करता हूँ।" ये शब्द जान्सहार्टल ने अपने एक पत्र में लिखे थे।

१३०-१३१—नर-कला—व नारी-कला—यहाँ स्थनाभाव से हम नर-कलाओं और नारी-कलाओं के नाम तो नहीं दे सकेंगे और न देने की ही आवश्यकता है।

१३२-१३५—अपराजित, नंदिमित्र, नंदिल, भद्रबाहु (भद्रभुज)—ये सब श्रुत केवली और चौदह पूर्व के ज्ञाता थे।

१३६—आर्य रक्षितसूरि—ये भी जम्बूस्वामी के प्रमुख शिष्य

थे और साढ़े नव पूर्व के ज्ञाता थे। धर्म-देवलोक का इन्द्र भी उनके तप, तेज को देखकर उनका परम अनुचर बन गया था।

१३७—इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सौधर्म, मण्डित, मौर्यपुत्र, अकम्प, अचलाभ्राज, मेतारज और श्रीप्रभास ये ११ भगवान महावीर के गणधर थे। ये सब ही प्रकाण्ड पंडित व विद्वान थे। जैन-धर्म के सब शास्त्र इन ११ गणधरों ने लिपि-बद्ध किये हैं।

१३८—उमास्वातिवाचक-ये संस्कृत प्राकृत के अद्वितीय विद्वान थे। इन्होंने संस्कृत में ५०० ग्रन्थ लिखे हैं। 'तत्त्वार्थसूत्र' इन्हीं का रचा हुआ है। एक बार इन्होंने सरस्वती की पाषाण-मूर्ति से भी अपने श्लोकों का उच्चारण करवाया था।

१३९—कवि राजशेखर-ये आचार्य महाकवि थे। ये वि० सं० १४०५ में विद्यमान थे। इन्होंने श्रीधरकृत 'न्यायकंदली' की टीका लिखी है, तथा 'प्रबन्धामृतदीर्घिका' नाम का सात हजार श्लोकों का एक ग्रन्थ लिखा है।

१४०—कुन्दकुन्दाचार्य-ये महान आचार्य विक्रम की प्रथम शती में हुए हैं। इन्होंने 'प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, समयसार, नियमसार, द्वादशानुप्रेक्षा और दर्शनप्राभृतादि प्राकृत ग्रंथ लिखे हैं। ये आचार्य अधिक प्रसिद्ध हैं।

१४१—देवर्द्धीगणिक्षमाश्रमण-ये विक्रम की छठी शती में मौजूद थे। ये लोहिताचार्य के शिष्य थे। इनके समय में जैन-शास्त्रों का अस्तित्व नाम मात्र को रह गया था। वल्लभीपुर में

पुनः इन्होंने समस्त जैन-ग्रन्थों को पुस्तकबद्ध किया। इनके समय में केवल एक पूर्व का ज्ञान रह गया था।

१४२—पादलिप्ताचार्य—ये महाविद्याओं में पारगामी थे। इन्होंने 'तरंगलोला, निर्वाणकलिका तथा प्रश्नप्रकाश' नाम का ज्योतिष शास्त्र लिखा है। नागार्जुन ने भी इन्हें अपना गुरु माना था। नागार्जुन आयुर्वेद के धुरन्धर ज्ञाता हो गये हैं। ये जड़ी बूटियों से स्वर्ण बनाते थे। इसका इन्हें बड़ा गर्व था। एक दिन आप पादलिप्ताचार्य जी से मिलने गये, लेकिन उन्हें वन्दन नहीं किया। पादलिप्ताचार्य ने अपने मूत्र से एक पत्थर को स्वर्ण-खण्ड बना दिया, यह देखकर नागार्जुन बड़े लज्जित हुए और पादलिप्ताचार्य को वंदन किया।

१४३—देखो १४२

१४४—सिद्धसेन दिवाकर—ये संस्कृत के बड़े शक्तिधर विद्वान हो चुके हैं। राजा विक्रम के नवरत्न भी इनके आगे निस्तेज हो गये थे और विक्रम ने जैन-धर्म स्वीकार किया था। इन्होंने कल्याणमन्दिर-स्तोत्र रचकर महाकालेश्वर के लिंग में से भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति उद्‌घटित की थी।

१४५—वादीन्द्र देवसूरि—ये आचार्य सौराष्ट्रपति राजा सिद्धसेन के समय में हुए हैं। राजा ने खुश होकर इन्हें वादीन्द्र की उपाधि अर्पण करी। 'स्याद्वादरत्नाकर', 'प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार' जो समस्त संस्कृत साहित्य में अद्वितीय ग्रन्थ माने जाते हैं इन्हीं आचार्य के बनाये हुए हैं।

१४६—वादी देवसूरि—देवसूरि नाम के एक आचार्य

मुगल सम्राट् जहांगीर के समय में भी हो चुके हैं। ये भी बड़े विद्वान आचार्य थे और इन्हें 'वादी' की उपाधि थी।

१४७—हेमचन्द्रसूरि—ये प्रसिद्ध आचार्य अभयदेव सूरिजी के शिष्य थे। ये १२ वीं सदी में हुए हैं। इन्हें 'मलधारी' की उपाधि राजा सिद्धसेन ने अर्पण की थी। इन्होंने जीव-समास, भवभावना, शतकवृत्ति, उपदेशमालावृत्ति' आदि अनेक अमूल्य ग्रन्थ लिखे हैं।

१४८—हरिभद्रसूरि—ये आचार्य भी संस्कृत के अजोड़ विद्वान थे। ये विक्रम की छठो शती में हो गये हैं। इन्होंने कुल मिलाकर १४४४ ग्रन्थ लिखे हैं। जंबूद्वीप-संग्रहणी, दशवैकालिक-वृत्ति, ज्ञानचित्रिका, लग्नकुण्डलिका योगदृष्टिसमुच्चय, पंचसूत्र-वृत्ति इत्यादि।

एक इसी नाम के आचार्य १२ वीं शताब्दि में भी हो गये हैं। ये भी बड़े शक्तिधर आचार्य थे। इन्हें लोग कलिकालगोतम कहते हैं। इन्होंने भी 'तत्त्वप्रबोधादि' अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

१४९—श्रीपाल—यह सौराष्ट्रपति राजा सिद्धसेन के समय में हुए हैं। ये महाकवि थे और राजा इनका बड़ा संमान करता था।

१५०—परिमल—ये बड़े भावुक कवि और विद्वान थे।

१५१—धनंजय—इस नाम के एक महाकवि विक्रम की ९ वीं शती में हो गये हैं। इन्हें समस्त संस्कृत-साहित्यिक-संसार जानाता है। इनके बनाये हुए अनेक ग्रंथ अति प्रसिद्ध हैं। 'द्विसंधानमहाकाव्य' जिसके प्रत्येक श्लोक से दो-दो कथाओं का

अर्थ निकलता है तथा 'धनंजयनाममाला' आपके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं।

१५२—वज्रस्वामी—इनकी स्मरण-शक्ति बड़ी प्रबल थी। आठ वर्ष की आयु तक इन्होंने श्रवणमात्र से ११ अंगों का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया। पश्चात् आचार्य सिंहगिरि के पास इन्होंने दीक्षा व्रत ग्रहण किया। ये १० पूर्व के ज्ञाता और वैक्रियलब्धि-धर थे। इनका स्वर्ग-गमन महावीर सं० ५८४ में हुआ।

१५३—अकलंक—ये प्रसिद्ध शास्त्रज्ञ थे। इन्होंने अनेक बौद्धों को शास्त्रार्थ में परास्त किया था और जैन-धर्म की अतिशय उन्नति की।

१५४—वाग्भट—ये महाकवि थे। वाग्भटालंकारसटीक, नेमिनिर्माणकाव्य, काव्यानुशासनसटीक इनके रचे हुए ग्रंथ हैं। संस्कृत-साहित्य-जगत् में इनका सम्मान महाकवि कालिदास के समतुल है।

१५५—धनपाल—महाकवि धनपाल महाकवि कालिदास के समकालीन हैं। 'तिलकमंजरी' जो कादम्बरी के जोड़ का ग्रन्थ है आपने लिखा है।

१५६—श्रीमाल—ये प्रसिद्ध विद्वान हो गये हैं। आपने भी संस्कृत में अनेक ग्रंथ लिखे हैं।

१५७—मण्डन—ये शक्तिधर संस्कृत एवं प्राकृत के पंडित थे। इन्होंने अनेक पंडितों को शास्त्रार्थ में जीता था। इनकी स्त्री भी बड़ी विदुषी थी। ये मांडू (माण्डवगढ़) के रहने वाले थे।

१५८—जयशेखरसूरि—ये आचार्य महेन्द्र प्रभसूरि के शिष्य

थे और विक्रम की १५ वीं शती में विद्यमान थे। इन्होंने उपदेश-चिन्तामणि, प्रबोधचिन्तामणि, 'जैनकुमारसंभवमहाकाव्य आदि अनेक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखे हैं। इनको तत्कालीन साहित्य-संसार ने कवि चक्रवर्त्ती की उपाधि प्रदान की थी।

१५९—आनंदघन—ये महान आध्यात्मिक विरक्त साधु थे। ये विक्रम शती १७ वीं में विद्यमान थे। इनके पद्य बड़े प्रसिद्ध हैं। सूरदास के सदृश इन्होंने कितने ही पद्य रचे हैं। आनंदघन का सम्मान अब दिन-दिन बढ़ रहा है।

१६०—जटमल—ये जैन नाहर गोत्र के थे। ये हिन्दी की खड़ी बोली के आदि लेखकों में गिने जाते हैं। 'गोरा बादल की बात' इन्होंने खड़ी बोली में लिखी है जो अधिक प्रसिद्ध है। प्रेमलता भी इनकी अधिक प्रसिद्ध है। अब धीरे धीरे इनकी अनेक फुटकल रचनाओं का पता लग रहा है। ये १९ वीं शती में हुए है। (कवि जटमल का परिचय वीणा मासिक पत्रिका के श्रावण माह ६ सं० १९९५ के अंक में प्रकाशित पं० सूर्यकरण पारीक एम० ए० के लेख के आधार पर दिया गया है।)

१६१—आत्मारामजी—इनके विषय में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। ये महान आचार्य अभी हाल में ही स्वामी दयानंद सरस्वतती के ही समय में हो चुके हैं। आपने अनेक ग्रंथ लिखे हैं और आज आपके नाम से कितनी ही सभाएँ, संस्थाएँ चल रही हैं। इनका विस्तृत जीवन-चरित्र भी निकल चुका है। इनका स्वर्गगमन सं० १९४० में हुआ है।

१६२—यशोविजय जी उपाध्याय—ये महान पंडित साधु थे

इन्होंने लगभग १०० ग्रंथों की रचना की है। ये १७ वीं शती में हुए हैं। 'ज्ञान बिंदुप्रकरण, ज्ञानसार, नयप्रदीप, अध्यात्मसार द्रव्यानुयोग तर्कना, प्रतिमाशतक' आदि इनके अनुपम ग्रंथ हैं।

१६३—राजेन्द्रसूरि—ये महान् आचार्य अभी हो गये हैं। इनका जन्म सं० १८८३ में हुआ था। इन्होंने एक 'अभिधान-राजेन्द्र-कोष' लिखा है जो सात भागों में छपकर तैयार हुआ है। दुनियां के समस्त सर्वश्रेष्ठ विद्याप्रेमियों ने इस ग्रन्थ की मुक्त कण्ठ से प्रसंशा की है। आपको कलिकालसर्वज्ञ माना जाता है। आपकी जीवनी छप चुकी है।

१६४-६५—जयसलमेर (राजपुताना), पाटण (अणहिल-पुर) में अति प्राचीन जैन-भण्डार हैं। इनमें सैकड़ों हस्तलिखित ग्रन्थ अब भी मौजूद हैं। कोई-कोई ग्रन्थ ७-८ वीं शताब्दि के भी बताये जाते हैं। लेकिन दुःख है कि इनको आज हमारी अवहेलना और अधोगति के कारण, कृमि, दीमक खा रहें हैं।

१६६—चौदह पूर्व—उवाय (उत्पाद), अग्गेणीय (अग्राणीय) आदि १४ पूर्व कहे जाते हैं। ये पूर्व सबसे अधिक प्राचीनतम हैं। दुःख है कि ये चौदह ही पूर्व कभी के लुप्त हो चुके हैं।

१६७—द्वादशिकवत्सरदुष्काल—मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त के समय में १२ वर्ष का लम्बा एक भयंकर दुष्काल पड़ा, जिसमें कतिपय विद्वान ऐसा मानते हैं कि जैन-शास्त्रों का सर्वथा लोप हो गया। जितना अंश कंठस्थ रहा वह फिर लिखा गया।

१६८—वेद—जैन-साहित्यावलोकन से ऐसा प्रतीत होता है

कि वेदों की रचना भगवान् आदिनाथ के समय उनके गणधरों ने की थी।

१६६—जैन-दर्शन—जैन-दर्शन की महत्ता आज समस्त संसार स्वीकार करता है। सर्व श्री बालगंगाधर, गोखले, महामना मालवीयजी, तुकारामकृष्ण शर्मा आदि के विचार हम पूर्व दे चुके हैं।

१७०—जैन-साहित्य में यह हजारों वर्षों पूर्व ही बता दिया गया था कि वनस्पतिकाय में जीव होता है। लेकिन आज तक संसार हमारे इस सिद्धान्त का उपहास करता आया है। लेकिन अब-अब विज्ञान-विद् कहने लगे हैं कि वृक्ष-लताओं में जीव होता है। उसे भी मनुष्य अथवा पशु-पक्षी कृमि के जीव के अनुसार दुःख, सुख का अनुभव होता है। अभी कुछ वर्ष पूर्व हमारे प्रसिद्ध विज्ञानज्ञ जगदीशचन्द्र बोस ने ही सर्व प्रथम यह सिद्ध कर संसार को चकित कर दिया था कि वृक्ष हँसता, खेलता एवं रोता है। इस विषय में वे अधिक शोध करते लेकिन दुःख है अब उनका देहावसान हो चुका है।

१७१—अंग—आयार (आचार), सूयगड़ (सूत्रकृत), थाण (स्थान) इत्यादि कुल १२ अंग हैं जिनमें दृष्टिवाद अंग पूर्व के साथ ही विलुप्त हो गया है ऐसा माना जाता है। थोड़े में अंगों का विषय यहाँ स्पष्ट नहीं किया जा सकता।

१७२—उपांग—ओववाइए (औपपातिक), रायपसेनइज्जि (राजप्रश्नीय), जीवाभिगम आदि उपांग भी १२ है। उपांगों का अंगों के साथ अवश्य कुछ सम्बन्ध है।

१७३—पयन्ना—चउशरण (चतुःशरण), आउर पच्चक्खाअण (आतुरप्रत्याख्यान), भत्तपरिण्णा (भक्तपरिज्ञा) इत्यादि १० पयन्ना ग्रन्थ हैं।

१७४—छेद-सूत्र—निसीह (निशीध), महानिसीह (महा-निशीध) ववहार (व्यवहार) इत्यादि छह छेद-सूत्र हैं।

१७५—चार मूलसूत्र—उत्तरज्झयण (उत्तराध्ययन), आव-स्सय (आवश्यक) इत्यादि चारमूल-सूत्र हैं।

नंदीसुत्त (नंदीसूत्र), अणुयोगदारसुत्त (अनुयोगद्वार-सूत्र) ये दो चूलिका-सूत्र हैं।

१७६—गोमठसार—यह एक अमूल्य धार्मिक ग्रन्थ है। इसका सर्वत्र जैन-समाज में ही नहीं वरन समस्त धर्म-संस्थाओं में सम्मान है।

१७७—नवतत्त्व—यह ग्रन्थ अवलोकनीय है। जैन विद्वानों ने नवतत्त्व माने हैं और इस ग्रन्थ में उनका बड़ा सुन्दर विवेचन दिया गया है।

१७८—तत्त्वार्थाधिगमसूत्र—इस ग्रन्थ के रचयिता प्रसिद्ध ऊमास्वातिवाचक हैं। इसका जैन-दर्शनों में ही नहीं सर्व भारतीय दर्शनों में एक विशिष्ट स्थान है।

१७९—भव-भावना—यह एक धार्मिक ग्रन्थ है। इसके कर्ता प्रसिद्ध विद्वान् मल्लधारी हेमचन्द्र सूरि हैं।

१८०—जीवानुशासन—यह भी धार्मिक ग्रन्थ है।

१८१—पुष्पमाला—यह भी धार्मिक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में धार्मिक उपाख्यानों, उपदेशों का प्रशस्त संग्रह है।

१८२—द्वादशकुलक—यह भी एक धार्मिक ग्रन्थ है।

१८३—निर्वाणकलिका—यह भी एक धार्मिक ग्रन्थ है। यह आचार्य पादलिप्तसूरि-कृत है।

१८४—भावसंग्रह—यह भी धार्मिक ग्रंथ है। यह देवसेन भट्टारक का बनाया हुआ है।

१८५—सप्तभंगी न्याय—यह न्याय का उच्चकोटि का ग्रन्थ है। इसका सर्वत्र अतिशय संमान है। ऐसे ग्रन्थ न्याय-विषय में अति थोड़े हैं।

१८६—स्याद्वादरत्नाकर—यह न्याय का अद्भुत ग्रन्थ है। इसके रचयिता प्रसिद्ध आचार्य वादीदेवसूरि हैं। यह ग्रन्थ १२ वीं शती में लिखा गया था।

१८७—न्यायालोक—यह भी न्याय विषय का बृहद् ग्रंथ है।

१८८—प्रमेयकमलमार्तण्ड—जैन-दर्शन का यह बहुत ही विलक्षण और उच्चकोटि का न्याय-ग्रंथ है। यह प्रभाचन्द्राचार्य-विरचित है।

१८९—पुराण—हरिवंशपुराण, पद्मपुराण आदि १२ पुराण हैं। इन सबमें जैन-इतिहास संकलित किया गया है।

१९०—त्रयषष्ठिशलाकापुरुष-चरित्र—यह मूल संस्कृत में हेमचन्द्राचार्यकृत है। इसमें २४ तीर्थङ्कर, १२ चक्रवर्त्ती, ९ वासुदेव, ९ प्रतिवासुदेव और ९ बलदेव ऐसे कुल ६३ महापुरुषों का जीवन-चरित्र है।

१९१—अर्हन्नीति—यह हेमचन्द्राचार्यकृत राजनीति का

प्रमुख ग्रन्थ है। राजा कुमारपाल के समय में इसी नीति के अनुसार शासन-सूत्र था।

१६२—धर्माभ्युदय—यह उदयप्रभसूरिकृत महाकाव्य है।

१६३-६४—विक्रान्तकौरव तथा मैथिलीकल्याण—ये दोनों उच्चकोटि के नाटक ग्रंथ हैं।

१६५—पुरुदेवचंपू—यह महाकाव्य है। चंपू उच्चकोटि का है।

१६६—यशस्तिलक—यह चंपू है और सोमदेव कृत है। यह ग्रन्थ ६वीं शती में लिखा गया था।

१६७—शाकटायनव्याकरण—महर्षि शाकटायन वैयाकरण विरचित है जो पाणिनि से भी पूर्व हो चुके हैं। दुनिया इन्हें अब तक जैनेतर विद्वान् मानती थी लेकिन अब यह सर्व प्रकार सिद्ध होगया कि शाकटायन जैन थे। मद्रास कालेज के प्रोफेसर मी० गुस्ताव आपटे शाकटायन को जैन मानते हैं और पाणिनि से पूर्व इनकी उपस्थिति स्वीकार करते हैं। प्रसिद्ध ग्रन्थकार बोपदेव का भी ऐसा ही मंतव्य है।

१६८—पातंजलि के पश्चात् प्रसिद्ध वैयाकरण आचार्य हेमचन्द्र ही माने जाते हैं। इनका बनाया हुआ व्याकरण साहित्य में अत्यधिक आदरणीय है।

१९९—संस्कृत—संस्कृत से यहां अर्थ लौकिक-संस्कृत से है जो आदि प्राकृत का अन्यतम शुद्ध रूप कही जाती है।

२००—आदि-प्राकृत—आदि-प्राकृत से उस भाषा का अर्थ है जो अनार्यों के आगमन पर बनी। अर्थात् वैदिक-भाषा अनार्य-भाषा के साथ मिलकर जिस स्वरूप को प्राप्त हुई वही

भाषा आदि-प्राकृत है। कवि सम्राट पं० अयोध्यासिंह 'हरिऔध' को भी ऐसी ही धारणा है। देखो 'हिन्दी-भाषा और साहित्य का विकास' द्वि० प्रकरण।

२०१—अनेकार्थ-कोष—यह कोष प्रसिद्ध वैयाकरण आचार्य हेमचन्द्रकृत है। इसके अन्तराल का परिचय इसके नाम से ही पा लीजिये।

२०२—अभिधान-राजेन्द्र-कोष—यह कोष सात भागों में समाप्त हुआ है। जिनकी कीमत ३६) रुपया है। यह प्रसिद्ध विद्वान् राजेन्द्र-सूरिकृत है जो अभी २० वीं शती में ही हो गये हैं।

२०३—काव्यानुशासन—यह महाकवि वाग्भट्टकृत अलंकार का ग्रंथ है।

२०४—नाट्यदर्पणवृत्ति—यह छंदोऽलंकार का ग्रन्थ है।

२०५—परिशिष्ट पर्व—यह प्रसिद्ध महाकाव्य है।

२०६-७-८—श्री जैन-ज्योतिष, भुवन-दीपक, ज्योतिष-करंडक—ये तीनों ग्रंथ ज्योतिष-साहित्य में प्रथम श्रेणी के हैं।

२०९-१०-११—विद्यारत्नमहानिधि, अद्भुतसिद्धिविद्यायंत्र, और आकाशगामिनीविद्या—ये तीनों मन्त्र-ग्रन्थ हैं।

२१२—माण्डवगढ़—यह नगर अति प्राचीन है और मालवा में आया है। इसके अनेक नाम हैं—मण्डपाचल, मण्डपदुर्ग, श्रीमण्डप, मण्डगिरि आदि। वर्त्तमान् में यह मांडू के नाम से प्रसिद्ध है। मुसलमान-शासकों के समय में यह नगर बड़ा अभिराम था। इसमें तीन लाख तो मात्र जैनियों के ही घर थे।

इसमें छोटे बड़े ८३ सौधशिखरी जैन-मन्दिर थे। प्रसिद्ध विद्वान मण्डन इसी नगर के रहने वाले थे। विस्तृत वर्णन के लिये देखो 'श्री यतीन्द्र-विहार-दिग्दर्शन भाग चतुर्थ पृ० १६६।

२१३—लक्ष्मणी-तीर्थ—यह तीर्थ अलिराजपुर स्टेट में आया है। इसके नाम से पता चलता है कि यह लक्ष्मण के समय में अगर नहीं था तो भी लक्ष्मण के नाम के पीछे अवश्य इसकी स्थापना हुई है। वैसे इसके भूगर्भ में से निकलती हुई वस्तुओं के अवलोकन से भी यह अति प्राचीन सिद्ध होता है। इस तीर्थ के स्थल को ज्यों-ज्यों खोदा जाता है, अनेक अद्भुत-अद्भुत वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं। देखो श्री० य० वि० दि० भा० ४ पृ० २३०।

२१४—अर्बुदगिरि—यह विशेष कर अभी आबू-पर्वत के नाम से प्रसिद्ध है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जैन-तीर्थ की दृष्टि से इसका इस समय भी कितना महत्त्व है। वस्तुपाल तेजपाल का बनाया हुआ जैन-मन्दिर अब भी अपनी प्रकृत दशा में ही विद्यमान है। अनेक यूरोपीय शिल्प-शास्त्री इस मन्दिर की शिल्प-कला देखकर दंग रह गये हैं। इस मन्दिर के बनाने में साढ़े बारह कोटि सुवर्ण मुद्रायें खर्च हुई थीं। ऐसा भव्य मन्दिर विश्व में भी अन्य कठिनतया ही उपलब्ध होगा।

२१५—गिरिनारपर्वत—यह जूनागढ़ के पास आया है। भगवान् नेमिनाथ की दीक्षा, उनको केवल ज्ञान और उनका निर्वाण इसी पावन गिरि पर हुआ है। 'यह तीर्थ मूलतः जैनियों

का है, बौद्धों का नहीं', ऐसा डा० फर्ग्यूसन मानता है। देखो 'उत्तर हिन्दुस्तान मां जैन-धर्म' पृ० २१९।

२१६—तारंग-गिरि—यह तीर्थ मध्य गुजरात में आया है। महेषाणा से रेल जाती है। यहाँ पर भगवान् अजितनाथ का अतीव प्राचीन मन्दिर दर्शनीय एवं शिल्प-कला का ज्वलन्त प्रमाण है।

२१७—सिद्ध गिरि—इसे शत्रुंजय और सिद्धाचल भी कहते हैं। पालीताणा नगर इसकी उपत्यका में निवसित है। इस तीर्थ की जैन-शास्त्रों में महिम महिमा है। अनंत कोटि साधु एवं केवली इस पर मोक्ष गये हैं। इसकी मन्दिरावलि देखते ही ऐसा प्रतीत होता है, मानों अमरपुरी साक्षात्‌ मर्त्यलोक में अवतरित हो गई हो। इस तीर्थ की छटा को देखकर यूरोपीय विद्वान भी कह पड़ते हैं—'ये स्मारक देव-विनिर्मित हैं, मानवी प्रयत्नों से नहीं बने हैं'—देखो उ० हि० मां० जै० धर्म पृ० २१९।

२१८—सम्मेतशेखर—यह तीर्थ अति प्राचीन है। इसकी प्राचीनता का अभी कुछ भी पता नहीं चला है। इस पर्वत पर २० तीर्थंकर मोक्ष गये हैं। यह तीर्थ बंगाल में आया है। इसका जीर्णोद्धार राजा चन्द्रगुप्त, सम्राट संप्रति, कुमारपाल एवं खारवेल ने करवाया है। इस तीर्थ के सब ही मंदिर, स्तूप शिल्पकला के उच्चकोटि के नमूने हैं।

२१९—उदयगिरि—ओरिसा की उदयगिरि—इस नाम से यह गिरि प्रसिद्ध है। इस गिरि में रानी और गणेश गुफायें शिल्प-

कला की दृष्टि से अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। दूसरी इसी गिरि में एक हाथी-गुफा भी है। यह गुफा प्राकृतिक है। डा० फर्गुसन लिखता है कि उदयगिरि की गुफाओं की भव्यता, शिल्प की लाक्षणिकता, और स्थापत्य का विगत ये सब इनकी प्राचीनता प्रमाणित करती हैं। देखो उ० हि० माँ० जैन धर्म पृष्ठ २२३। ये गुफायें कलिंगपति सम्राट खारवेल की बनवायी हुई हैं। इसमें ४४ गुफाये हैं।

२२०—खण्डगिरि—उदयगिरि की गुफाओं के पच्छिम में खण्डगिरि की १६ गुफायें हैं। ये भी सम्राट खारवेल की ही बनवायी हुई हैं। शिल्प की दृष्टि से इनका स्थान भी बहुत ऊँचा है। प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ एवं शिल्प विशारद आमोलो, मनमोहन, चक्रवर्त्ती, ब्लोच, फरग्यूसन, स्मिथ, कुमार स्वामी आदि इन्हें जैन गुफा स्वीकार करते हैं। देखो उ० हि० मां० जैन धर्म पृष्ठ २२२।

२२१—एलोर-अजंता गुफायें—अब तक सब इतिहासकार इन गुफाओं को बौद्ध गुफायें एक स्वर से बताते आये हैं, लेकिन अब ज्यों-ज्यों पुरातत्त्व वैज्ञानिक शोध करते जाते हैं उन्हें अब अपने प्राकथन में भ्रम होता है और कतिपय शिल्प-विशारद तो यह भी मानने लग गये हैं कि ये गुफायें भी जैन गुफायें हैं।

२२२—मथुरा—वर्तमान मथुरा नगर से ३-४ मील के अन्तर पर अभी कंकाली-टीला का पता लगा है और उसकी खुदाई भी हुई है। इस टीले में से ई० सन के पूर्व की जैन-मूर्तियें, आयागपट्ट, स्तूपखड निकले हैं। महाक्षत्रपों के राज्य में मथुरा
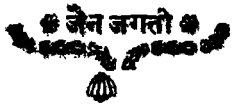
की बड़ी उन्नति थी। क्षत्रप सब जैन-धर्मी थे। देखो 'प्राचीन भारतवर्ष भाग ३ रा, पृ० २४५ त्रिभुवनदास लहेरचंद्र रचित।

२२३—बनारस—यह २३ वे तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ की राजधानी थी। उस समय के कितने ही शिल्प-कला के नमूने आज भी भूगर्भ में से देखने को मिलते हैं और यह ऐतिहासिक रूप से भी सिद्ध हो चुका है कि भगवान पार्श्वनाथ की राजधानी काशी (बनारस) थी ।

२२४—ओरिसा—यह सम्राट महामेघवाहन खारवेल के समय कलिंग राज्यान्तर्गत एक प्रान्त था। इसकी उदयगिरि, खण्डगिरि की गुफायें उस समय के जैन-धर्म की समृद्धि की आज भी पूरी २ झलक देती हैं। देखो उ० हि० मा० जैन धर्म, पृ० २२२।

२२५—पावापुरी—यह जैनियों का प्रसिद्ध तीर्थस्थान है। यहाँ २४वें तीर्थंकर प्रभु महावीर का निर्वाण हुआ है। उनका यहाँ स्मारक मंदिर है। वह अति प्राचीन है और शिल्प-कला का उत्कृष्ट नमूना है ।

२२६—अमरावती—जैन इतिहास की दृष्टि से अमरावती एक प्रसिद्ध नगरी थी। परन्तु अभी तक अमरावती के ऐतिहासिक स्थल का पता नहीं लगा है। डा० स्मिथ अमरावती को मथुरा के पास कहते हैं; देखो उ० हि० मां जैन धर्म पृष्ठ २२५। डा० त्रिभुवनदास लहेरचन्द अपने इतिहास 'प्राचीन भारतवर्ष' के प्र० भगा पृ० १५१ पर लिखते हैं कि वर्तमान में जो अमरा-

वती नगर है यह वह प्राचीन अमरावती नहीं है जिसका जैन इतिहास की दृष्टि से भारी महत्त्व है।
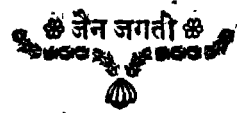
२२७—मैसूर राज्यान्तर्गत बेलग्राम में एक जैन मूर्ति ५७ फीट ऊँची है। इस मूर्ति की प्रतिष्ठा १० वीं शती में हुई है। इससे हमारी शिल्प-कला की उत्कृष्टता का तो पता लगता ही है लेकिन साथ में यह भी विचारने को मिलता है कि जैन-धर्म प्राचीन काल में दक्षिणी भारतवर्ष में भी समधिक रूप से फैला हुआ था। ऐसी ही एक जैन मूर्ति ५७ फीट ऊँची ग्वालियर राज्य में भी है। यह भी अति प्राचीन है। देखो प्रा० भा० वर्ष का इतिहास भाग २रा० पृ० ३७३, ३७४ पर।

२२८—यह सब को ज्ञात है कि यवन-आक्रमणकारियों ने मन्दिरों पर कितने अत्याचार किये। इतिहास में इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश अनेक इतिहासज्ञ डाल चुके हैं।

२२९—आयागपट्ट—मथुरा के कंकाली टीले से जो आयागपट्ट के दो खण्ड निकले हैं, इन्हें यूरोपीय शिल्प-विशारद भी देखकर चकित हो गये हैं। आयागपट्ट की कोरनी को देखकर यही मानना पड़ता है कि यह दैवी-कृत्य है, मानव-कृत्य नहीं।

२३०—हमारे ग्रन्थों में ऐसे कितने ही चित्रों के वर्णन आते हैं जो व्यक्तिविशेष के निर्देष, इंगित पर भ्रू-प्रक्षेप, एवं संकेत करते थे और बोलते, चलते थे।

२३१—गंधर्व—यह जाति आज भी विद्यमान है और संगीत-विद्या ही इनका मुख्य व्यवसाय है। संगीत-शास्त्र में प्रवीण होने

के कारण ही इस जाति के मनुष्य गंधर्व कहलाये। संगीत-विद्या का प्रथम प्रचार इसी जाति से हुआ है।

२३२—आस्ट्रेलिया में कुछ ऐसी मूर्तियाँ निकली हैं जिन्हें लोग बौद्ध-मूर्तियाँ कहते हैं। इसमें किसी का दोष नहीं कि वे मूर्तियाँ बौद्ध हैं या जैन। जब तक किसी भी परीक्षक, निरीक्षक को जैन-मूर्तियों के चिन्ह, लक्षण भली भाँति विदित न हों वह तो प्रत्येक ध्यानस्थ एवं कायोत्सर्गस्थ मूर्ति को बौद्ध ही कहेगा। लेकिन अब कोई-कोई लोग यह बात स्वीकार करते हैं कि किसी समय में जैन-धर्म दुनिया के अधिकांश भाग में महात्मा गोतम बुद्ध के पूर्व ही फैला हुआ था। अतः ढाई सहस्र पूर्व की प्रत्येक ऐसी मूर्ति या स्तम्भ निर्विवाद रूप से जैन है।

२३३—यादववंश—भगवान श्रीकृष्ण हमारे ९ वें वासुदेव थे। इनके चचेरे भाई नेमिनाथ २२ वें तीर्थंकर थे और इनके अनुज गजसुकुमाल अन्तकृत केवली थे। छप्पन कोटि यादव भी जैन थे, ऐसा हमारे ग्रंथों में प्रबल प्रमाण मिलता है। [मेरी समझ में यहाँ कोटि का अर्थ कोई संख्या विशेष से न होकर गोत्र या शाखा से है।]

२३४—देखो नं० २। विशेष के लिये देखो त्रि० श० पु० चरित्र (गु० भा) भाग १

२३५—भरत—यह भगवान ऋषभदेव का पुत्र था और प्रथम चक्रवर्त्ती हुआ है। यह राज-कार्य करता हुआ भी विरक्तात्मा था। एक समय किसी ने यह शंका की कि भरत चक्रवर्त्ती होकर कैसे विरक्तात्मा रह सकता है। जब इस बात का पता
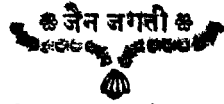
भरत को मिला तो भरत ने उस आदमी को बुलाया और उस आदमी के हाथ में दही से भरा हुआ पात्र देकर कहा, "जाओ तुम समस्त शहर में यह पात्र अपने हाथ में लिये हुए भ्रमण करके आओ; लेकिन यह ध्यान रखना कि एक बूंद भी अगर दही का नीचे गिर पड़ा तो प्राणग्राहक तुम्हारा शिर वहीं पर धड़ से अलग कर देंगे।"

जब वह आदमी समस्त नगर में भ्रमण करके लौटकर भरत के पास आया तो भरत ने देखा कि दही में से एक बूंद भी नहीं गिर पाई है। भरत ने उसे पूछा, 'भाई, तुमने नगर में क्या देखा और क्या सुना ?'

उस पुरुष ने उत्तर दिया, 'न मैंने कोई पुरुष या वस्तु देखी और न मैंने कुछ सुना ही। मेरी तो सब ही इन्द्रियें इसी पात्र पर लगी हुई थीं'। तब भरत ने उसे समझाया और कहा, 'भाई मैं इस दहीपात्र के समान मोक्ष को देखता हुआ इस असार संसार के मध्य रहता हूँ।'

२३६—जब २४ वें तीर्थंकर भगवान महावीर का जन्म हुआ था उसी समय सुमेरुपर्वत हिल उठा और इन्द्र का सिंहासन भी डोल उठा। देखो त्रि० श० पु० चरित्र (गु० भा) भाग १० वाँ।

२३७—भरत चक्रवर्त्ती और बाहुबल का द्वन्द्व-रण विश्रुत है। ये दोनों भगवान् ऋषभदेव के पुत्र थे। दोनों में राज्याधिकार के लिये विग्रह हो गया। जब दोनों ओर के विशाल जन-सैन्य रणाङ्गण में पहुँचे और युद्ध प्रारम्भ होने ही को था कि महामना बाहुबल ने भरत के समक्ष यह प्रस्ताव रक्खा कि राज्य प्राप्ति

के लिये निर्दोष जन-सैन्य का रक्त न बहा कर वह (बाहुबल) और भरत परस्पर द्वन्द-रण करें और जो जीते उसी को राज्य मिले। यह प्रस्ताव भरत ने सम्मत कर दिया और अन्त में बाहुबल विजयी हुए। लेकिन बाहुबल राज्य न लेकर वन में विरक्त होकर तपस्या करने चले गये और भरत को राज्याधिकार दे गये।

२३८—से २५१ देखो नं० १५ से २५ तक। विशेष वृत्त के लिये देखो त्रि० श० पु० चरित्र भाग १ से १० तक।

२५२—चन्द्रगुप्त मौर्य—यह नन्दवंश का उच्छेदक प्रख्यात अर्थ-शास्त्री चाणक्य का शिष्य था। सम्राट चन्द्रगुप्त इतिहास में प्रसिद्ध है। यहाँ विशेष उल्लेख की आवश्यकता नहीं है। इतना कहना पड़ेगा कि जहाँ अन्य इतिहासकार सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य को बौद्ध मानते हैं, यह जैन था और श्रुतकेवली भद्रबाहू स्वामी का अनुयायी था।

२५३—सिल्यूकस—यह सिकन्दर महान् का सेनापति था। इसने भारत पर आक्रमण किया था, लेकिन सम्राट चन्द्रगुप्त के आगे इसकी कुछ न चली और निराश होकर लौटा। सिल्यूकस ने अपनी लड़की का विवाह सम्राट चन्द्रगुप्त के साथ करके सन्धि की थी।

२५४—श्रीपाल—यह कोटिभट श्रीपाल के नाम से प्रसिद्ध है। इसने अपने जीवन में अनेक कटु कष्ट सहन किये थे। यह बड़ा वीर था, कहते हैं कि यह अकेला कोटि सुभटों से लड़ने को समर्थ था। इसकी पटरानी का नाम मैना सुन्दरी था।
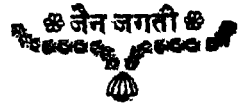
मैना के शील के प्रभाव से ही श्रीपाल का कुष्ठ रोग शमन हुआ था। विशेष के लिये देखो श्रीपाल-रास या श्रीपाल-चरित्र (गुजराती में)।

२५५—राजर्षि उदयन—यह वीतभवनगर का राजा था। बड़ा प्रतापी था। इसने अनेक युद्ध किये और सबमें विजयी हुआ। अन्त में इसके मनमें वैराग्य उत्पन्न हो गया और अपने भागिनेय को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण करली।

२५६—सम्राट श्रेणिक—यह मगध का सम्राट था और भगवान महावीर का परम भक्त था। इसके विषय में अनेक दन्त-कथायें प्रसिद्ध हैं जिनका यहाँ वर्णन स्थानाभाव से असम्भव है। इसकी रानी चेल्लणा राष्ट्रपति चेटक की पुत्री थी और महासती थी।

२५७—नंदिवर्धन—ये भगवान महावीर के भाई थे और भगवान के परमानुयायी थे। इनकी रानी जेष्ठा राष्ट्रपति चेटक की कन्या थी। नंदिवर्धन का राम-राज्य प्रसिद्ध है।

२५८—राष्ट्रपति चेटक—यह बड़े नीति कुशल नरेश थे। समस्त आर्यावर्त्त के राज्यों में इनका भूरि सम्मान था। ये दृढ़ जैन धर्मी थे। इनके सात कन्यायें थीं और सात में से छह का भारत के सर्वश्रेष्ठ एवं महान राजाओं से विवाह हुआ था। एक बाल ब्रह्मचारिणी ही रही थी। इनके परिवार ने जैन धर्म का इतना विस्तार किया कि राष्ट्रपति चेटक को उप महावीर कहना चाहिये। इनकी कन्याओं का यह दृढ़ व्रत था कि जैन राजा से ही उनका विवाह होगा। और ऐसा ही हुआ।

२५६—नृप चण्डप्रद्योत—यह उज्जैन का राजा था और बड़ा वीर था। राष्ट्रपति चेटक की एक कन्या शिवा का विवाह इसके साथ हुआ था।

२६०-२६१—सम्राट खारवेल—यह कलिंग-सम्राट था। यह महामेघवान खारवेल के नाम से प्रसिद्ध है। बहुत कुछ अंशों में इसका संक्षिप्त वर्णन ऊपर आ चुका है। मगध-सम्राट नंद-वर्धन को इसने परास्त किया था। आंध्रभूपतियों को भी हराया था। यह अपने समय का महान राजा हुआ है। इतिहासकार भी इस बात को स्वीकार करते हैं। अब तो सम्राट खारवेल पर (गुजराती में) बहुत पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं।

२६२—देखो नं० २२४।

२६३—तोरमाण तथा उसके पुत्र मिहिरिकुल का राज्य अवंती-प्रदेश पर ई० सन् की छठी शती में अच्छी प्रकार जम चुका था। लेकिन हूण लोग प्रजाजनों को अतिशय कष्ट देते थे। निदान सर्वप्रजाजन आबू पर्वत पर एकत्रित हुए और सबने हूणों से मन्दसोर के पास भारी रण किया और हूणों को सौ-राष्ट्र से बाहर निकाल दिया। डा० त्रिभुवनदास लहेरचन्दशाह अपने प्राचीन भारतवर्ष के इतिहास भाग ३ रा० पृष्ठ ३६० पर लिखते हैं कि इस युद्ध में श्रीमाल, ओशवाल एवं पोरवालों ने शस्त्रास्त्र ग्रहण किये थे और इन तीनों ने सबसे अधिक वीरता दिखाई थी।

२६४-६५ वागभट—यह सौराष्ट्रपति महाराजा कुमारपाल के आमात्य उदयन का पुत्र था। नागभट भी इसका छोटा भाई

था। वागभट और नागभट दोनों भाइयों ने अपनी अल्प आयु में ही अनेकों युद्ध किये थे। देखिये कुमारपाल चरित्र।

२६६—आमात्य आंबू—यह अणहिलपुर के महाराजा भीमदेव द्वितीय का सेनापति था और आमात्य भी रह चुका था। इसने कितनी ही बार मुसलमान आक्रमणकारियों को परास्त किया था।

२६७—विमलशाह—यह गुजरातपति भीमदेव का महामात्य था। यह बड़ा वीर और अद्वितीय राजनीतिज्ञ था। इसने अनेक लड़ाइयाँ लड़ी थीं और आबू पर्वत पर एक विशाल जैन-मंदिर बनवाया था।

२६८—उदयन—यह सौराष्ट्रपति महाराज सिद्धसेन का का महामात्य था। यह अद्वितीय वीर एवं नीति-प्रवीण था। इसके चार पुत्र थे और चारों पुत्र बड़े रणवीर थे। उदयन और इसके पुत्रों ने ही सिद्धराज का राज्य दृढ़ एवं अत्यधिक विस्तृत किया था। देखो मंत्री उदयन का चरित्र।

२६९—शांतनु—शान्तनुशाह भी महाराजा भीमसेन का महामात्य एवं परम सहायक था। महाराजा भीमसेन को राज्या-शन शान्तनु महेता के ही बल से मिला था।

२७०—मूल से नंबर लगा है।

२७१-७२—देखो नं० २६८-२६९।

२७३-२७४—वस्तुपाल, तेजपाल—ये दोनों सहोदर थे और महाराजा कुमारपाल के महात्मात्य थे। दोनों भाई अपनी वीरता एवं रणनीति के लिये इतिहास में प्रसिद्ध हैं। एक समय
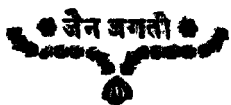
कुतुबशाह ने सौराष्ट्र विजय करने को अपनी प्रबल सेना भेजी। लेकिन इन दोनों भाइयों की तलवार का वार तुर्क न सह सके और भाग खड़े हुए। ये वीर होने के साथ ही बड़े दानी एवं धर्मात्मा थे। इन दोनों भाइयों ने अपने जीवन काल में १३१३ नव्य जैन मन्दिर बनवाये। ३३०० जैन-मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया। ५०० पौषधशालायें बंधवाईं। सात कोटि सुवर्ण मुद्रायें खर्च कर पुस्तकें लिखवाईं और अगणित कुएँ, तालाब, धर्मशालाएँ, दानशालाएँ बनवाईं। पैसे का सदुपयोग ऐसा आज तक शायद ही किसी ने किया हो।

२७५—देखो नं० २७४।

२७६—भैंषा-शाह—ये महा पराक्रमी एवं दानवीर शाह थे। ये माण्डू के रहने वाले थे। इनकी हवेली माण्डू में आज भी इनके वैभव की स्मृति कराती है।

२७७—रामाशाह—ये भेरुशाह के भाई थे। भूल से इनको भैंषाशाह का भाई कहा है। रामाशाह कितने पराक्रमी थे, निम्न पद्य से देखिये जो एक कवि ने इनकी प्रशस्ती में कहा है:—

सेवै कछवाहा, जोधक, जादौ, भारथ जोगै भीछ भला।
निरवाण, चौहान, चन्देल, सोलंकी, देल्ह, निसाण, जिके दुजला॥
बड़गूजर, ठाकुर, छेछर, छीमर, गौड, गहेल, महेल मिली।
दरबारि तुहारे रामनरेसुर सेवै राज छतीस कुली॥

जै० जा० भ० प्र० चौथा।

२७८—श्री कर्मसी—निम्न पद्य से श्री कर्मसिंह का भी परिचय पा लीजिये:—

समघर भरगे ताल्हण सुतन, न्याई बिहु पखि निर्मला।
चितोड़ भिड ते चोपड़े, करमचंद चाढ़ी कला॥
जै० जा० मं० प्र० चौथा।

२७९—श्री नेतसी—वीरवर नेतसी छाजेड़ की भी उदारता देखियेः—

पवन जदि न परवरे, बाव वागो उत्तर घर।
घर, मुरघर मानवी, भइ भेभंत तासभर॥
मातपुत परिहरे, विमोह मृगनेनी छारे।
उदर काजि आपने, देश परदेश संभारे॥
खित्त, खीन, दीन व्यापी खुधा, नर नीसत सत छंडिया।
तिण घोस साह जगमाल के, नेतसीह नर थंभिया॥
जै० जा० म० प्र० चौथा।

२८०—श्री अन्नदाता धर्मसी—इस श्रील महापुरुष के भी दाक्षिण्य भाव देखियेः—

दीपक दीदा दिसे, प्रथी पदरा परमाणें।
कडलूनेर कडाहि, सिपति साची तुरताणें॥
इकतीसे सोझती, इला असमै आधारी।
धर गुजर धरमसी, जुगति दे अन्न जिवाड़ी॥

२८१—भूपाल—इस नाम से ओसवाल अब भी विश्रुत हैं। ओसवाल भूपाल क्यों कहलाते हैं यह भारत का प्रत्येक व्यक्ति जानता है। यहाँ इस विषय को स्पष्ट करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

२८२—जब अरिहंत भगवान का समवशरण होता था तब

सूर्य और चन्द्र भी पृथ्वी पर उतर आते थे और भगवान् का उपदेश श्रवण करते थे।

२८३—मदन राजर्षि—ये परमहंस महात्मा थे। इनके जीवन-चरित्र को पढ़ने से सच्ची अहिंसामय वृत्ति को पालन करने में कितने संकटों का सामना करना पड़ता है का पता मिलता है।

२८४—नं० ५० को देखिये।

२८५—सात सौ मुनि एक समय ध्यानस्थ थे कि दुष्टों ने उनके चारों ओर काँटे तृण डालकर अग्नि लगा दी, लेकिन धन्य है, सात सौ ही मुनि अडिग रहे और अन्त में धर्म की जय हुई।

२८६—धर्मरुचि मुनि को किसी श्रावक ने आहार में बहुत दिनों का कड़वी तुम्बी का रायता अर्पण किया। मुनिराज आहार लेकर अपने स्थान पर आये। जब आहार करने लगे तो पता पड़ा कि रायता अतिशय खट्टा है। आहार से निवृत होकर मुनिराज उस रायता को पात्र में लेकर बाहर अजीवाकुल स्थान पर प्रक्षेप करने गये। लेकिन उन्हें ऐसा कोई स्थान न मिला जहाँ किसी प्रकार का कोई जीवाणु न हो। निदान आप ही उसे पी गये और मोक्ष-पद को प्राप्त हुए। धन्य है ऐसे महामुनियों को।

२८७—ऐसा कहते हैं कि हमारे अन्दर ७४ शाह ऐसे हो गये हैं जिनके समक्ष दिल्ली-सम्राट की रिद्धि-सिद्धि अकिंचन थी और समय २ पर दिल्ली के बादशाह इन श्रेष्ठियों से ऋण उधार लेते थे। कहते हैं कि श्रेष्ठियों के आगे जो 'शाह' पद लगता है यह किसी सम्राट का बन्धक रक्खा हुआ है।

२८८—आनन्दश्रेष्ठि—ये बड़े धनाढ्य थे। १६ करोड़

स्वर्ण-मुद्राओं के पति थे। इनके गौकुल में ४०००० गौएँ थीं। ये जहाजों द्वारा व्यापार करते थे। ये वाणिज्य ग्राम के निवासी थे और भगवान महावीर के मुख्य श्रावकों में थे।

२८६—सद्दालश्रेष्ठि—ये जाति के कुम्भकार थे। भगवान महावीर के मुख्य श्रावकों में थे। ये तीन करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं के अधिपति थे और इनकी दुकानें अनेक देशों में थीं। इनकी बड़ी २ दुकानें ५०० थीं।

२९०—महाशतक—ये भी भगवान महावीर के मुख्य श्रावक थे। ये २१ करोड़ स्वर्णमुद्राओं के स्वामी थे और इनके गौकुल में ८०००० गौएँ थीं। ये राजगृही के रहने वाले थे।

२९१—चुल्लणीशतक—ये भी भगवान महावीर के मुख्य श्रावक थे। ये १८ करोड़ स्वर्ण मुद्राओं के स्वामी थे। इनके गोकुल में ८००० गौएँ थीं।

२९२—जिनदत्तश्रेष्ठि—ये महा धनकुबेर श्रेष्ठि थे। ये सोपारपुर के रहने वाले थे। ये वज्रसेन सूरि के समय उपस्थित थे।

२९३—धन्नाश्रेष्ठि—इनकी कथा सर्वाधिक सर्वत्र प्रसिद्ध है। ये भी बड़े धनाढ्य थे। इन्होंने रिद्धि-सिद्धि छोड़ दीक्षा ग्रहण की थी।

२९४—शालिभद्र—ये भी अतुल वैभव के स्वामी थे। इन्होंने भी समस्त रिद्धि-सिद्धि को छोड़कर संयम व्रत ग्रहण किया था।

२९५—जगडूशाह—ये अणहिलपुर (पाटण) के महाराजा

विशलदेव के समय उपस्थित थे। इन्होंने पंचवर्षीय दुष्काल में जो उस समय पड़ा था करोड़ों स्वर्ण-मुद्राओं का अन्न क्रय कर दानशालाएँ भोजनालय खोले थे और दीन, क्षुधित जनता का रक्षण किया था।

२९६—प्रतिक्रमण अर्थात् रात्रि में जाने, अनजाने मन, वचन और काया से किये गये, करवाये गये तथा अनुमोदित सावद्य कर्मों का प्रायश्चित्त, आलोचना प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में जाग कर सर्व जैन आबाल वृद्ध किया करते थे।

२९७—स्वाध्याय, पूजन, दान, संयम, तप एवं गुरु-भक्ति ये प्रत्येक श्रावक के दैनिक आवश्यक कर्त्तव्य थे।

२९८—वंदित्तु-सूत्र—इस सूत्र में ५० गाथा हैं। इन गाथाओं से कर्त्तव्याकर्त्तव्य का परिचय मिलता है।

२९९—सुदर्शन श्रेष्ठि—इनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

३००—शाकटायन—इनका भी वर्णन ऊपर हो चुका है।

३०१—त्रयगढ़—इसको समवशरण भी कहते हैं। समवशरण की रचना स्वयं देवतागण करते थे। देखो भगवान के बारह गुण और आठ प्रतिहार्य का उल्लेख।

३०२—आनंद—नं० २८८ देखिये।

३०३—चुल्लक—नं० २९१ देखिये।

३०४—नंदिनीप्रिय—ये बनारस के रहने वाले थे। भगवान महावीर के अनन्य भक्त थे। ये भी १२ करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं के पति एवं ४०००० गौओं के स्वामी थे।

२०५—सम्राट चन्द्रगुप्त ने विमलाचल की संघ-यात्रा की थी। इसी प्रकार महाराजा कुमारपाल ने, उदयन ने, शांतनिक और चंपानरेश दधिवाहन ने भी संघ निकाले थे। जूनागढ़ की तलेटी में सरवर सुदर्शन आया हुआ है। इसका जीर्णोद्धार राजा चन्द्रगुप्त, सम्प्रति, कुमारपाल ने करवाया था।

२०६—यह तो प्रायः सभी को विदित है कि भगवान् पार्श्वनाथ के समय में हिंसावृत्ति अधिक बढ़ गई थी और भगवान् महावीर के अवतरण के समय तो यह चरमता को प्राप्त हो गई थी। यहाँ यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि भगवान् पार्श्वनाथ और महावीर ने इस हिंसा प्रचार को कहाँ तक निःजड़ किया। परन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि अगर ये विभूतियें नहीं हुई होती तो सम्भव है आज भारतवर्ष समूल हिंसक मिलता।

२०७—चण्डकौशिक—यह पूर्व भव में क्षमक था। यह मर कर फिर कनकखल आश्रम के अधिष्ठाता की स्त्री के गर्भ से पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ और इसका नाम कौशिक रक्खा गया। यह अति क्रोधी था अतः इसे तापसगण चण्डकौशिक कह कर पुकारते थे। अपने पिता के मरण के पश्चात् इसने सब तपस्वियों को आश्रम से बाहर निकाल दिया और जो कोई भी नर, पशु, जीव उस बनखण्ड में आ जाता यह उसे भारी मार मारें बिना नहीं छोड़ता। इस प्रकार यह अपना जीवन बिताने लगा। एक दिन यह कहीं आश्रम से बाहर गया हुआ था कि पीछे से कुछ तापस कुमारों ने इसके उपवन को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। जब यह वापिस आया और अपने उपवन को नष्ट-प्राय देखा तो हाथ में

कुल्हाड़ा लेकर उन तापस कुमारों को मारने दौड़ा। बड़े वेग से दौड़ रहा था कि अचानक ठोकर खाकर गिर पड़ा और कुल्हाड़ा की धार से इसका शिर कट गया। यह तब मर कर सर्पयोनी में उत्पन्न हुआ और इसी बन में रहता था। इसकी भयंकर फुत्कार से वह बन सदा गूँजता रहता था। वृक्ष सब जल गये थे। पशु पक्षी उस बन में पद तक नहीं रखते थे। ऐसे बिहड़ बन में जहाँ चण्डकौशिक का एक छत्र साम्राज्य था भगवान कायोत्सर्ग में रहे। चण्डकौशिक ने भगवान को तीन बार डसा लेकिन फिर भी भगवान को अचल देखकर यह विस्मित हुआ और भगवान से क्षमा-निवेदन करने लगा। निदान भगवान ने इसको ज्ञान दिया और यह फिर मरकर देवलोक में देवता रूप से उत्पन्न हुआ।

२०८—एक समय भगवान् महावीर एक बन में कायोत्सर्ग में खड़े थे। वहीं पर एक ग्वाला अपने बैल चरा रहा था। कुछ कार्यवश वह ग्वाला अपने बैलों को वहीं छोड़ कर कहीं चला गया। जब ग्वाला वापिस उस बनतल में आया तो वह वहाँ बैलों को न देख कर भगवान् को अपशब्द कहने लगा, भगवान् अचल रहे। ग्वाला अपने बैलों को ढूँढ़ता हुआ इधर-उधर घूमने लगा। थोड़ी देर में बैल पुनः वहीं आगये। ग्वाले ने अपने बैलों को भगवान् के पास जुगाली करते हुये खड़े देखा। ग्वाले ने भगवान् को चोर समझा और उसने भगवान के दोनों कानों में तीखे-तीखे कीले कठोर पत्थर की मार मारते हुए ठोके। परन्तु भगवान अडिग रहे। थोड़े समय पश्चात् उस स्थान पर दूसरे

मनुष्य आये और उन्होंने भगवान् के कानों में से कीले खींच-कर बाहर निकाले।

३०६-३२०—इन सब की वैसे संक्षिप्त टिप्पणियें ऊपर दी जा चुकी हैं। यहाँ इनका विस्तृत इतिहास देने का विचार था और इसी ध्येय से इन्हें अंकित किया गया था। लेकिन कागज के भाव बढ़ जाने के कारण इस समय हम इनका परिचय इतिहास नहीं देंगे। हो सका तो द्वितीय संस्करण में इनका वर्णन सविस्तार किया जायगा।

३२१—तुगलकवंश के बादशाह जैनाचार्यों के संयम की बड़ी प्रशंसा करते थे। मुहम्मद तुगलक सोमतिलकसूरिजी का बड़ा सम्मान करता था।

३२२—मुगल बादशाहों में से अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ ने जैनाचार्यों का कितना सम्मान किया है, इतिहास साक्षी है। बादशाह अकबर के ऊपर हीरविजयसूरिजी का गहरा प्रभाव था। खास मुसलमानी-पर्वों में भी बादशाह शाही-फरमान निकाल कर दया-धर्म पलवाता था।

३२३—फ्रांसीसी डाक्टर गिरनार, जर्मन डा० जान्सहर्टल, जेकोबी, डा० फ्यूहरर, ब्लोंच, स्मिथ, फरग्यूसन आदि अनेक यूरोपीय महान विद्वानों की जैन-धर्म के प्रति गहरी श्रद्धा रही है। और इन सब ने जैन-धर्म और इसके साहित्य-कला पर गहरा लिखा है।

३२४—जयचंद—यह कन्नौज का राजा था और पृथ्वीराज का कट्टर शत्रु था। इसने मुहम्मद गौरी को हिन्दुस्तान पर

आक्रमण करने का निमंत्रण दिया था। इसी पापी के काले काम के कारण आज हिन्दुस्तान के दो बड़े खण्ड हो रहे हैं।

३२५-३२६—दिगंबर—दिक्+अंबर, दिशा ही जिनका वस्त्र है उन्हें दिगंबर कहते हैं।

श्वेताम्बर—श्वेतवस्त्र पहिनने वालों को श्वेताम्बर कहते हैं।

किसी समय जैनधर्म अखण्ड था। दुर्भाग्य से इसके ये उक्त दो खण्ड हो गये। कब हुए? यह प्रश्न विवादास्पद है। इस प्रश्न को छूने का यहाँ मेरा न विचार है और न इसको मैं यहाँ हल करना उचित समझता हूँ।

३२७-३२८—समय पाकर श्वेताम्बर सम्प्रदाय के भी फिर दो दल हो गये। स्थानकवासी जो मूर्ति को नहीं मानते हैं और दूसरे मूर्तिपूजक जो मूर्ति की पूजा-प्रतिष्ठा करते हैं। स्थानकवासी सम्प्रदाय को बावीसपंथी एवं ढूंढ़क भी कहते हैं। इस सम्प्रदाय की आदि करने वाले श्रीमान् लोकाशाह कहे जाते हैं। आगे जाकर शनैः शनैः मूर्तिपूजक सम्प्रदाय में भी आचार्यों के नाम क पीछे अलग अलग दल स्थापित होते गये और ये दल आज ८४ की संख्या तक पहुँच गये, जो गच्छ कहलाते हैं। लोकाशाह के कितने ही जीवन-चरित्र छप चुके हैं। विशेष के लिये उनमें से कोई देखें।

३२९—तेरहपंथी—यह स्थानकवासी सम्प्रदाय में से निकला हुआ एक और पंथ है। इसकी आदि करने वाले भिखमजी कहे जाते हैं। भिखमजी स्थानकवासी साधु रघुनाथमलजी के शिष्य थे। देखो भिखम-चरित्र।

३३०—नृपकल्कि—यह अवन्ती का राजा था। यह हिन्दू-धर्म का कट्टर अनुयायी था। इसने जैन एवं बौद्धों के ऊपर अकथनीय अत्याचार किया था।

३३१—यह नंबर भूल से 'दुष्कृत्य' पर लग गया है।

३३२—पुष्यमित्र—यह शुंगवंश में आदि और प्रसिद्ध राजा हुआ है। यह विक्रम की द्वितीय शती में हुआ है। यह भी हिन्दु-धर्म का कट्टर पक्षपाती था। इसने मतद्वेष के कारण जैन राजाओं के प्रसिद्ध नगर पाटलीपुत्र को जला दिया था। इसने अपने देश में जैन साधुओं का आगमन रोक दिया था।

३३३—महात्मा गौतमबुद्ध—ये बौद्धधर्म के आदि प्रवर्तक माने जाते हैं। ये भगवान् महावीर के समकालीन थे। इन्होंने भी द्विजों की हिंसावृत्ति का प्रबल खण्डन किया था। आज बौद्धमत संसार के एक तिहाई भाग पर फैला हुआ है।

३३४ देखो नं० २

३३५ देखो नं० ३२२

३३६—औरंगजेब—यह बड़ा अत्याचारी मुगल सम्राट था। इसने जैन-धर्म के उत्सव, मेले, वरघोड़े रथ यात्राओं पर रोक लगा दी थी। कितने ही मंदिर मस्जिद बनवा दिये गये थे।

३३७-३८—लार्ड-परिषद्—यह विलायत में एक सभा है। इसे अंग्रेजी में हाउस ऑफ लार्डस् कहते हैं। भारतवासियों को अपने अभियोगों की, स्वत्वों की अंतिम प्रार्थना इस परिषद् के समक्ष करनी पड़ती है और इस परिषद् का किया हुआ न्याय सर्वोपरि एवं अंतिम होता है। हम श्वेताम्बर और दिगंबर सम्मेतशिखर के मुकद्मे में लार्ड-परिषद तक बढ़ चुके हैं।

जैन-जगती का शुद्धाशुद्ध पत्र

अतीत खण्ड

छंद	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१	वीणा	बीन
१	२	बे स्वर, प्राण	निःस्वर, राग
१	३	डार	सार
१	४	मन' ' 'सार दें	मम' ' 'पूर्ण कर

वर्तमान खण्ड

छंद	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२५	३	श्वेताम्बर	श्वेत अम्बर
१७६	१	संगीत ज्ञाता	संगीत-ज्ञाता
१९३	४	कार	कर
२०७	४	आहित	हित
२२२	४	मात्र	मातृ
२३०	४	शील	श्रील
३१८	३	वन	बन